विभिन्न सिद्धियों के लिए साधना

आत्म निवेदन

हिमगिरि के धवल धौत गगन चुम्बी उत्तुंग शिखर सा महिमा-मण्डित गर्वोन्नत भाल, दैवी आभा से आप्लावित उल्लसित मुख-कमल, दीप्तिमान नेत्रों से छलकती करुणा की अजस्रधारा, अकिंचनों के अनन्य आश्रय, रुग्णों के लिये करुणाकर वरदान, जिज्ञासुओं, योगियों और सन्तों के परम गुरु, उच्च कोटि के लेखक, सुवक्ता और महान् सन्त, दैवी जीवन के मन्त्र द्रष्टा, दिव्य जीवन संघ के लोकदर्शी संस्थापक प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय स्वामी शिवानन्द जी महाराज के लिए भारत के भूतपूर्व कार्य० प्रधानमन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने जब यह कहा था कि "इस प्राचीन भू-भाग में अवतरित धार्मिक गुरुओं के इतिहास का जब संकलन किया जायगा तो निश्चय ही उसमें स्वामी शिवानन्दजी का नाम सर्वोपरि स्थान पर होगा,' तो ऐसा लगा मानो भारत के कोटि-कोटि निःशब्द श्रद्धालु जिज्ञासुओं की वाणी को अभिव्यक्ति प्राप्त हो गई।

ऐसे उच्च कोटि के परम सन्त, तत्त्वदर्शी चिंतक और लोकदर्शी साधक के कर्तृत्व की मधुर सुरभि (दिव्य जीवन संघ) हिमांचल के गगन चुम्बी गिरि शृंगों से कुमारी अन्तरीप और अटक से कटक पर्यन्त के विशाल भारतीय उप-महाद्वीप में ही नहीं अपितु अरब सागर आदि की लहराती बलखाती लहरों के हिन्डोलों पर हिचकोले लेती विश्व के सभी देशों को सुवासित करती रही है। इसके परिणाम स्वरूप दिव्य-जीवन संघ की शाखाएँ विश्व के समस्त देशों में फैलती जा रही हैं और स्वामीजी के साधना प्रसूत मधुर उपदेशों द्वारा मानव जीवन को आलोकित कर रही हैं।

एक उदार-मना और धार्मिक पिता वेंगुअय्यर का दुलारा, विदुषी और श्रद्धालु माता पार्वती का लाडला कुप्पु-स्वामी साधारण शिशु, किशोर और तदनंतर युवा किंवा प्रौढ़ मानव ही नहीं था, अपितु उसमें एक जिज्ञासु शिशु, एक मेधावी किशोर, एक मनस्वी युवा डॉक्टर और एक तेजस्वी सन्त विद्यमान था। अपने शिक्षण काल में भारत में तथा चैकित्सीय जीवन में मलाया में उन्होंने लोक-मानस पर अपनी

ध्येयनिष्ठा, विमल प्रेमल भावविमुग्धता, सतत् जागरूक साधना के द्वारा इतना गहरा प्रभाव डाला कि देश-विदेशों में उनके असंख्य श्रद्धालु उत्पन्न हो गये।

परमार्थ के दिव्य पथ के पथिकों के लिए मार्ग के आकर्षण कैसे अवरोध बन सकते हैं। पथ के आकर्षण ने सिद्धार्थ को छलने का अमोघ प्रयास किया लेकिन परमानन्द पथ का पिपासु सिद्धार्थ बोधि वृक्ष के अंक में ज्ञान की अमृत पयस्विनी का पान कर गौतम बुद्ध के रूप में अवतरित हुआ। पथ के आकर्षण ने मूल शकर को मोहने का छल किया पर मोह-पाशों की श्रृंखला का खण्ड-खण्ड कर मूल शंकर स्वामी दयानन्द बन गया, जिसकी पाखण्ड खण्डनी पताका दिग्-दिगन्त् में लहरा उठी। पथ के आकर्षण ने मोहन को लीलना चाहा पर उसके अन्तस् को चीर कर उसमें महात्मा गांधी अवतरित हुआ—तो फिर साधना पथ के अमर पथिक स्वामी शिवानन्दजी भौतिक आकर्षणों में कैसे भरमा सकते थे? स्वामीजी की अनन्य और अनवरत साधना ने अगणित तमसाच्छन्न हृदयों को साधना की ज्योति से आलोकित किया।

अस्तु, स्वामी श्री शिवानन्दजी की साधना असहिष्णु एवं कट्टर पंथी साधक की साधना नहीं है। ना हीं यह किसी सम्प्रदाय, मत, पंथ या मजहब से ही सीमित है। उसमें धरित्री की सहिष्णुता है तो नभ-मण्डल का विस्तार है। वह क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या सिख, क्या ईसाई, क्या पारसी, क्या निराकारोपासक, क्या साकारोपासक, क्या अवर्ण, क्या सवर्ण सभी को समान रूप से प्रभावित करती है। यद्यपि स्वामी जी ने नए-नए मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों और गिरिजाघरों का निर्माण नहीं कराया, नए धर्म की आधार:शिला नहीं रखी, व्यावहारिक आदर्श और चरित्र की नवीन संहिता का निर्माण नहीं किया, नए रीति रिवाजों की उद्भावना नहीं की, ना ही किसी नये मत, पंथ या सम्प्रदाय का ही प्रवर्तन किया, फिर भी उन्हों ने एक हिन्दू को श्रेष्ठ हिन्दू, एक मुस्लिम को श्रेष्ठ मुस्लिम, एक सिख को श्रेष्ठ सिख, एक ईसाई को श्रेष्ठ ईसाई और एक पारसी को श्रेष्ठ पारसी बनाने में योग दिया। वह हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी सभी के प्यारे थे। सभी उनको अपना समझते थे।

लेकिन क्यों.........? आखिर क्यों ? उस अकेले स्वामी के पास ऐसी कौन सी शक्ति थी ? जो जन-शक्ति बड़े बड़े सम्राटों और तानाशाहों की सेनाओं के अतंक से रोंदे जाने पर भी अपना मस्तक गर्व से उन्नत रखती है या जो साधारण जन अत्याचारियों के भय से त्रस्त हो दुबके पड़े हुए जालिम के सर्वनाश की परमात्मा से प्रार्थना किया करते हैं और जो अवसर आने पर जन आक्रोष के ज्वालामुखी का रूप धारण कर समस्त आततायियों को आत्मसात कर लेती है, वही जनशक्ति, आखिर कौनसी अज्ञात शक्ति के द्वारा, स्वामीजी की ओर अपने आप खिंची चली आती थी ? आखिर कौनसी शक्ति थी उनमें..................
आखिर कौन सा रहस्य था उस शक्ति का...............?

वह दिव्य पुरुष एक दैवी शक्ति से ओत प्रोत था। उसके तोप, तलवार थे सेवा, प्रेम, सत्य, शुचिता और सहिष्णुता, जिनके बलपर वह विश्व मानवता के हृदयों पर अबाध रूप से शासन करता था। यही कारण था कि स्वामी जी के पास मानव समूह उसी ललक से खिंचा चला आता था जैसे सर्प बांसुरी की धुन में तन्मय होकर खिंचा चला आता है, जैसे मृग वीणा की धुन पर तन्मय होकर अपने आपको विस्मृत कर चला आता है। इसलिए स्वामी शिवानन्द जी राजाओं के राजा थे, महाराजाओं के महाराजा थे और सम्राटों के सम्राट थे। उनका शासन वंश परम्परागत निरंकुश सत्ता का शासन नहीं था अपितु प्रेम, स्नेह और सद्भावों के प्रसारक लोकदर्शी संत का शासन था। लोकोत्तर गुणों से विभूषित स्वामी शिवानन्द जी का जीवन साधना से ओत प्रोत था। साधकों के पथ को आलोकित करने के लिए स्वामी जी महाराज ने "साधना" के संबध में एक सांगोपांग ग्रन्थ लिखा था जिसे साधना विश्व-कोष भी कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसमें साधना के सभी पक्षों पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला गया है जो सभी वर्गों, और सभी श्रेणियों के लिए अमूल्य और अलभ्य सामग्री से युक्त है। इसमें मात्र सिद्धातों की ही चर्चा नहीं है अपितु हृदय मंजूषा से उद्भूत अमूल्य रत्नों का अलभ्य संग्रह है जिनके द्वारा मानव स्वतः ही अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। प्रस्तुत संग्रह उसी विशाल ग्रन्थ का नवनीत है।

ऐसे साधक, जो अपना जीवन आध्यात्मिक साधना में व्यतीत करने के आकांक्षी हों, वे इस से मार्ग-दर्शन प्राप्त कर लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकेंगे और अपने जीवन को कल्याण मार्ग की ओर उन्मुख कर सकेंगे।

दिव्य जीवन संघ जयपुर शाखा की ओर से स्वामी शिवानन्दजी के प्रमुख शिष्य व दिव्य जीवन संघ के परमाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी चिदानन्दजी महाराज की षष्टि पूर्ति के उपलक्ष्य में इस "साधना नवनीत" ग्रन्थ को प्रकाशित किया जा रहा है। श्री अमर नाथ जी चोपड़ा द्वारा प्राप्त सात्विक दान से यह ग्रन्थ प्रकाशित किया जा सका है। प्रूफसंशोधन आदि की दृष्टि से सर्व श्री सूरज नारायण खूंटेटा, उमेशचन्द्र शास्त्री तथा रामेश्वर दयाल ने बहुत ही श्रम व श्रद्धा पूर्वक कार्य किया अतः उक्त महानुभावों के प्रति आभार प्रकट नहीं किया जाना उचित नही होगा। उक्त सभी महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

यदि इस ग्रन्थ के द्वारा साधक आत्मसाक्षात्कार किंवा ईश-साक्षात्कार की ओर प्रेरित होकर राष्ट्र के नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर को उन्नत बनाने में सहयोगी हो सकेंगे, तो हमारा प्रयत्न निश्चित रूप से सफल होगा। इसी शुभाकांक्षा के साथ—

स्वामी चिदानन्द—एक परिचय

श्रीस्वामी चिदानन्द जी महाराज के पूर्वाश्रम का नाम श्रीधर राव था। आपके पिता श्री श्रीनिवास राव जी तथा माता श्रीमती सरोजिनी राव जी, दक्षिण भारत के एक धनाढ्य ब्राह्मण थे। शिशु श्रीधर का जन्म 24 सितम्बर, 1916 को मंगलोर (मैसूर) में हुआ। आपके अन्य चार भाई-बहन और हैं। आपका परिवार विष्णु-भक्त होने के कारण बचपन से ही आपमें भगवद्-भक्ति के गहरे संस्कार पड़े हैं।

श्रीधर जी पर उनके एक आत्मीय श्री अनन्तैया जी का गहरा प्रभाव पड़ा। श्री अनन्तैयाजी शिशु श्रीधर को रामायण, भागवत तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों से चुन-चुनकर भगवद्भक्ति की, भगवान् के चरित्र की अनेक कथाएँ सुनाते रहते थे। आपके फूफा श्री कृष्ण राव जी भी सदा आपको सदुपदेश दिया करते थे और मार्ग दर्शन किया करते थे। उनका भी स्नेह आपको मिला।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा मंगलोर के एक अंग्रेजी स्कूल में हुई। तदुपरान्त 1932 में आपने मद्रास के मुतैया चेट्टीयार स्कूल में प्रवेश किया। आरम्भ से ही आप सरल, विनम्र तथा मेधावी थे। स्कूल के छात्र आपकी सरलता तथा सेवा भावना से अत्यन्त प्रभावित थे। कभी-कभी आपकी बालजनोचित सहज, स्वाभाविक चपलता भी मुग्धकारी होती थी। आप कोई ऐसा कार्य नहीं करते थे, जिससे किसी को कष्ट हो, पीड़ा हो।

1934 में आपने मद्रास के 'लोयोला कालेज' में प्रवेश लिया तथा 1938 में आप 'साहित्य-स्नातक' हो गये। आपका यह शिक्षा-काल ईसाई स्कूलों में ही व्यतीत हुआ और परिणामस्वरूप ईसाई धर्म के उज्ज्वल सिद्धान्तों के प्रति भी आपका स्वाभाविक आकर्षण रहा।

श्रद्धेय स्वामी चिदानन्दजी महाराज

परमाध्यक्ष, दिव्य जीवन संघ

की

षष्टि-पूर्ति के अवसर पर सादर समर्पित

षष्टि पूर्ति के अवसर पर, गुरुवर हम करते अभिनन्दन ।
शिवानन्द के शुभ प्रसाद से, महक उठे जगती का उपवन ।।

कर दिया, पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख लिखे और प्रवचनों से जिज्ञासुओं को तृप्त किया।

10 जुलाई, 1949 को 'गुरुपूर्णिमा' के दिन गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी से आप संन्यास-दीक्षा लेकर, श्रीधर राव से अब स्वामी चिदानन्द सरस्वती हो गये। 'यथा नाम तथा गुण'। जैसे गुरु वैसे ही शिष्य। गुरुदेव का आप पर बड़ा विश्वास था। आप उनके कृपा-पात्र तथा आज्ञाकारी शिष्य थे। गुरुदेव ने आपके सम्बन्ध में लिखा है—'स्वामी चिदानन्द जी अपने पूर्व जन्म में ही एक महान् योगी थे।...... यह उनका अन्तिम जन्म है।'

1950 में आपने गुरुदेव के साथ अखिल भारत तथा श्रीलंका की यात्रा की, देवमन्दिरों के, सन्तों-महात्माओं के दर्शन किये, तीर्थों में स्नान किया; इसके साथ-साथ भक्तों को भी उनसे निकट सम्पर्क का अवसर मिला और भक्त लोग उनके सरल, सद्व्यवहार से अत्यन्त प्रभावित हुए।

1959 में गुरुदेव ने अपने प्रतिनिधि के रूप में स्वामी चिदानन्द जी को भक्तों की जिज्ञासा शान्त करने के लिए विदेश भेजा। आपका व्यक्तित्व निखर उठा। तीन वर्ष विदेश में रहकर आपने गुरुदेव का सन्देश जन-जन को सुनाया।

1962 में भारत लौटते ही आप दक्षिण-भारत की यात्रा पर निकल पड़े। मन्दिरों, तीर्थों के दर्शन करते, साधु-सन्तों का सत्संग करते और भक्तों को दर्शन देते तथा प्रवचन करते आप गुरुदेव की महासमाधि के आठ दिन पूर्व ही आश्रम पधारे। यह एक अलौकिक घटना तथा गुरुदेव की आन्तरिक प्रेरणा थी।

गुरुदेव का पार्थिव शरीर समाधिस्थ होने को था। भक्तगण बिलख रहे थे। पशु-पक्षी भी अश्रु बहा रहे थे। पवन शान्त था। स्वामी चिदानन्द जी मौन थे, शान्त और गम्भीर थे। सोच रहे थे—"यह शरीर तो मिटना ही था और आत्मा अमर है, तब शोक किसका और किसलिए ? फिर गुरु तो सदा सजीव ही रहता है।" उन्होंने गुरुदेव का स्मरण किया और गुरुदेव उनके सामने थे,...हां...हां, वे गुरुदेव ही थे,

मुस्करा रहे थे और कह रहे थे—तुम किस चिन्ता में हो चिदानन्द ? क्या सोच रहे हो ? मैं तो यहीं हूँ, तुम सबके निकट हूँ। एक प्रकाश की रेखा कौंध गयी। मोह का मानो आवरण उठ गया। स्वामी चिदानन्द जी ने अनुभव किया—गुरुदेव वहीं थे। निश्चय ही वहीं थे।

गुरुदेव की महासमाधि के पश्चात् सहयोगियों तथा भक्तों के आग्रह पर तथा उनके अनुनय-विनय पर सर्वसम्मति से आपने गुरुदेव के उत्तराधिकारी के रूप में, 'दिव्य जीवन संघ' के परमाध्यक्ष का पद सम्भाला। संघ की शाखाओं को सुसंगठित किया, भक्तों का मार्ग-दर्शन किया तथा उन्हें सान्त्वना दी।

विश्व-शान्ति की कामना और आध्यात्मिक उन्नति की लालसा से 1968 में एक बार पुनः यह योगी, संन्यासी, तपस्वी निकल पड़ा विश्व-भ्रमण को। एक देश से दूसरे देश में गुरुदेव का सन्देश दिया और दिव्य-जीवन-यापन का रहस्य बताया, आध्यात्मिकता का अलख जगाया। 1970 में आप पुनः आश्रम पधारे।

स्वामी विवेकानन्द के पश्चात् स्वामी रामतीर्थ और अब स्वामी चिदानन्द हैं जिन्हें संसार जानता है और जिनकी आत्मिक शक्ति को मानता है तथा भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। 1971 से 1976 की अवधि में पूज्य स्वामी जी निरन्तर देश के विभिन्न भागों में आयोजित प्रान्तीय तथा अखिल भारतीय दिव्य जीवन सम्मेलनों में भाग लेने के लिए यात्रायें करते रहे। इसी अवधिकाल में उन्होंने अनेक बार विदेश की यात्रायें भी की तथा साधकों का मार्ग दर्शन किया।

धन्य है यह शिवानन्दाश्रम ! धन्य है उत्तराखण्ड ! !
धन्य है यह धरती—भारतवर्ष ! ! !

—स्वामी अशेषानन्द सरस्वती

रुद्राष्टकम्

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मदेवस्वरूपम् ।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकारमाकाशवासं भजेऽहम् ।।१।।

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं
गिराज्ञानगोतीतमीशं निरीशम् ।
करालं महाकालकालं कृपालुं
गुणागारसंसारपारं नतोऽहम् ।।२।।

तुषाराद्रिसंकाशगौरं गभीरं
मनोभूतकोटिप्रभासी शरीरम् ।
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारुगंगा
लसत्फालबालेन्दु कण्ठे भुजंगम् ।।३।।

चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालं
प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालुम् ।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं
प्रियं शङ्कर सर्वनाथं भजामि ।।४।।

प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं
अखण्डं भजे भानुकोटिप्रकाशम् ।
त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिं
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम् ।।५।।

कलातीतकल्याणकल्पान्तकारी
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारिः ।

चिदानन्दसन्दोहमोहापहारी
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारिः ॥६॥

न यावदुमानाथपादारविन्दं
भजन्तीह लोके परे वा नराणाम्।
न तावत्सुखं शांतिसंतापनाशं
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवास ॥७॥

न जानामि योगं जपं नैव पूजां
नतोऽहं सदा सर्वदा देव तुभ्यम्।
जराजन्मदु:खौघतातप्यमानं
प्रभो पाहि शापान्नमामीश शम्भो ॥८॥

अपने मन को जप, धारणा, ध्यान, स्वाध्याय, सत्सङ्ग अथवा कुछ उपयोगी कार्य में सदा संलग्न रखिए।

साधना मे नियमित रहना, अनिवार्यत: आवश्यक है। इस बात को सदा अपने ध्यान में रखिए।

आप सदा ईश्वर के नाम-गायन और निष्काम्य-सेवा करते हुए, अपनी वस्तुओं को बाँटते हुए तथा नियमित जप व ध्यान में, सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करें।

— प्रार्थना —

हे प्रभु !

मेरी इच्छा सबल बना दे ।
जिससे मैं प्रलोभनों का
संवरण कर सकूं,
इन्द्रिय तथा निम्न-प्रकृति का
दमन कर सकूँ,
अपनी पुरानी आदतों को
बदल सकूँ,
आत्मार्पण को
पूर्णतया सत्य बना सकूँ,
मेरे हृदय में आसीन हो जा ।।

एक क्षण भी,
इस स्थान से अन्यत्र
कहीं नहीं जा ।
मेरे शरीर, मन तथा इन्द्रियों को
अपने काम में ला ।
मुझे इसके योग्य बना कि
मै सदा सर्वदा,
तुझ में ही निवास करूँ ।।

—स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रातः स्मरणीय

स्वामी श्री शिवानन्दजी महाराज
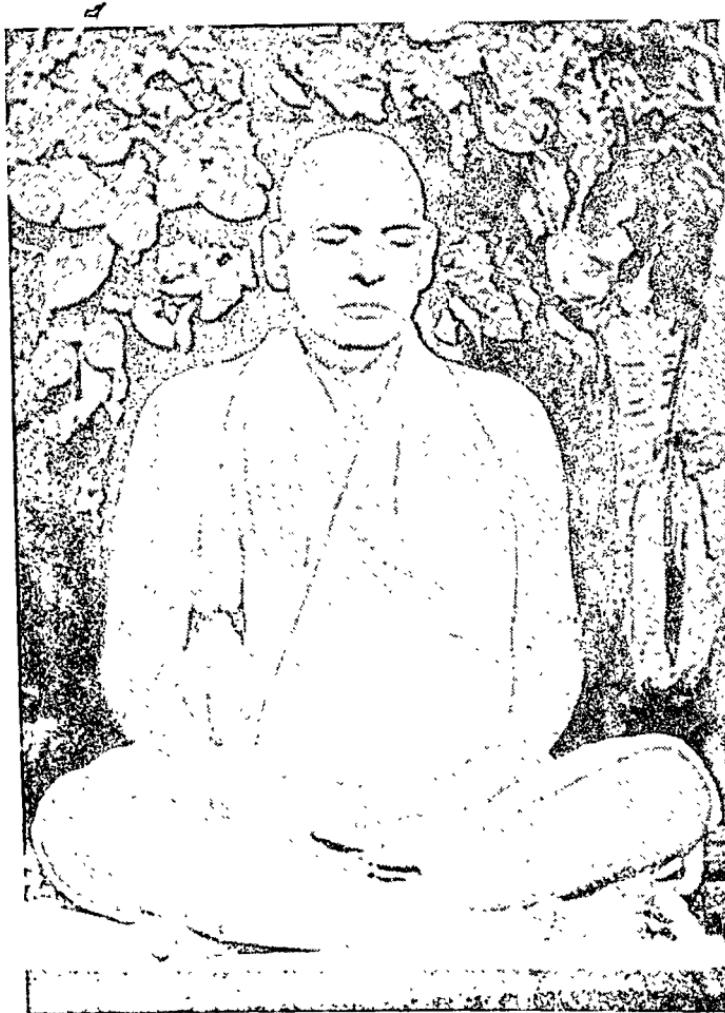
'स्नेह', 'सेवा', 'सत्य' और, 'प्रेम' की वर्षा झरे।
शिवानन्द दिव्य ज्योति, प्राण मन का तम हरे ।।

श्री अमरनाथजी चौपड़ा
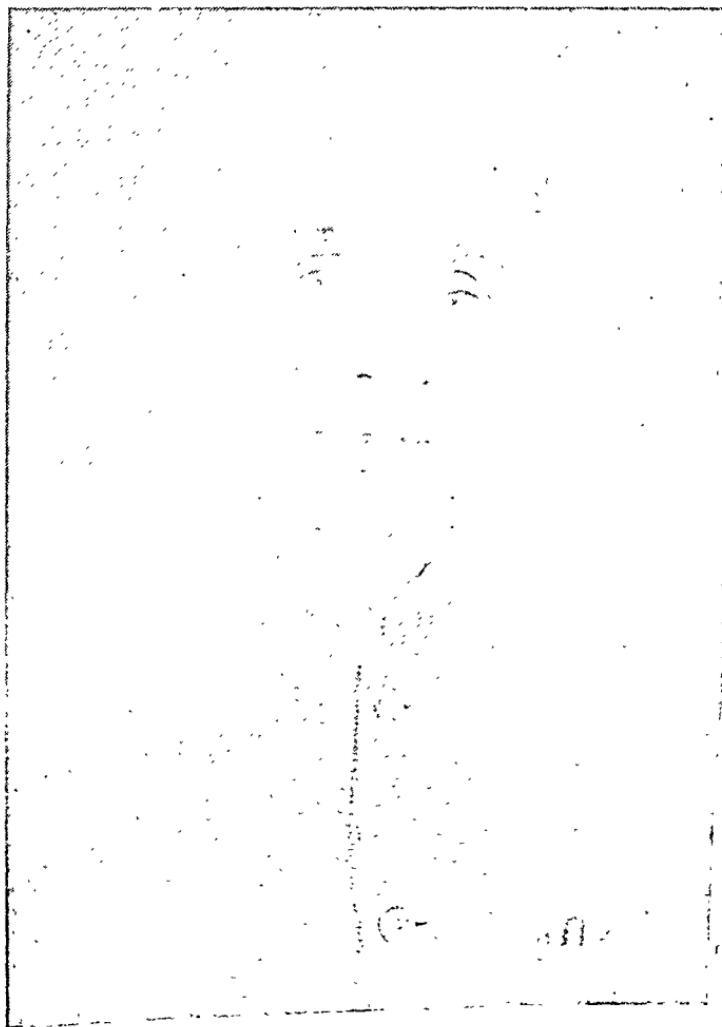
जिनके सात्विक दान से इस ग्रन्थ रत्न का प्रकाशन हो रहा है।
परम कल्याणमय प्रभु की कृपा एव स्वामी श्री शिवानन्दजी
महाराज का आशीर्वाद
उन पर और उनके परिवार के स
पर सदैव बना रहे।

साधना : एक विश्लेषण

साधना शब्द की उत्पत्ति 'साध्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है प्रयत्न करना, किसी विशेष सिद्धि की प्राप्ति के लिए प्रयास करना। जो प्रयत्न करता है उसे 'साधक' कहते हैं। यदि अभीष्ट फल-सिद्धि की प्राप्ति हुई तो उसे 'सिद्ध' कहते हैं। जिसे ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान है, वह 'पूर्ण सिद्ध' है। साधना के बिना आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर दर्शन संभव नहीं है। कोई भी आध्यात्मिक प्रयत्न साधना है। 'साधना' तथा 'अभ्यास' पर्यायवाची शब्द हैं जो साधना से प्राप्त हो उसे 'साध्य' कहते हैं। ईश्वर साक्षात्कार ही साध्य अथवा लक्ष्य है।

यदि आप शीघ्र उन्नति करना चाहते हैं तो आपको ठीक प्रकार की साधना मालूम हो जानी चाहिये। यदि आप आत्मावलम्बी हैं तो आप स्वयं ही नित्य के अभ्यास के लिए साधना को चुन सकते है। यदि आप में आत्मार्पण का भाव है तो अपने गुरु से अपने लिए उपर्युक्त साधना का प्रकार प्राप्त कर लीजिये तथा गम्भीर श्रद्धा के साथ उसका अभ्यास कीजिये।

ॐ! उस पूज्य प्रभु को नमस्कार है जिससे महत्तर इस जगत में कुछ भी नहीं है तथा जो इस जगत से अतीत है।

आप अनावश्यक ही अपना बन्धन दीर्घकाल तक क्यों बनाये रखेंगे? अभी-अभी अपने जन्माधिकार को प्राप्त क्यों नहीं करते? अभी आप अपने बन्धन को क्यों नहीं तोड़ते? विलम्ब का अर्थ है कष्टों की वृद्धि। आप किसी भी क्षण बन्धन को तोड़ सकते हैं। यह आपकी शक्ति के अन्दर है, अभी कीजिये, खड़े हो जाइये, कटिबद्ध होइये। उग्र तथा अनवरत साधना कीजिये। मुक्ति प्राप्त कर नित्य सुख का उपभोग कीजिये।

अनुशासन, तप, आत्म संयम तथा ध्यान के द्वारा निम्न प्रकृति को उच्च प्रकृति का सेवक बना डालिये। यही आपकी मुक्ति का समारम्भ है।

आपके अन्दर का ईश्वरत्व आपके बाहर की वस्तुओं से अधिक शक्तिशाली है, अतः किसी भी वस्तु से भय न कीजिये। अपनी अन्तरात्मा पर ही निर्भर रहिये। अन्तर्दृष्टि द्वारा मूल से शक्ति पाइये।

त्याग के बिना आप कदापि सुखी नहीं हो सकते। त्याग के बिना आप कभी विश्राम नहीं कर सकते। अतः सब कुछ त्याग डालिये। सुख पर अपना अधिकार जमाइये। त्याग को ही सर्वश्रेष्ठ मानिये।

अपना सुधार कीजिये। चरित्र का निर्माण कीजिये। हृदय को शुद्ध बनाइये। वृत्तियों को शान्त कीजिये। उफनते आवेगों को स्तब्ध कीजिये। वहिर्मुख इन्द्रियों को समेट लीजिये। वासनाओं को नष्ट कीजिये। आप गम्भीर ध्यान में महिमामय आत्मा के दर्शन करेंगे।

पूर्ण स्वतन्त्रता तथा निर्वाण की प्राप्ति के पांच साधन हैं। इनसे ही परम सुख की प्राप्ति होती हैं। यह है सत्संग, विवेक, वैराग्य, 'मैं कौन हूँ ?' का विचार तथा ध्यान। ये ही स्वर्ग हैं, ये ही धर्म हैं, ये ही सर्वोच्च सुख हैं।

पहले भला बनिये तब इन्द्रियों का दमन कीजिये, तब निम्न मन को उच्च मन से पराजित कीजिये, तब ईश्वरीय ज्योति का अवतरण होगा।

बिना जल्दबाजी किये शान्तिपूर्वक, संलग्नतापूर्वक ध्यान का अभ्यास कीजिये। आप शीघ्र ही समाधि प्राप्त कर लेंगे।

आध्यात्मिक जीवन कठिन तथा श्रमयुक्त है। इसके लिए सतत् सावधानी तथा उत्साह की आवश्यकता है। तभी ठोस उन्नति सम्भव है।

आपने स्वयं ही अज्ञानवश बन्दीगृह की दीवारें अपने लिए खड़ी की हैं। आप विवेक तथा 'मैं कौन हूँ ?' के विचार द्वारा इन दीवारों को ध्वस्त कर सकते हैं।

कष्ट आदमी को शुद्ध बनाते हैं। वे पाप तथा मल को जला डालते हैं। ईश्वरत्व अधिकाधिक प्रकट होने लगता है। उससे आन्तरिक शक्ति

मिलती है, इच्छाशक्ति विकसित होती तथा तितिक्षा शक्ति बढ़ती है। अतः कष्ट भी छिपे रूप से वरदान ही हैं।

ध्यान के समय प्रकाश की एक किरण भी आपके मार्ग को आलोकित करेगी। इससे आपको पर्याप्त उत्साह तथा आन्तरिक बल मिलेगा। इससे आप अधिकाधिक साधना करने के लिये प्रेरित होंगे। ध्यान की गम्भीरता बढ़ने पर, शरीर चैतन्य से ऊपर उठने पर आप इस प्रकाश किरण का अनुभव करेंगे।

आत्मा की प्रसुप्त क्षमताओं का प्रस्फुटन ही जीवन है। दिव्य जीवन बिताइये। ध्यान, जप, कीर्तन तथा स्वाध्याय के द्वारा विचारों को उन्नत कीजिये।

शाश्वत जीवन की सरिता में स्नान कीजिये। डुबकी लगाइये। गोता लगाइये, तैरिये, उसमें उतरिये। आनन्द कीजिये।

सूर्य-स्नान के द्वारा शरीर को स्वस्थ बनाइये। नित्य वस्तु आत्मा में सूर्य-स्नान के द्वारा आत्मा को स्वस्थ बनाइये। आप सुन्दर, स्वास्थ्य तथा शाश्वत जीवन प्राप्त करेंगे।

आत्मा रूपी पुष्प की कली का प्रस्फुटन ही पूजा है। पूजा ही जीवन है पूजा से ही नित्य जीवन की प्राप्ति होती है। आप युद्ध में लाखों व्यक्तियों को जीत सकते हैं, परन्तु मन पर विजय पाने से ही आप वास्तविक विजेता बन सकेंगे।

जब तक आपकी इन्द्रियां विजित नहीं होती तब तक आपको तपस्या, दम तथा प्रत्याहार का अभ्यास करते रहना चाहिये।

जब विद्युत बल्ब कई परतों वाले कपड़े से ढ़का रहता है तब उसकी प्रखर रोशनी प्राप्त नहीं होती। एक-एक कर परत हटाते जाइये और रोशनी प्रखरतर होती जायगी। उसी तरह स्वयं-प्रकाश आत्मा भी पचकोशों से ढका हुआ है। ध्यान अथवा 'नेति-नेति' के अभ्यास के द्वारा एक-एक कर कोश को उतारते जाइये। आत्मा का प्रकाश बढता जायगा।

शान्तचित्त होकर बैठ जाइये। शरीर तथा मन के ऊपर अपना

स्वामित्व स्थापित कीजिये अपने हृदय के प्रकोष्ठ में गहरा गो लगाइये तथा गम्भीर मौन-सागर में निमग्न हो जाइये। इस निःश वाणी को सुनिये।

पहले हृदय को बनाइये, तब योग की सीढ़ी पर साहस त अविरल उत्साह के साथ बढ़ते जाइये। शीघ्र ही ऊपर चढ़िये। ऋतंभ प्रज्ञा प्राप्त कर ज्ञान-मन्दिर में प्रवेश कीजिये। वहां धर्ममेघ से अमृ की वर्षा होती है।

निश्चित भित्ति पर आध्यात्मिक जीवन का निर्माण कीजिये ईश्वर कृपा तथा चरित्र-बल ही पक्की नींव है। ईश्वर तथा उस सनातन नियम की शरण में जाइये। इस पृथ्वी तथा स्वर्ग में ऐसी को शक्ति नहीं है जो आपके मार्ग में व्यवधान डाले। आत्म-साक्षात्कार सफलता निश्चित है। आपके लिये विफलता है ही नहीं। आपके मा पर आलोक है। सब कुछ प्रकाशमय है।

साधना का अर्थ कोई भी आध्यात्मिक अभ्यास है जिससे साधक ईश्वर को प्राप्त कर सके। साधना वह साधन है जिससे जीवन के लक्ष्य को पाया जाय। योग्यता, रुचि तथा उन्नति के स्तर के अनुसार व्यक्ति-व्यक्ति में साधना की भिन्नता होती है। हर व्यक्ति को अनुकूल साधना अवश्य ग्रहण कर लेनी चाहिये जिससे परम लक्ष्य की प्राप्ति हो। साध्य वह है जो साधना से प्राप्त किया जाय। यह ईश्वर या आत्मा या पुरुष है।

जो भक्तिमार्ग का अनुगमन करते हैं उन्हें जप, भागवत या रामायण का स्वाध्याय करना चाहिये। नवधा भक्ति, स्मरण, श्रवण, कीर्तन, वन्दन, अर्चन, पाद-सेवन, सख्य, दास्य तथा आत्म-निवेदन के द्वारा भक्त उच्चकोटि की भक्ति को प्राप्त कर सकता है। भक्त को व्रत, अनुष्ठान, प्रार्थना तथा मानसिक पूजा भी करनी चाहिये। उन्हें दूसरों की नारायण भाव से सेवा करनी चाहिये। भक्तियोगी के लिये यही साधन है।

जो कर्मयोग का अनुगमन करते हैं उन्हें पीड़ित मानव तथा समाज की विविध रूप से निष्काम्य सेवा करनी चाहिये। उन्हें कर्म के फल को

ईश्वरार्पित कर देना चाहिये। ईश्वर के हाथों का निमित्त समझकर उन्हें कर्ता भाव का त्याग करना चाहिये। स्वार्थ से मुक्त होकर इन्द्रियों का दमन करना चाहिये। अपने जीवन को मानव सेवा के लिये पूर्णतः अर्पित कर देना चाहिये। उन्हें यह मानना चाहिये कि सारा जगत ईश्वर का रूप है। इस भाव के साथ सेवा करने पर कालान्तर में चित्त शुद्ध हो जाता है। यही कर्मयोगियों की साधना है। यह स्वतः लक्ष्य नहीं है। बहुत से भ्रमवश ऐसा मानकर उन्नत साधना का अभ्यास नहीं करते। उन्हें धारणा, ध्यान तथा समाधि का अभ्यास कर परम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिये।

राजयोगी आठ सीढ़ियों से होकर क्रमशः सीढी पर चढ़ता है। प्रारम्भ में वह यम-नियम का पालन करता है। तब वह आसन स्थिर बनाता है। वह प्राणयाम के द्वारा मन को स्थिर बनाता है तथा नाड़ियों का संशोधन करता है। प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान का अभ्यास कर वह समाधि प्राप्त करता है। संयम के द्वारा उसे विविध सिद्धियां प्राप्त होती हैं। वह चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध करता है।

जो ज्ञान मार्ग अथवा वेदान्त का अवलम्बन करते हैं उन्हें सर्वप्रथम साधना-चतुष्टय-विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत तथा मुमुक्षुत्व-से युक्त होना चाहिये। तब वे ब्रह्मनिष्ठ गुरू के पास जाते हैं एवं उनसे श्रुतियों का श्रवण करते हैं। श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के अभ्यास से वे आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करते है। तब ज्ञानी आनन्द में कह उठता है, "आत्मा ही एक-मेवाद्वितीय है। आत्मा ही एक सत्य है। अहम् ब्रह्मास्मि। शिवोऽहम्। सर्वंखल्विदं ब्रह्म। जीवन्मुक्त आत्मा को सभी भूतों में तथा सभी भूतों को आत्मा में देखता है।

हठयोग के साधकों को चाहिये कि वे कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिये प्रयत्नशील बनें। मुद्रा, बन्ध, आसन तथा प्राणायाम के द्वारा मूलाधार चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जगाया जाता है। उन्हें प्राण तथा अपान को संयुक्त कर इस संयुक्त प्रवाह को सुषुम्ना नाड़ी से ले जाना चाहिये। कुम्भक के द्वारा गर्मी बढ़ती है तथा कुण्डलिनी के साथ वायु विभिन्न चक्रों से होते हुए सहस्त्रार को जाती है। सहस्त्रार

चक्र में जब कुण्डलिनी भगवान से मिल जाती है तब योगी परमशान्ति, सुख तथा अमृतत्व प्राप्त कर लेता है।

जीवन का लक्ष्य भगवत् साक्षात्कार अथवा आत्म साक्षात्कार है। यह सबों का लक्ष्य है। इसमें वर्ण, राष्ट्रीयता, शैक्षणिक योग्यता, सामाजिक परिस्थिति, जाति, सम्प्रदाय और स्त्री पुरुष का कोई अपवाद नहीं है। सभी प्राणी चेतन अथवा अचेतन अवस्था में इस लक्ष्य की ओर प्रगतिशील हैं। मनुष्य का जीवन आत्मिक है, परन्तु इसे उसने भुला दिया है। उसका इहलौकिक जीवन इस आत्मिक जीवन की योग्यता प्राप्त करने के लिये है। इस विस्मृत आध्यात्मिक जीवन की पुन: प्राप्ति ही उसके इहलौकिक जीवन के संघर्ष को पूर्णता तथा उसकी सफलता और उपलब्धियों की पूर्णता है। जब मनुष्य भगवत-साक्षात्कार के पीछे लगता है और वह अपने को सम्पूर्ण ससीम, क्षुद्र एवं विनाशशील पदार्थों से मुक्त बनाने के लिये संघर्षरत होता है तभी उसके मानव व्यक्तित्व का पूर्ण सौन्दर्य, उसके अस्तित्व का पूर्ण गाम्भीर्य तथा उसकी प्रकृति की गरिमा और महिमा प्रकट होती है।

संकल्प और इच्छा मात्र से ही परम लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। आत्मज्ञान की प्राप्ति एक महान कार्य है। श्रुतियों ने इस संघर्ष को 'क्षुरस्य धारा' की संज्ञा दी है। साधक जब तक भगवत–साक्षात्कार नहीं कर लेता तब तक उसे निरन्तर एक बलिदान के पीछे दूसरा बलिदान देना होता है, एक कठोर परीक्षा के अनन्तर दूसरी कठोर परीक्षा से गुजरना होता है तथा एक समस्या के पश्चात दूसरी समस्या का समाधान ढूंढ़ना होता है। अतृप्त आध्यात्मिक पिपासा, अक्षुण्ण उत्साह और गम्भीरता मन की एकाग्रता तथा किसी भी मूल्य पर लक्ष्य तक पहुंचने का निश्चय ये ही वे अस्त्र हैं जिनसे भगवान की खोज करने वाले व्यक्ति को सुसज्जित होना पड़ता है। तब निश्चय ही उसे आत्म साक्षात्कार की प्राप्ति होगी और वह सन्त के रूप में विभासित होगा।

साधना की आवश्यकता

समय बहुत ही मूल्यवान है। आप समय के मूल्य को नहीं समझते। मरणासन्न रोगी के निकट स्थित डाक्टर से आप कहेंगे, 'डाक्टर साहब इस रोगी के लिये कुछ तो कीजिये। कोई शक्तिशाली इंजेक्शन ही दे डालिये। कम से कम कुछ घन्टों तक तो श्वास को चलने दीजिये। मेरा भाई बम्बई से रोगी को देखने के लिये आ रहा है।' डाक्टर केवल यही उत्तर दे सकता है, 'मेरे प्रिय मित्र, मैं अब कुछ भी नहीं कर सकता। यह मामला अब काबू के बाहर है। यह रोगी अब पांच मिनट के अन्दर ही मर जायेगा।' अब आप समय के मूल्य को पहचानेंगे। आप पछतायेंगे कि कितने दिन, महिने तथा वर्ष आपने व्यर्थ गप-शप तथा विषय सुख में ही बिता डाले।

आप पगड़ी बांधने में ही दो घन्टे का अपव्यय कर सकते हैं। आप बहुत सा समय दाढ़ी बनाने, बाल संवारने में ही बिता सकते हैं परन्तु यदि कोई भक्त आपको सत्संग में बुलाने के लिये आ जाय, तो आप कहेंगे 'बाबाजी, मेरे पास तो समय नहीं है। मुझे डाक्टर के पास जाकर औषधि लेनी है मुझे बाहर से सामग्रियां लानी है।' इस तरह आप सैकड़ों बहाने बनाते हैं।

सिनेमा तथा ड्रामा के लिये आप जागरण करते हैं, परन्तु वैकुण्ठ एकादशी या शिवरात्रि के दिन आप जागरण नहीं करते। कितनी दयनीय स्थिति है।

प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर के दर्शन करना चाहता है। परन्तु कोई भी साधना करना नहीं चाहता। यदि गुरू कहते हैं—'ध्यान, प्राणायाम तथा स्वाध्याय का अभ्यास करो।' तो शिष्य कहता है-मेरे पास उन सबके लिये समय नहीं है। गुरु कहते हैं, 'ईश्वर के नाम का जप करो।' शिष्य उत्तर देता है' मैं पहले से ही उन्हें जानता हूँ। यह तो बहुत लम्बा तथा मन्द मार्ग है। मुझे नाम में विश्वास भी नहीं है।

बैठो।' तो आप कहते हैं—'मैं पन्द्रह मिनट से अधिक बैठ नहीं सकता यदि मैं अधिक देर तक बैठूँ तो मेरे अंग में दर्द होने लगता है।' यदि आपको उपासना के लिए कहा जाय तो आप कहेंगे, "उपासना में क्या रखा है। मूर्ति पूजा बेकार है। मै चित्र पर मन को एकाग्र नहीं कर सकता। चित्र तो चित्रकार की कल्पना है। मैं तो सर्व व्यापक निराकार ब्रह्म पर ध्यान करना चाहता हूँ। चित्र पर ध्यान करना तो बच्चों का खेल है। यह मेरे लिये अनुकूल नहीं।' तब गुरु कहते हैं "तो दो घन्टे के लिये नित्य कीर्तन तथा जप ही कीजिये।" आप कहेंगे—"जप तथा कीर्तन में कुछ भी नहीं है। यह तो मन्दबुद्धि वाले व्यक्तियों के लिये ही उपयुक्त है। मै विज्ञान अच्छी तरह जानता हूं, मैं इन वस्तुओं को नहीं कर सकता। मैं जप तथा कीर्तन से परे हूं। मैं तो पूर्ण आधुनिक व्यक्ति हूं।" यदि पुरोहित शास्त्रीय विधि से हवन करता है तो आप कहते हैं "पुरोहित जी! ये सब क्या कर रहे हैं? शीघ्रता कीजिये। मुझे भूख लगी है। मुझे दस बजे आफिस जाना है।" यदि पुरोहित शीघ्रता करता है तो आप कहते हैं "इस पुरोहित ने कुछ घन्टे के लिये कुछ उच्चारण किया और कहता है कि हवन समाप्त हो गया। यह सब समय, धन तथा शक्ति का अपव्यय ही है। मुझे हवन में श्रद्धा नहीं है। इसमें कोई भलाई नहीं।"

यदि गुरु कहते हैं—"तो प्राणायाम कीजिये। शीर्षासन का अभ्यास कीजिये। शीघ्र ही कुण्डलिनी जग जायगी।" आप कहेंगे—मैंने छः महिने प्राणायाम का अभ्यास किया। मेरा शरीर गर्म हो गया। यह मेरे लिये अनुकूल नहीं है। मैंने अभ्यास छोड़ दिया। शीर्षासन करते समय मैं गिर पड़ा था। मैंने उसे भी छोड़ दिया।"

यह आपकी भूल है। आप बिना साधना के ही किसी तरह का आध्यात्मिक साक्षात्कार तथा आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं, आप पल मात्र में ही समाधि चहते हैं?

आप मौज का जीवन बिताते हैं। आप ईश्वर साक्षात्कार के लिये कठिन परिश्रम करना नहीं चाहते। यदि कोई काम करना हो तो कहेंगे, मैं इसे कल करूंगा, मैं आज स्वस्थ नहीं हूँ। डाक्टर ने मुझे भली प्रकार से आराम करने के लिये कहा है। परन्तु यदि मिठाई, हलुआ या रसगुल्ला

है तो कहेंगे, "मैं भूखा हूँ। अभी दे दीजिये। मेरा स्वास्थ्य बिलकुल ठीक है। मैं इसे सुगमता से पचा सकता हूँ।"

हे नर! भगवान बुद्ध ने उरुबेला जंगल में बड़ी तपस्या की। प्रभु जीसस ने अज्ञातवास में बड़ी कठोर साधना की। सारे साधु तथा योगियों ने कठिन तप तथा ध्यान किये हैं। बालक ध्रुव ने वायु, जल तथा पत्तों पर जीवन निर्वाह करते हुए कठिन तपस्या की थी।

काम, मद, द्वेष आदि बुरी वृत्तियाँ गहरी गड़ी हुई हैं। अभिमान तथा राग-द्वेष साधुओं तथा संन्यासियों को भी नहीं छोड़ते। किसी महात्मा के पास जाकर कहिये, "आपका भाषण बड़ा ही सुन्दर तथा प्रेरणापूर्ण था। आपने सभी बातों का सम्यक् विवरण दिया है। परन्तु मैं आपकी दो एक बातों से सहमत नहीं हूँ।" वह तुरन्त ही आप पर क्रोध करता हुआ कहेगा, "तू मुर्ख है। मेरी तू समालोचना करता है? मैं महा विद्वान् तथा व्यावहारिक योगी हूँ।" माया बड़ी शक्तिशाली है। आत्मार्पण के द्वारा आपको ईश्वर कृपा प्राप्त करनी होगी। यही कारण है कि भगवान कृष्ण कहते हैं, "गुणों से बनी हुई यह मेरी दैवी माया बड़ी ही दुस्तर है। जो मेरी शरण में आते हैं वे लोग ही इस माया का संतरण कर पाते हैं।"

मोह अथवा राग ही अमृतत्व का भयानक शत्रु है। राग से मुक्त होना बड़ा ही कठिन है। भ्रमर काष्ठ में भी छेद कर सकता है, परन्तु मधु की आसक्ति के कारण नष्ट हो जाता है। वह फूलों पर बैठता है तथा शनैः-शनैः मधु-पान करता है। सूर्यास्त होने पर पद्म दल संकुचित हो जाते हैं, पद्म का मुख बन्द हो जाता है। भ्रमर आसक्तिवश बाहर निकलना नहीं चाहता। वह मूर्खतावश सोचता है कि कल सूर्योदय होने पर फूल से निकल कर उड़ जाऊँगा। हाथी आता है और उस फूल को कुचल डालता है। यही दशा मनुष्य की भी है। वह बड़े आश्चर्यों को कर सकता है। परन्तु वह ससार के विविध पदार्थों से आसक्त होकर नष्ट हो जाता है। कालरूपी हाथी (स्त्री तथा धन) पद्म को कुचल कर उसे भी नष्ट कर डालता है।

सर्प के मुख में मेंढक है। मेंढक का मुख ही बाहर है। यह कुछ ही मिनटों में मृत्यु का शिकार बन जायगा फिर भी इस स्थिति में वह

अपनी जिह्वा को बाहर फेंक कर एक या दो कीड़ों के खाने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। हे मूर्ख मनुष्य ! उसी प्रकार आप तो पहले ही से काल के मुख में पड़े हुए हैं। आप कुछ ही क्षण में काल-कवलित हो जायेंगे। फिर भी आप में तृष्णा है तथा आप बारंबार विषय-सुखों से आसक्त बना करते हैं। आप मोह के गुलाम बने बैठे हैं।

मृत्यू आपको निगल जाने के लिये प्रतीक्षा कर रही है। वैराग्य, विवेक तथा संयम के द्वारा पद्‌म का भेदन कीजिये। राग का परित्याग कीजिये। ईश्वर के नाम में श्रद्धा रखिये। जप तथा ध्यान कीजिये और अमृतत्व प्राप्त कीजिये।

समय रहते ही साधना कीजिये। जब आप युवा तथा स्वस्थ हैं तभी साधना कीजिये। युवावस्था में जब आपके पास पर्याप्त शक्ति है, आपको धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। वृद्धावस्था में आप कुछ भी साधना नहीं कर सकते।

साधना के तीन प्रमुख तत्व

धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों के प्रचुर परिशीलन के पश्चात् भी बहुत से लोग यह नहीं जानते कि व्यवहार में क्या लाना चाहिये जिससे कि जीवन के लक्ष्य-ईश्वर साक्षात्कार की प्राप्ति हो। ईश्वर साक्षात्कार के लिये तीन बातें आवश्यक हैं :—

1. ईश्वर का सतत् स्मरण,
2. सद्‌गुणों का अर्जन, तथा
3. सारे कार्यों का आध्यात्मीकरण।

1. ईश्वर का सतत् स्मरण

प्रारम्भ में कुछ त्रुटि होगी, परन्तु बारम्बार के अभ्यास से आप शनैः-शनैः सतत् स्मरण बनाये रख सकेंगे। अधिकांश लोगों के लिये सतत् स्मरण ही सम्भव है। कुण्डलिनी का जागरण तथा ब्रह्माकार

वृत्ति की प्राप्ति बहुत ही कठिन है, परन्तु मन के शुद्ध हो जाने पर उनकी प्राप्ति स्वतः ही हो जाती है।

2. सद्‌गुणों का अर्जन

सारे सद्‌गुणों में अहिंसा, सत्य तथा ब्रह्मचर्य सर्वोपरि हैं। यदि आप एक सद्‌गुण में भी प्रतिष्ठित हैं तो अन्य सारे सद्‌गुण स्वतः आपके पास आ जायेंगे। वृत्तियों का निरीक्षण कीजिये। अन्तर्निरीक्षण कीजिये। मन, वाणी तथा कर्म से शुद्ध बनिये। प्रारम्भ में कम से कम शारीरिक ब्रह्मचर्य का ही पालन कीजिये। मानसिक ब्रह्मचर्य की प्राप्ति तब स्वतः ही हो जायगी।

3. सारे कार्यों का आध्यात्मीकरण

भान कीजिये कि आप ईश्वर के हाथों में निमित्त मात्र हैं तथा सारी इन्द्रियां उसकी ही हैं। इस मंत्र का जप कीजिये: "मैं तेरा हूँ, सब तेरा है, तेरी ही इच्छा होगी।" यह आत्मार्पण के लिये सुन्दर है। हो सकता है कि आप इस मंत्र को भूल जावें। अहंकार अपना प्रभाव जमाना चाहेगा परन्तु बारम्बार के अन्तर्निरीक्षण के द्वारा अपने दोषों को ढूँढ निकालिये। इस भाव में स्थित होने का प्रयास कीजिये—'मैं ईश्वर के हाथों में एक यन्त्र हूँ।'

आध्यात्मिक साधना के पूर्वापेक्ष्य (I)

मैं यहाँ उन मुख्य गुणों की चर्चा करूंगा जो कि वास्तविक साधना के लिये आवश्यक हैं। प्राचीनकाल से ही आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त सन्त, ऋषि तथा भक्तजन यह घोषणा करते आ रहे हैं कि यदि मनुष्य पाप-पंकिलमय विषय जीवन से मुख मोड कर उन्नत दिव्य जीवन के लिये प्रयत्नशील हो तो वह महान् सुख, अपार शक्ति तथा असीम ज्ञान का अनुभव कर सकता है। फिर भी आज हम देखते हैं कि मनुष्य सांसारिकता में, यदि अधिक नहीं तो उतना ही निमग्न है जितना कि वह शताब्दियों पूर्व था तथा मानव जाति आत्मिक जीवन के प्रश्नों के

प्रति उतना ही उदासीन तथा आलसी है जितना कि सृष्टि के प्रारम्भ में था। बहुत से महर्षियों की घोषणाओं, सत् शास्त्रों के विश्वसनीय आश्वासनों तथा मनुष्य के बारम्बार ऐहिक विषय सुख के मिथ्यात्व सम्बन्धी अनुभवों के होते हुए भी आप बारम्बार धोखे में पड़ रहे हैं, ऐसा क्यों ? मानव ने साधना पथ पर अभी तक चलना सीखा नहीं, ऐसा क्यों ? हम सैंकड़ों आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ते हैं, हम प्रवचनों को सुनते हैं तथा साधना सप्ताह में सम्मेलन भी बुलाते हैं। वर्षों तक आध्यात्मिक ग्रन्थों के गम्भीर अनुशीलन, साधुओं की संगति तथा बारम्बार उपदेश श्रवण के अनन्तर भी मनुष्य रचनात्मक रूप से कुछ करता नहीं, क्योंकि उसमें साधुओं के उपदेशों तथा धर्मग्रन्थों के प्रति गम्भीर तथा स्थायी श्रद्धा नहीं है। बाह्य पदार्थों में उसकी श्रद्धा उसके लिये अधिक सत्य है। यदि मनुष्य को इन महापुरुषों में श्रद्धा होती तो वह उनके कथनानुसार चलने के लिये अवश्य बाध्य होता। श्रद्धा का अभाव ही साधना में विफलता का मूल कारण है। साधना आवश्यक है किन्तु मनुष्य इसे करता नहीं क्योंकि इसकी आवश्यकता में उसे विश्वास नहीं है। मनुष्य को इसमें विश्वास है कि उसके सुख के लिये उसे धन की आवश्यकता है, मनुष्य को विश्वास है कि यदि उसे अच्छी नौकरी मिल जाय तो उसे धन प्राप्त होगा। उसे विश्वास है कि यदि उसे कालेज शिक्षा प्राप्त हो तो अच्छी नौकरी मिल सकती है और उससे धन और धन से उसके इच्छानुसार सुख की प्राप्ति। इस पर विश्वास कर माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं तथा शैशवावस्था से ही उस बच्चे में यह विश्वास जमाया जाता है कि यदि वह अच्छे अंकों से परीक्षा में उत्तीर्ण होगा तो उसे अच्छी नौकरी मिलेगी, उसे अच्छा वेतन, मोटर कार इत्यादि प्राप्त होंगे। वह इन बातों मे विश्वास करता है तथा परीक्षायें पास कर आशातीत नौकरी प्राप्त करता है। क्योंकि उसमें विश्वास था, उसने इनकी आवश्यकताओं को समझ लिया था अतः वह इन्हें प्राप्त कर लेता है। परन्तु सभी मनुष्यों का यह दुःखद अनुभव है कि यह सुख दस गुने दुःख से मिश्रित हैं। मनुष्य एक आना सुख प्राप्त करता है और उसके साथ-साथ पन्द्रह आना दुःख भी मिला होता है। दुःख के लिये तो उसने कोई कामना ही नहीं की थी। अतः यदि मनुष्य को साधना के कार्यक्रम में विश्वास हो तो वह

अवश्य तद्नुकूल कार्य करेगा। इस विश्वास के अभाव में ही वह साधना नहीं करता। यदि मनुष्य को साधना-मार्ग का अवलम्बन करना है, यदि वास्तव में ही वह उस सुख को चाहता है जो दुखों से मिश्रित न हो तो उसे निश्चय ही श्रद्धा पर आश्रित होना होगा। इसे अन्धविश्वास कह सकते हैं, परन्तु अन्धविश्वास नामक कोई वस्तु है ही नहीं क्योंकि इस पृथ्वी की सभी वस्तुयें विश्वास-पारस्परिक श्रद्धा पर ही अवलम्बित हैं। यदि आज मनुष्य जी रहा है तो केवल पारस्परिक विश्वास एवं श्रद्धा के कारण ही। दस रुपए का नोट कागज का एक टुकड़ा ही तो है परन्तु चूंकि उस पर राजा के सिर की छाप है इससे आप बाजार से जो चाहे खरीद सकते हैं, क्योंकि आपको इस कागजी टुकड़े में विश्वास है। यदि आपको इस टुकड़े में विश्वास न हो तो आप घर से बाजार के लिये निकलते ही नहीं और न कभी आप अपने उद्देश्य पूर्ति में ही समर्थ होते। डाक्टर आपको कागज के एक टुकड़े पर औषधि लिखकर देता है। यदि आपको विश्वास न हो तो आप उससे यह टुकड़ा लेंगे ही नहीं। परन्तु श्रद्धा के कारण—जिस पर सारा समाज टिका है आप उसकी बातों में विश्वास करते हैं, उसके परामर्श के लिये उसे रुपये देते हैं, उस कागज को औषधि विक्रेता के पास ले जाते हैं तथा औषधि खरीद कर रोग मुक्त बनते हैं। यह सारा सामाजिक विधान श्रद्धा एवं विश्वास के ऊपर ही चलता है। यदि आप गतिशील मानव जाति पर श्रद्धा रखने को तैयार हैं, तो इन वस्तुओं के सृष्टा भगवान के प्रति श्रद्धा रखने में झिझक क्यों? ऋषियों की वाणी पर श्रद्धा रखकर तथा साधना की आवश्यकता समझकर तदनन्तर क्या करना चाहिये? आप में श्रद्धा हो सकती है, आपके सहस्रों हितैषी बहुत अच्छी-अच्छी सम्मतियां आपको दें और आपको उन पर पूर्णतः विश्वास भी हो, परन्तु यदि आप उन्हें अभ्यास में न लावें तो वे योजना मात्र ही रह जायेंगी। अतः साधना में श्रद्धा के उपरांत अभ्यास की बारी आती है। आपको अभ्यास में लग जाना होगा। केवल श्रद्धा ही पर्याप्त नहीं। श्रद्धा को कार्य रूप में परिणत करना होगा। संतों की बात में विश्वास रखकर आप साधना प्रारम्भ कर दें। एकबार साधना प्रारम्भ कर देने के पश्चात् दूसरी मुख्य बात ध्यान देने योग्य यह है कि आप उसे फिर त्याग न दें। संलग्नता बहुत ही आवश्यक है। संसार के समस्त विधान क्रमिक हैं। उनमें अवस्थायें

हैं। कृषि क्रमिक हैं। इसमें बारह महीने लग जाते हैं। आपका बोना खेत की सिंचाई करनी है, मोथों को उखाड़ फेंकना है तथा समय आ पर फसल काटनी है। यदि आप अधीर हैं—आप बीज बो दें औ अंकुरित होते ही यदि आप उन्हें भूमि से निकाल लें तो वह विनष्ट ह जायगा। यदि आपको फसल काटनी है तो धैर्य के साथ उसकी सा अवस्थाओं से गुजरना होगा। कोई व्यक्ति कुए से पानी सींचते सम यदि अचानक रस्सी खींचना बन्द कर दे तो पानी का वह पात्र पहि के सहारे पुनः कुए में जा गिरेगा। उसे तब तक खींचते जाना चाहि जब तक कि पात्र ऊपर न आ जावे। आप तब तक साधना में संलग्न रहिए जब तक कि फल प्राप्त न हो जाय। आपको उसे त्यागना न चाहिये। दूसरी प्रमुख बात यह है कि आध्यात्मिक साधना में केवल सहायक शक्तियाँ ही काम नहीं करती। बहुत सी विरोधी शक्तियाँ भी हैं जो साधक पर आक्रमण कर उसे नीचे घसीट लाती हैं। अतः चौथे आवश्यक अस्त्र धृति की बारी आती है। संलग्न रहते हुए मनुष्य को इतना तो साहस रखना ही चाहिये कि वह बाधाओं से सुगमतया न डिगे। तूफानों का सामना करना पड़ेगा तथा विपरीत परिस्थितियों एवं कठिनाइयों से लड़ते हुए साधना के मार्ग पर अविचल रहना होगा। धृति के सहारे वह हतोत्साह नहीं होता तथा अन्तरात्मा पर आश्रित होकर साधना में अग्रसर होता है और अन्ततः वह उस आदर्श को प्राप्त कर लेता है जिसके लिये इस जगत में उसका जन्म हुआ है। इस प्रक्रिया से गुजरते हुए उसे इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिये कि वह मार्ग की छोटी-छोटी बातों पर भी विशेष ध्यान रखे, उनकी अवहेलना न करे। यदि ऐसा समझ कर कि वह तो निरर्थक है कोई भी छोटी बात छूट गई तो उसे अन्त में पता चलेगा कि उसने व्यर्थ में ही अपना बहुमूल्य समय तथा श्रम गंवाया है। इससे उन्नति में विलम्ब होता है। उच्च आदर्श की प्राप्ति में छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है, क्योंकि उनके संग्रह से ही उच्च आदर्श की प्राप्ति होती है। अतः दृढ़ श्रद्धा, व्यावहारिक साधना, संलग्नता, छोटी-छोटी बातों के प्रति सावधानी तथा परीक्षण में धृति रखते हुए आपको साधना-मार्ग पर पग रखना चाहिये।

आध्यात्मिक साधना के पूर्वापेक्ष्य (2)

किसी भी प्रश्न पर विचार करते समय उसके विभिन्न पहलुओं पर भी विचार कर लेना आवश्यक होता है, जिससे कि वह पूर्ण रूप से समझा जा सके। साधारणत: कुछ पहलुओं पर तो विशेष जोर डाला जाता है, परन्तु अन्य को यों ही छोड़ दिया जाता है। वह व्यक्ति की अपनी-अपनी रुचि पर निर्भर करता है। ऋषियों ने मानव जीवन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें बतलाई हैं—यह जीवन किससे निर्मित है, यह क्योंकर क्षणभंगुर है? इसका लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार अथवा भगवद्दर्शन है। इसके लिये विभिन्न साधन जैसे कि भगवन्नाम का जप आदि बतलाये गये हैं। महर्षि पातंजलि ने यम, नियम आदि के अभ्यास को बतलाया है। अमृततत्व के प्रासाद के निर्माण हेतु हमें यम-नियम की दीवारें खड़ी करनी पड़ेंगी तथा शम-दम के दरवाजे तथा खिड़कियां बनाने पड़ेंगे। यहाँ कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जिसे आप अपनी कह सकें। सर्वत्र ही जीवन क्षणभंगुर है. सर्वत्र अनित्यता है। ये सभी विषय की समस्या के पहलू हैं। इसके समाधान का भी पहलू है। समाधान का सिद्धाँत एक उप पहलू है तथा समाधान का अभ्यास उसका दूसरा उप पहलू है। जीवन पर विचार करते समय हम जीवन की समस्या शोक, दु:ख, क्लेश तथा इनसे छुटकारा पाने के उपाय आदि प्रश्नों को रखते हैं फिर उसके समाधान पर विचार करते हैं—सत्संग, भगवन्नाम का जप, शम, दम तथा धर्म के विषय का प्रतिपादन करते हैं। समाधान के पहलू में समाधान के सिद्धान्त का अपना स्थान है किन्तु साधक एवं सच्चे जिज्ञासु होने के नाते आप सभी साधना के पहलू को अन्य बातों की अपेक्षा विशेष पसन्द करेंगे। पहलू दो हैं। एक पुस्तक कहती है कि यदि आप अमुक औषधि लें तो आपका रोग दूर हो जायगा। यह ठीक उसी प्रकार का कथन है जैसा कि जप तथा उपासना से विक्षेप को दूर किया जा सकता है। परन्तु एक दूसरी पुस्तक है। वह कहती है कि यदि आपको यह रोग है तो इस औषधि को इतने तोले खरीद लायें, इस ढंग से उसका शोधन करें, इतने समय तक उसे भट्टी पर छोड़ दें, इन-इन वस्तुओं को उसमें मिला दें। इस विस्तृत प्रक्रिया को पढ़कर कोई भी मनुष्य उस औषधि का निर्माण आसानी से कर सकता है।

केवल औषधि बतला देना और उसे विस्तृत रूप से समझाना दोनों में अन्तर है। सच्चे साधकों के लिए व्यावहारिक पहलू ही सबसे मुख्य है। अब हम आपको दो एक बातें इस सम्बन्ध में बतलायेंगे। जब आप साधना करना प्रारम्भ कर देते हैं तब आपके सामने कई कठिनाइयाँ आ खड़ी होती हैं। साधकों को बाहरी शक्तियों की अपेक्षा आँतरिक शक्तियों का ही अधिक सामना करना पड़ता है। रोगों के मामले में हम देखते हैं कि कुछ बाह्य परिस्थितियां कई बीमारियां उत्पन्न करती हैं। उन परिस्थितियों को दूर करने से ही बीमारी दूर हो जाती है। परन्तु यहां तो अधिकांश शक्तियां जिनका आपको विरोध करना है मानसिक ही हैं। अतः आपको अपने मन के एक भाग को इस तरह प्रशिक्षित करना होगा कि आपके आध्यात्मिक साधना, जप आदि में संलग्न रहते समय भी वह सावधानी पूर्वक निरन्तर पहरा देता रहे। ज्यों ही कोई बुरा विचार या कोई बुरी शक्ति आपके मानसिक क्षेत्र में प्रवेश करना चाहे त्यों ही आपका यह संरक्षक उसे तुरन्त ही मार डाले। इसके लिये अनवरत साधना तथा अभ्यास की आवश्यकता है। मन इतना बुरा है कि जब-जब आप उसे किसी विशेष दिशा में ले जाना चाहेंगे तब-तब उसके बुरे संस्कार आपको बाधा पहुँचायेंगे। अतः हमें बडी उग्रतापूर्वक उसका दमन करना चाहिये। हमें अपने मानसिक संरक्षक को तैयार रखना चाहिये, जिससे कि कोई विरोधी शक्ति प्रवेश न कर पावे। मानसिक संरक्षक के रहने पर साधना में बड़ी सुविधा होती है। यह गम्भीर जल से होकर गुजरने के समान है। साधक का जहाज शत्रुओं के समुद्र से होकर गुजरता है, जिसके तल में विरोधी शक्तियां काम कर रही हैं। विश्व युद्ध के समय में समुद्र तल पर चलने वाले जहाजों को शत्रु पक्षी जल के अन्दर चुम्बकीय पदार्थों के सहारे डुबा देते थे। परन्तु चुम्बकीय आकर्षण से बचने के लिये जहाज को चुम्बक विसंवाहक बना दिया जाता था, जिससे कि वे चुम्बक की ओर आकृष्ट न हों। ठीक उसी प्रकार साधकों को भी अपने मन को विषय पदार्थों के आकर्षणों से विसंवाहक बना डालना होगा, मुमुक्षुत्व तथा ईश्वर में श्रद्धा ये दोनों विसंवाहक का काम करेंगे। जब आपकी दृष्टि ऊँची नहीं है, जब आप विषय सुखों के स्तर पर ही हैं तभी आप विषय-पदार्थों की ओर आकृष्ट हो जाते हैं और ये विषय-पदार्थ आपकी प्रगति को नष्ट कर डालते हैं।

अतः मन को इनकी ओर से विसंवाहक बना लेने के पश्चात् आपको दूसरी बात पर ध्यान रखना है। हमें उस आदर्श को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लेना चाहिये। साधक को बहुत सी वस्तुओं की ओर दिलचस्पी हो सकती है जैसे कि पारिवारिक परिस्थितियां, समाज, वातावरण आदि। परन्तु जिस प्रकार सैनिकगण पहले से ही अपनी तोपों को मुख्य लक्ष्य की ओर लगाकर तब उसे आगे से चलाते हैं, उसी प्रकार उसे भी अपने आदर्श की और लक्ष्य रखना होगा हर स्थिति में साधक को मोक्ष ही को अपना लक्ष्य बनाये रखना होगा। यह विचार इतना गहरा जम जाना चाहिये कि अनेकानेक बाधायें भी उसे लक्ष्य से डिगा न सके। राग-द्वेष के तरंगायमान जगत में काम करते हुए भी इस बात पर ध्यान रखिये कि आपके अन्दर एक शक्ति बराबर काम करती रहे जिससे कि आपकी आन्तरिक अवस्था दिव्य, समत्वपूर्ण तथा आध्यात्मिक बनी रहे। कर्म होते रहेंगे, शक्तियां आप पर आघात-प्रतिघात करेंगी परन्तु आपको ऐसी कला जाननी होगी जिससें कि आप पर उनका कोई प्रभाव न हो। जब मनुष्य बाह्य शक्तियों की ओर प्रतिक्रिया करता है तभी वह विफल होता है जिसके परिणाम स्वरूप कष्ट उठाने पड़ते हैं। आपके अन्दर मशीनगन की तीव्रता है। पल भर में ही अनेकानेक गोले छूट पड़ते हैं तथा बैरेल अधिकाधिक परितप्त हो जाता है। राग-द्वेष, क्रोध तथा लोभ के सम्पर्क में आने पर हमें यह देखना है कि संघर्ष हमें संतप्त न कर डाले। हमें भगवान के शीतल नाम तथा भगवत् चिंतन को सदा अपने साथ बनाये रखना है। यह हमारी प्रकृति को सदा शीतल बनाये रखेगा। इससे आध्यात्मिक संतुलन सदा बना रहेगा। युद्धकाल में शत्रु पक्ष के सैनिकों को वन्दी बना लिया जाता है और उन्हें अपने पक्ष में लगाया जाता है। ठीक इसी प्रकार अपनी बुरी आदतों को स्थानान्तरण के तरीके से अपने हित के लिये लगाया जा सकता है। हममें दोष दृष्टि का स्वभाव है। हम सर्वत्र दोष ही ढूंढ निकालने का प्रयास करते हैं। यह साधकों का बड़ा भारी दोष है। इससे आध्यात्मिक उन्नति रुक जाती है, किन्तु यह आदत छूटती नहीं। यदि इस आदत को साधक अपने प्रति लागू करे तो वह इससे अपना बड़ा हित कर सकता है। उसे दूसरे के दोष देखने का मौका ही नहीं मिलेगा। तव वह दूसरों के स्वल्प सद्गुण का भी प्रशंसक वन जायगा।

आध्यात्मिक साधना के कुछ पहलू

जब घर में आग लगी हो तब आप कितने साहस के साथ घर में घुस कर सोये हुए बच्चे को उठा लाते हैं। ठीक उसी प्रकार आध्यात्मिक मार्ग में भी आपको बहुत ही साहसी होना चाहिये। आपको पूर्णतः निर्भय होना चाहिये। आपको शरीर से जरा भी आसक्ति नहीं होनी चाहिये। तभी आप शीघ्र आत्म साक्षात्कार कर सकते हैं। कायर लोग आध्यात्मिक मार्ग के लिये सर्वथा अयोग्य हैं।

यदि किसी बड़े वृक्ष के ऊपर आम लगे हों तो आप एक ही छलांग लगाकर उसे नहीं तोड़ पाते। यह असंभव है। आप कई शाखाओं को पकड़ते हुए वृक्ष पर धीरे धीरे चढ़ते हैं। ठीक उसी प्रकार आप एक ही छलांग में आध्यात्मिक निश्रयिणी के ऊपर नहीं चढ सकते। आपको सावधानी पूर्वक हर सीढी पर कदम रखना होगा। आपको यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करना होगा। तभी आप योग की सबसे ऊंची सीढ़ी-समाधि को प्राप्त कर सकते हैं। यदि आप वेदान्त के साधक हैं तो आप पहले साधन चतुष्टय से सम्पन्न हो लीजिये, तब आपको श्रवण, मनन तथा निदिध्यामन करना होगा। तभी आप ब्रह्म साक्षात्कार कर सकेंगे। यदि आप भक्तियोग के साधक हैं तो आपको नवधा भक्ति श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन का अभ्यास करना होगा। तभी आप पराभक्ति की अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं।

घरेलू मुर्गी, बतख आदि जब गन्दी चीजें खाने लगते हैं तब उनका मालिक क्या करता है? वह उनके सिर पर हलकी सी थपकी लगाता है तथा उनके सामने चुगने के लिये अनाज के दाने रखता है। धीरे-धीरे उनकी आदत गन्दे पदार्थों को खाने की छूट जाती है। ठीक उसी प्रकार यह मन यत्र तत्र गन्दे पदार्थों को खाने के लिये तथा पाँच प्रकार के विषयों के उपभोग के लिये दौड़ता है। उसके सिर पर थोडी थपकी लगाइए तथा उसमें धीरे धीरे जप तथा ध्यान के अभ्यास से आध्यात्मिक सुख के आस्वादन की आदत डालिये।

जीवन्मुक्त अथवा भागवत को आंखे चमकीली होती हैं। उनके सिर के ऊपर तथा त्रिकुटी में उभार रहता है। वे जो कुछ भी कहते हैं उनकी छाप आपके मन के ऊपर अमिट रहती है। आप उसे आजीवन नहीं भूल सकते। उनमें असीम आकर्षण शक्ति होती है। वे आपकी सारी शंकाओं को जादू की तरह भगा देते हैं। उनके सामीप्य में आप विशिष्ट आनन्द तथा शान्ति का अनुभव करेंगे, सारी शंकायें दूर हो जायेंगी। वे बहुत ही कारुणिक होते है। वे स्वार्थ, क्रोध, लोभ, अहंकार, काम तथा अभिमान से मुक्त होते हैं। वे सत्य, शान्ति, ज्ञान तथा सुख की प्रतिमूर्ति होते हैं।

कोयले को जलाने में बहुत समय लगता है, परन्तु बारूद एक क्षण में ही भभक उठती है। उसी प्रकार जिस मनुष्य का हृदय मलिन है उसमें ज्ञानाग्नि जलाने में अधिक समय लगता है, परन्तु जिसका हृदय शुद्ध है वह पल भर में ही, उंगलियों से फूल को मसलने में जितना समय लगता है उतने ही काल में आत्म ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

'माया' एक विशाल आरे के समान है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, द्वेष, घृणा, अभिमान इत्यादि उसके तीखे दांत हैं सांसारिक बुद्धि वाले सारे व्यक्ति इस आरे के दांत में पिसे जा रहे हैं। जिनमें शुद्धता, नम्रता, प्रेम, भक्ति, वैराग्य तथा विचार हैं उनको कुछ भी हानि नहीं पहुँचती। वे इस आरे के नीचे से आसानी से निकल कर अमृतत्व के धाम को प्राप्त करते हैं।

साधारण उजले कागज के टुकडे का कोई मूल्य नहीं। आप इसे फेंक देते हैं। परन्तु उसी पर जब सम्राट या राष्ट्रपति की मुद्रा या उसका चित्र लगा रहता है तब आप उसे अपनी थैली में संभाल कर रखते हैं। ठीक उसी प्रकार पत्थर के साधारण टुकड़े का कोई मूल्य नहीं है, परन्तु यदि आप पंडरपुर या अन्य किसी मन्दिर में भगवान कृष्ण की प्रस्तर मूर्ति को देखते हैं तो आप सिर झुका कर पूजा करते हैं, क्योंकि उसमें भगवान की मुहर लगी है। भक्त प्रस्तर-मूर्ति में अपने प्रिय प्रभु तथा उसके सारे विशेषणों को देखता है। प्रारम्भिक साधकों के लिये मूर्ति पूजा बहुत ही आवश्यक है।

(2)

कुछ साधक लगातार साधना करते हैं किन्तु धीमे रूप से। कुछ उग्र साधना करते हैं दो घंटा प्रातःकाल तथा दो घंटा संध्या को। यदि

आप शीघ्र आत्म साक्षात्कार करना चाहते हैं तो आपको दीर्घ काल तक सतत उग्र साधना करनी होगी।

आप भगवान कृष्ण का दर्शन कर सकते हैं। आप उनसे कई बार बातें भी कर सकते हैं। आप उनके साथ भोजन तथा क्रीडा भी कर सकते हैं। परन्तु यदि आप मुक्ति चाहते हैं तो आपको आत्म साक्षात्कार करना होगा। नामदेव को भगवान कृष्ण के दर्शन कई बार हुये थे, फिर भी संत गौरा कुम्हार ने उन्हें अधपका ही बतलाया। कैवल्य प्राप्ति के लिये उन्हें विशोबा खेसर के पास जाना पडा था।

ध्यान के लिये आप आसन पर बैठते हैं, परन्तु शीघ्र ही उठ जाना चाहते हैं। पैरों में दर्द के कारण नहीं वरन् अधीरता के कारण। धीरे-धीरे धैर्य का विकास कर इस दुर्गुण को दूर कीजिये। तब आप लगातार तीन या चार घन्टे तक बैठ सकेंगे।

ध्यान में आप किसी न किसी व्यक्ति से मानसिक संभाषण करना शुरु कर देते हैं। इस बुरी आदत को छोड दीजिये। मन के ऊपर निगरानी रखिये।

एक साधक मेरे पास लिखता है—"किसी व्यक्ति ने तीन बजे प्रातः दरवाजा खटखटाया। मैं उठ पडा और दरवाजा खोला। मैंने भगवान कृष्ण को मुकुट सहित देखा। वे शीघ्र ही अदृश्य हो गये। मैं उनकी खोज के लिये गली में गया। मैं उन्हें खोज न सका। तब मैं घर वापस लौट आया और भगवान के पुनर्दर्शन के लिये दरवाजे पर सूर्योदय के समय तक बैठा रहा।"

निद्राभ्रमण की घटनायें भी असाधारण नहीं हैं। चलते फिरते भी लोग स्वप्न में रहते हैं। उपर्युक्त घटना निद्रा-भ्रमण की घटना हो सकती है। आपको आध्यात्मिक अनुभव की सत्यता जानने के लिये बहुत ही सावधान रहना होगा। भगवान कृष्ण का दर्शन इतना सरल नहीं है। साधक प्रारम्भ में गलती कर बैठते हैं।

जिस प्रकार पीडा देने वाले कंकड को जूते से निकाल कर फेंकते हैं उसी प्रकार आपको अपने मन से कष्टदायक विचार को शीघ्र ही निकाल

फेंकना चाहिये । तभी समझिये आपने विचार संयम में पर्याप्त बल प्राप्त किया है तथा आध्यात्मिक पथ में कुछ वास्तविक प्रगति की है ।

एक साधक लिखता है – "मै तीन घन्टे तक एक ही आसन में रह कर ध्यान कर सकता हूं । अन्त में मैं बेहोश हो जाता हूं परन्तु जमीन पर गिरता नहीं ।" यदि वह वास्तविक ध्यान है तो आप कभी भी संज्ञा-हीन नहीं होंगे । आप में पूर्ण चेतना बनी रहेगी । यह तो अवांछनीय मानसिक अवस्था है । पूर्ण सावधानी रखते हुए आपको इस अवस्था पर विजय पानी होगी ।

कल्पना कीजिये कि मन एक घंटे में चालीस बार बाहर दौड़ता है । यदि आप उसे अड़तीस बार ही दौडने दें तो निश्चय ही आप प्रगति पर हैं । आपने मन पर अवश्य ही कुछ विजय पा ली है मन के विक्षेप को पूर्णतः रोकने के लिये चिर काल तक उग्र साधना की आवश्यकता है । विक्षेप शक्ति बडी बलवती है, परन्तु सत्व विक्षेप-शक्ति से भी अधिक बलशाली है । सत्व की वृद्धि कीजिये । आप बड़ी सुगमता पूर्वक मन के विक्षेप का नियंत्रित कर सकेंगे ।

गम्भीर धारणा के समय आप महान सुख तथा आध्यात्मिक उन्माद का अनुभव करेंगे । आप शरीर तथा वातावरण को भूल जायेंगे । सारे प्राण आपके सिर में चले जायेंगे ।

कमरे के भीतर यदि धारणा का अभ्यास करने में कठिनाई हो तो बाहर खुले स्थान में आ जाइये । किसी नदी के तट पर अथवा वाटिका के एक शान्त कोने में बैठिये । आप अच्छी धारणा कर सकेंगे ।

बिछावन पर लेटे हुए कभी आप एक बडी ज्योति को अपने ललाट से गुजरते हुए देखेंगे । ज्यों ही आप ध्यान के आसन पर बैठ कर उसे पुनः देखना चाहेंगे त्यों ही वह विलुप्त हो जायगी । आप पूछ सकते हैं "अनायास ही वह ज्योति आती है, परन्तु जब मैं प्रयास करता हूं तब यह नहीं आती । ऐसा क्यों ?" कारण यह है कि रजस् के आते ही आपकी धारणा टूट गई ।

अपने केन्द्र को ढूंढ निकालिये । केन्द्र में ही सदा निवास कीजिये । वह केन्द्र आत्मा है । यह केन्द्र ही इडेन की वाटिका है । यही आपका

मूल धाम है । आप अब शोक, चिन्ता तथा भय से मुक्त रह सकते हैं
कितना मधुर है यह धाम वहां नित्य ज्योति तथा शाश्वत आनन्द है।

हे मित्र ! जागिये ! अधिक न सोइये ! ध्यान कीजिये। ब्रह्ममु
की बेला है। प्रेम की कुँजी से हृदय-मन्दिर के द्वार खोलिये। आ
संगीत श्रवण कीजिये। अपने प्रियतम को प्रेम संगीत सुनाइये। अस
की तान छेड़िये। उनके ध्यान में अपने मन को विलीन कर डालिये
उनके साथ एक बन जाइयें। प्रेम तथा आनन्द के सागर में निमग्न
जाइये।

(3)

ध्यान के समय ज्यों ही आप यह विचार करेंगे—'मैं अब शुद्ध
मैं पहले जैसे बुरे विचारों को नही पाता," त्यों ही आप पायेंगे कि बु
विचारों का एक दल आपके सचेतन मन में आ धमका। परन्तु वे शी
दूर हो जायेंगे। आप अभी संग्राम की अवस्था में हैं। ऐसा समय आयेग
जब आप एक भी बुरा विचार नहीं आने देंगे। ध्यान बुरे विचारों क
प्रबल शत्रु है। बुरे विचार सोचते है—"हम शीघ्र ही कुचल दिये जायेंगे
हमारा यजमान अब ध्यान करने बैठ गया है। एक बार पुनः ह
आक्रमण करें।" उग्रतापूर्वक ध्यान को जारी रखिये। सूर्य के साम
बादल और कोहरा नहीं ठहर सकते।

प्रारम्भ में भगवान विष्णु के पूरे चित्र पर मन को एकाग्र करन
कठिन रहेगा, क्योंकि मन की सारी किरणें एकाग्र नहीं हुई हैं। कभी
चेहरा कभी पैर तो कभी नेत्र को आप मानसिक पटल पर ला सकेंगे।
चित्र के किसी भी भाग पर जहाँ मन को पसन्द हो इसे एकाग्र कीजिये।

मन को कुछ नये शब्दों अथवा शहरों एवं व्यक्तियों के नाम की
ओर आकर्षण रहता है। कल्पना कीजिये आपने इन नामों को सुना है—
फैजाबाद, जान हर्बर्ट। ध्यान में बैठते समय मन इन नामों को दुहरायेगा
'फैजाबाद' 'जान हर्बर्ट' कभी-कभी वह कुछ गाना गायेगा, संस्कृत के
पुराने श्लोकों को दुहरायेगा, सावधानीपूर्वक मन का निरीक्षण कीजिये
और उसे पुनः केन्द्र पर लाइये।

उग्र ध्यान के लिये शरद ऋतु वहुत ही अनुकूल है। लगातार घण्टों
तक ध्यान करने पर भी आप नहीं थकेंगे। परन्तु प्रात. आपको सुस्ती

घर दबाती है। एक या दो कम्बलों से ढक लेने पर आप बड़ा आराम अनुभव करते हैं। आप प्रातः उठना नहीं चाहते। घड़ी की घंटी वारम्बार बजती है। आप सोचते हैं "पन्द्रह मिनट तक और सो लूं" फिर ध्यान प्रारम्भ करूंगा।" तब आप अपने पांव के खुले भाग को अच्छी तरह कम्वल से ढक लेते हैं। अब बड़ा मजा आता है। आखिर परिणाम क्या हुआ ? आप गहरी नींद में जाकर सूर्योदय होने पर ही उठते हैं। दिन, सप्ताह तथा महीने इसी तरह बीतते जाते हैं। हर शरद् ऋतु इसी तरह चली जाती है। मन आपको धोखा देता है। शरद् का सुअवसर हाथ से निकल जाता है। मन बड़ा भारी जादूगर है। यह कई चालें तथा जादू जानता है। माया मन से ही 'कार्य करती है। मन रहस्यमय है। माया रहस्यमय है। सावधान बनिये। सतर्क रहिये। आप मन तथा माया को वशीभूत कर सकते हैं। ज्योंही घड़ी का एलार्म बजे, कंबल अलग डाल दीजिये। वज्रासन पर बैठकर कुछ प्राणायाम कीजिये। तन्द्रा दूर हो जायेगी।

खुली आंखों से ध्यान करते समय आप अपने मित्र को देखते तथा उसकी वाणी को भी सुनते हैं। परन्तु जब मन आंख या कान से अलग रहेगा तब आप न तो अपने मित्र को पहचानेंगे और न उसकी वाणी ही सुनेंगे। यदि मन को विषय पदार्थों से पूर्णतः मोड़ लिया गया है, यदि राग-द्वेष विनष्ट कर दिये गये हैं तो फिर आप संसार को कैसे देख सकेंगे ? आप मन रहित हो जायेंगे। आप सर्वत्र आत्मा को ही देखेंगे। सारे नाम रूप विलुप्त हो जायेंगे।

मन को एकाएक एक ही बिन्दु पर एकाग्र करना बड़ा ही कठिन है। मन बड़े वेग से चलता है। जिस प्रकार सरकस का घोड़ा एक वृत में बारम्बार दौड़ता रहता है, उसी प्रकार मन भी वृत्त में बारम्बार दौड़ता रहता है। मन को एक बड़े वृत्त में न छोड़कर उसे अधिकाधिक छोटे वृत्त में सीमित बनाइये। अन्ततः इसे एक ही बिन्दु पर लगाया जा सकता है। आपको बुद्धिमानी पूर्वक मन को पकड़ना होगा। केवल वल तथा युद्ध काम नहीं करेगा। इससे तो मामला और भी बिगड़ जायगा।

कभी-कभी आप निराश होकर ऐसा अनुभव करेंगे, 'मुझ में बहुत से दोष हैं। मैं कैसे उनको दूर कर सकूंगा ? क्या मैं इसी जन्म में

निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर लूँगा ? गत आठ वर्षों से ध्यान का अ
करने पर भी मुझे अधिक लाभ की प्राप्ति नहीं हुई है।' हिम्
हारिये। यदि आपने एक या दो इन्द्रिय को भी वश में कर लि
यदि आपने कुछ विचारों को वशीभूत कर लिया है तो आधा
आपने जीत लिया। एक विचार के दमन अथवा एक वासना के f
से भी आप मानसिक बल प्राप्त करेंगे। हर विचार के दमन
कामना के विनाश से, हर इन्द्रिय के नियन्त्रण से, हर दोष के उ
से आपके मन को अधिक बल प्राप्त होगा और आप लक्ष्य की ओ
कदम आगे बढ़ जायेंगे। मित्र ! फिर निराशा तथा पश्चाताप के
स्थान ही कहाँ ? आध्यात्मिक संग्राम में वीरतापूर्वक युद्ध कीजि
आध्यात्मिक सैनिक बनिये। विजयी बन कर दिव्य ज्ञान, नित्य श
तथा परम सुख के पारितोषिक को प्राप्त कीजिये।

(4)

कभी-कभी मन आलसी रहेगा। आप धारणा नहीं कर सकेंगे।
काम करने से इनकार करेगा। ध्यान के शुरू में मन सतर्क रहेगा
में वही सुस्त हो सकता है। जिस तरह घोड़ा यात्रा के प्रारम्भ में उ
से दौड़ता है, परन्तु अन्त में सुस्त पड़ जाता है। उस समय जिस त
सवार घोड़े को थोड़ा घास तथा पानी देकर पुनः स्फूर्तिमान बनात
उसी तरह आपको कुछ प्रेरणात्मक विचार तथा सावधानी पू
अनुशासन के द्वारा मन में ताजगी लानी होगी।

यदि मन अशान्त तथा विक्षिप्त है तो एकान्त कमरे में बैठ जा
या पन्द्रह मिनिट के लिये शवासन में शिथिल पड़ जाइये। कुछ सु
विचारों को प्रश्रय दीजिये। किसी सुन्दर फूल, हिमालय की f
नदियों, सुविस्तृत नीलाकाश, अपार महासागर अथवा हिमालय, काश्म
वा अन्य किसी स्थान के रमणीक दृश्यों का स्मरण कीजिये। अब पु
आप ध्यान में बैठ सकते हैं।

कभी-कभी मन उपद्रव कर बैठेगा। आप अनुभव करेंगे, 'मैं
तपस्या, अनुशासन तथा ध्यान के द्वारा अधिक लाभ प्राप्त नहीं कि
है। अब मैं ब्रह्मचर्य व्रत का खण्डन करूंगा। मैं सारे आहार संय

को त्याग दूंगा। अब मैं सारे विषय सुखों का उपभोग करूंगा। अब खूब छक कर भोजन करूंगा।' झुकिये नहीं। मन को फटकारिये। उग्र जप तथा कीर्तन कीजिये। भर्तृहरि के वैराग्य शतक को बारम्बार पढ़िये। ससार के दुःखों को याद कीजिये। विषय जीवन के दुःखों पर विचार कीजिये। साधुओं तथा उनके उपदेशों को बारम्बार याद कीजिये। अविचल रहिये। सावधान रहिये। सतर्क रहिये। निरीक्षण कीजिये और प्रार्थना कीजिये। उपद्रवी मन धीरे-धीरे ठंडा पड़ जायेगा।

कभी-कभी मन उदासीन रहेगा। मन पूर्णतः खाली रहेगा। यदि ऐसी हालत रही तो कुछ हो देर में आप सो जायेंगे। इसे लयावस्था कहते हैं। यह ध्यान में बाधा है। दस बीस प्राणायाम उग्र रूप से कीजिये तब दस बार जोरों से ॐ का जप कीजिये। यह अवस्था शीघ्र ही दूर हो जायगी।

शुद्ध ब्रह्मचारी भी शुरू में कुतूहल के कारण कठिनाई का सामना करेगा। वह लौकिक सुख को जानने का कुतूहल रखेगा। वह कभी-कभी सोचता है कि—कम से कम एक बार तो मुझे मैथुन सुख मिलना चाहिये। तब मैं इस काम-वृत्ति को पूर्णतः दूर कर दूंगा। यह कुतूहल मुझे बहुत परेशान कर रहा है। मन ब्रह्मचारी को धोखे में डालना चाहता है। माया कुतूहल के द्वारा ही भयानक कार्य करवा डालती है। कुतूहल प्रबल कामना में परिणित हो जाता है। विषय सुख कामना को तृप्त नहीं कर सकता। मानव रुधिर का एक बार आस्वादन कर लेने पर व्याघ्र मनुष्य के पीछे पड़ता है। उसी प्रकार एक बार मैथुन सुख प्राप्त करने पर मन सदा उसके लिये लालायित रहेगा। विचार के द्वारा कुतूहल की तरग को मार डालिये। अलिंग आत्मा का चिंतन कीजिये। ब्रह्मचर्य की महिमा, अशुद्ध जीवन के दोष तथा सतत् आत्म चिंतन के द्वारा कामुक वृत्तियों को नष्ट कर डालिये।

अन्धे ब्रह्मचारी में भी, जिसने स्त्री के सुख को कभी देखा तक नहीं, काम वृत्ति बड़ी प्रबल होती है। ऐसा क्यों? यह पूर्व जन्म के संस्कारों का फल है। आप जो कुछ भी करते अथवा विचारत हैं, वह आपके चित्त में गहरा जम जाता है। आत्म ज्ञान से ही इन संस्कारों

को परिदग्ध किया जा सकता है। काम वासना से शरीर एवं मन परिपूरित हो जाते हैं, संस्कार बड़ी वृत्तियों का रूप लेते हैं और वह बेचारा अन्धा व्यक्ति पीड़ित होता है इससे यह स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि पुनर्जन्म सत्य है।

विचार ही सच्चा कार्य है परन्तु किसी मनुष्य को वास्तव में गोली से मार देना तथा उसे गोली मारने का विचार करना—दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। लौकिक सुखोपयोग करना तथा इसका विचार करना इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है।

दार्शनिक रूप से मनुष्य को गोली मारने का विचार करना तथा मैथुन सुख भोगने का विचार करना दोनों ही वास्तविक कार्य हैं। कामना कर्म से भी अधिक है। ईश्वर मनुष्य की प्रवृत्ति के अनुसार ही फल देता है। अपने विचारों से शुद्ध बनिये तभी आप ईश्वर के साम्राज्य में प्रवेश कर सकेंगे, तभी ईश्वर आपके हृदय सिंहासन पर आसीन होगा।

हिमालय की गुहा में मौन रूप से ध्यान करने वाला योगी ऐसा विचारता है कि 'मैंने आध्यात्मिकता में बड़ी प्रगति प्राप्त कर ली है।' वह उन लोगों के प्रति घृणा का भाव रखता है जो ध्यान के साथ-साथ अथक निष्काम्य सेवा के द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रयास कर रहे हैं। वह योगी वैराग्य तथा तितिक्षा से सम्पन्न हो सकता है। आध्यात्मिक शास्त्रों के अध्ययन में वह काफी कुशल हो सकता है। वह कठिन सर्दी सह सकता है। वह रोटी-दाल पर ही रह सकता है। वह एक आसन पर बैठ सकता है। परन्तु उसमें करुणा, विश्व-प्रेम, सहिष्णुता, उदारता, साहस इत्यादि गुणों की कमी हो सकती है। मैदानी भाग में आने पर वह गर्मी नहीं सह सकेगा। परन्तु कर्मयोगी सद्गुणों से सम्पन्न तथा समत्व बुद्धि का हो सकता है। ऐसी हालत में वह हिमालय के ध्यान योगी से कहीं बढ़ कर है। साधक में सभी सद् गुणों का विकास होना चाहिये। वह गर्मी-सर्दी सहने में भी समर्थ बने। तभी वह पूर्ण ज्ञानी बन सकता है। 'समत्वं योग उच्यते।'

सांसारिक मनुष्य को धन तथा पद का अभिमान होता है। उसे अपने बच्चे तथा स्त्री के लिये बड़ा मोह हो सकता है। परन्तु सन्यासी या योगी को महान् आध्यात्मिक एवं नैतिक अभिमान होता है। वह ऐसा समझता है 'मैं गृहस्थी से बढ़कर हूं। मैं तो महान् योगी हूं। मैं बारह घंटे तक ध्यान कर सकता हूं। मुझ में बहुत शुद्धता, त्याग तथा वैराग्य है। इस प्रकार का सन्यास-अभिमान गृहस्थियों के अभिमान से कहीं अधिक खतरनाक है। इसको दूर करना बड़ा ही कठिन है।

'मैं कौन हूँ" का विचार सुगम साधना नहीं है। वही मनुष्य इसका अभ्यास कर सकता है जिसके पास सबल, शुद्ध तथा सूक्ष्म बुद्धि है, जो साधन चतुष्टय से सम्पन्न है, जिसे वैदान्तिक प्रक्रिया पंचीकरण, नेति-नेति सिद्धान्त, अन्वय-व्यतिरेक, भागत्यागलक्षणा, अध्यारोप-अपवाद पंचकोश विवेक तथा आत्मतत्व का समुचित ज्ञान है। अधिकारी साधक ही "मैं कौन हूँ' प्रश्न का उत्तर ध्यान में प्राप्त कर सकता है, अन्यथा मन साधक को भ्रमित करता रहेगा।

(5)

प्रत्येक हृदय में दिव्य ज्योति जल रही है। इन्द्रियों को समेट कर तथा मन को शांत बनाकर आप अन्तर्चक्षु द्वारा दिव्य ज्योति को देख सकते हैं।

नव द्वारों से सम्पन्न पिंजड़े में जीव नाम का एक छोटा पक्षी वास करता है। अहंता, ममता तथा वासनाओं को विनष्ट कर वह इस मांस पिंजर से मुक्त हो सकता है।

पत्थर पिघल सकता है, परन्तु अभिमानी व्यक्ति का हृदय नहीं पिघल सकता। वह हीरा या वज्र से भी अधिक कठोर है। अथक मानव-सेवा, सत्संग, जप तथा ध्यान के द्वारा उसे कोमल बनाया जा सकता है।

भगवान का नाम कितना मधुर है। हरि, राम, कृष्ण, शिव के नाम कितने शीतल तथा प्रेरणात्मक हैं। नाम आपके भय, शोक, दुख तथा दर्द को दूर भगा देता है तथा आपके हृदय को सुख, शान्ति, बल एवं साहस से भर देता है। संतप्त हृदय तथा दुर्बल स्नायुओं वाले व्यक्ति

के लिये नाम ही परम औषधि है। नाम वह अमृत है जो अमृतत्व एव अमरसुख प्रदान करता है। सदा ईश्वर के नाम का स्मरण कीजिये, उसके नाम का गायन कीजिये, अपनी सांस के साथ उसके नाम को लीजिये, आप जन्म मृत्यु के चक्र से विमुक्त हो जायेंगे।

धारणा का फल है ध्यान। ध्यान का फल है आत्म साक्षात्कार। आत्म साक्षात्कार का फल है मोक्ष। धारणा में आप अपने सारे विचारों को समेटते हैं तथा मन को किसी एक बिन्दु या विचार में एकाग्र बनाते हैं। ध्यान में एक ही विचार का अनवरत प्रवाह बना रहता है।

जो चट्टान के भीतर रहने वाले मेंढक की देखभाल करता है वही आपकी भी देखभाल करेगा। श्रद्धा की कमी क्यों ? हे राम ! भगवान में तथा उसकी कृपा में जीवन्त, अविचल एवं अटूट श्रद्धा रखिये। निश्चिन्त बन जाइये।

जो कहता है वह जानता नहीं। जो जानता है वह कहता नहीं। अधजल गगरी छलकति जाए। जो अधिक बोलता है वह सोचता कम है, काम भी कम ही करता है।

सावधान बनिये। लोगों के स्वभाव का अध्ययन कीजिये। लोगों के साथ रहते समय बहुत सावधान रहिये। धोखे में न पड़िये। मनोविज्ञान का ज्ञान रखिये। लोगों के आचरण, वाणी, मुखाकृति, मुस्कान तथा चाल ढाल से ही उनका अध्ययन कर लीजिये। उनके आहार विहार, उनकी पढ़ने की पुस्तकें तथा उनके संगियों के अध्ययन से आप उनका अध्ययन कर सकेंगे।

अपने स्वप्नों के अध्ययन द्वारा आप अपनी आध्यात्मिक उन्नति का भी माप कर सकते हैं। यदि स्वप्न में बुरे विचार नहीं आते, यदि आप अपने इष्ट देवता का समय समय पर दर्शन प्राप्त करते हैं, यदि स्वप्न में भी आप इष्ट मंत्र का जप करते हैं तो निश्चय ही आपने आध्यात्मिक मार्ग में बड़ी उन्नति कर ली है।

पतंजलि महर्षि के योगसूत्र में तथा किसी भी वेदान्त ग्रंथ में कुंडलिनी का नाम नहीं आता। 'तत्वमसि' 'अहम् ब्रह्मास्मि' महावाक्यों

के लक्ष्यार्थ पर ध्यान कर ज्ञान योगी ब्रम्हाकार वृत्ति के द्वारा निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करता है। वह कुंडलिनी शक्ति के जगाने के लिये कभी भी प्रयास नहीं करता। कुंडलिनी को बिना जगाये ही वह समाधि में प्रवेश कर सकता है। परन्तु यदि वह कुछ भौतिक सिद्धियों को प्राप्त करना चाहे तो कुंडलिनी को जगा सकता है। वह संकल्प शक्ति के द्वारा ही कुंडलिनी को जगा सकता है। इसके लिये उसे प्राणायाम, आसन, बंध, मुद्रा अथवा अन्य कोई भी हठयौगिक क्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आत्मज्ञान प्राप्त कर लेने पर ही आप में पूर्ण अनासक्ति हो सकती है। साधना काल में मन एक न एक वस्तु से आसक्त रहेगा ही। आपको बारम्बार सभी प्रकार की आसक्तियों को असंग शस्त्र से दृढतापूर्वक दूर करना होगा "असंग शस्त्रेण दृढेनछित्त्वा।" (गीता 15 - 3)

आपको यह भाव बनाये रखना चाहिये कि आत्मा, ईश्वर, देवता तथा मंत्र एक ही हैं। भाव के साथ आपको गुरु मंत्र अथवा इष्ट मंत्र का जप करना चाहिये तभी आप मंत्र - सिद्धि या ईश्वर साक्षात्कार शीघ्र प्राप्त कर सकेंगे।

सबसे सुन्दर पुष्प जो आप भगवान को अर्पित कर सकते हैं, वह आपका हृदय ही है। अपने अन्दर कैलाश के असीम धाम में अपार आनन्द तथा शाश्वत शान्ति के साम्राज्य की अधिकाधिक गहराई में प्रवेश कीजिये।

आप अपने इष्ट, पथ प्रदर्शक, परम आश्रय तथा लक्ष्य का साक्षात्कार करें।

(6)

अमर आत्मा हिमालय के हिम जैसा शुद्ध, सूर्य जैसा चमकीला, आकाश जैसा व्यापक, सागर जैसा अथाह, ऋषिकेश की गंगा जैसा शीतल है। वह जगत, शरीर, मन तथा प्राण का अधिष्ठान है। इस आत्मा से अधिक मधुर कोई वस्तु नहीं है।

हृदय को शुद्ध बनाइये तथा ध्यान कीजिये। अपने हृदय में गहरा गोता लगाइये। आप आत्मा को प्राप्त करेंगे। गम्भीर गोता लगाकर

ढूंढने पर ही आप आत्म मुक्ता को प्राप्त कर सकेंगे। यदि किनारे किनारे ही रहेंगे तो टूटी फूटी कौडियां ही हाथ आएंगी।

जिस प्रकार वर्षा बादलों में, मक्खन दूध में, सुगन्धि पुष्प में निहित है उसी प्रकार आत्मा इन सभी नाम रूपों में निहित है। जिसकी बुद्धि सूक्ष्म, एकाग्र तथा तीव्र है वह सतत गम्भीर ध्यान से आत्मा का दर्शन कर सकता है।

जो किसी स्त्री की ओर उसी तरह दृष्टि निक्षेप करता है जिस तरह पुत्र अपनी मां की ओर और साथ ही उससे अलग रहता है, जिसने काम तथा क्रोध को वशीभूत कर लिया है, जिसकी संसार की नश्वर वस्तुओं की ओर कोई आकर्षण नहीं तथा जो ध्यान का नियमित अभ्यास कर रहा है वह शीघ्र ही उस परम धाम को प्राप्त करेगा जहां से पुनः इस मर्त्यलोक को नहीं लौटता।

चीनी तथा चीनी के खिलौने, बर्तन तथा मिट्टी, लोहे की कांटी तथा तलवार, जल तथा फेन, आभूषण तथा सोना–ये दो वस्तुएं नहीं हैं। वे एक ही हैं। इसी भांति सच्चे ज्ञान के उदय होने पर विभिन्नतामय जगत केवल आत्मा ही रह जाता है, जीवात्मा परमात्मा एक बन जाते हैं।

आत्मा सारे संसार में व्याप्त है। सभी आत्मा है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो आप में न हो। आत्म साक्षात्कार प्राप्त कर लेने पर आप किसकी कामना करेंगे, क्योंकि आपके लिये कोई काम्य वस्तु नहीं रह जायेगी।

पुराने अशुभ संस्कार बदले तथा विनष्ट किये जा सकते हैं। मन तो संस्कारों का गट्ठर ही है। उसके साथ साहस पूर्वक युद्ध कीजिये। वीरता पूर्वक संग्राम कीजिये, रोटी के लिये नहीं, रुपये के लिये नहीं, नाम तथा यश के लिये नहीं, परन्तु आत्म साम्राज्य के लिये ही नित्य शान्ति के असीम धाम के लिये। सांसारिक संस्कारों का विनाश कीजिये। वही महान योद्धा है जो आन्तरिक संग्राम क्षेत्र में अपने पुराने संस्कारों के साथ वैराग्य की तलवार तथा विवेक के कवच को धारण कर युद्ध करता है। वह वास्तविक योद्धा नहीं जो मशीन गनों से शत्रुओं

को परास्त करता है। आध्यात्मिक सैनिक के लिये सत्व बल का आधार है परन्तु सांसारिक सैनिक के लिये रज तथा तम का। राम रावण के युद्ध में राम सात्विक थे और रावण तामसिक। एवरेस्ट पर्वत के शिखर पर चढ़ जाना सुगम है, नन्दा पर्वत की ऊँचाइयों पर विजय प्राप्त कर लेना आसान है, परन्तु हिमालय रूपी आत्मा की चोटी पर चढ़ना बड़ा कठिन है। अडिग साधक धैर्य, संलग्नता, शम तथा साहस के साथ धीरे-धीरे एक-एक चोटी कर के ऊपर चढ़ता है, एक-एक इन्द्रियों का दमन करता है, एक एक कर वृत्तियों का निरोध करता है, एक-एक कर वासनाओं का उन्मूलन करता है तथा अन्ततः आत्म साक्षात्कार की चोटी को प्राप्त कर लेता है।

नये साधकों को रसोईघर के निकट वाले कमरे में ध्यान के लिये नहीं बैठना चाहिये, क्योंकि मन सुस्वादु पकवानों का चिन्तन करने लगेगा।

यदि आप अपने सामने गर्म चाय तथा कुछ मिठाई रख कर उपनिषद का स्वाध्याय अथवा ध्यान करेंगे तो आपको गम्भीर ध्यान नहीं लग सकेगा। मन का एक भाग मिठाई तथा चाय के विषय में विचार करता रहेगा। नये साधकों को विक्षेप के इन अल्पकारणों को दूर कर लेना चाहिये, तब उन्हें ध्यान में बैठना चाहिये।

सबों के साथ समान रूप से बरताव कीजिये। गरीबों तथा रोगियों की सेवा कीजिये। सारे प्रकार की आसक्तियों को काट डालिये। पीडितों की सहायता कीजिये। आवेगों को कुचल डालिये। वासनाओं तथा अभिमान का उन्मूलन कीजिये: विषय सुखों का परित्याग कीजिये। ध्यान कीजिये तथा आत्मा की एकता का साक्षात्कार कीजिये। दूसरों को भी उनके ज्ञानार्जन में सहायता कीजिये।

जीवन्मुक्त अथवा ज्ञानी ईश्वरीय चेतना से प्रदीप्त, अमृत पान से उन्मत्त, असीम आत्मा में परिपूर्ण, समदृष्टि से युक्त तथा समत्व बुद्धि से सम्पन्न होकर सर्वत्र आत्मा के ही दर्शन करता है तथा अपने शुद्ध प्रेम में सबों को सन्निहित करता है।

साधना में संलग्नता

जीवन शक्ति की अभिव्यक्ति हैं। सारे जीवन सक्रिय हैं। आधे क्षण के लिये भी कोई वस्तु स्थिर नहीं रहती। विश्वात्म-शक्ति सदा अथक एवं अविरल रूप से काम करती रहती है। वही शक्ति एक परमाणु से लेकर विशाल सूर्य तक सबों में कार्य करती है। अनवरत प्रगति एवं विकास ही प्रकृति का नियम है।

हे साधक ! आप भी इस विश्वात्म-शक्ति के केन्द्र हैं। आपके कार्य तथा प्रगति आपके जीवन के नियम हैं। आपको सदा आध्यात्मिक मार्ग में बढ़ते रहना चाहिये। संकल्प-पत्र तथा दैनिक आध्यात्मिक डायरी को भरकर ही संतुष्ट न हो जाना चाहिये। अच्छा ध्यान गृह, मृगचर्म तथा माला को प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं है। ठीक है आपने अपने जीवन में परिवर्तन लाया है। परन्तु अपने नये जीवन में आपने कहां तक प्रगति की है ?

एक महर्षि ने एक बार कहा था, "एक क्षण के लिये भी स्तब्ध न खड़े होओ, क्योंकि पवित्रता तथा पूर्णता के मार्ग में स्तब्ध खड़ा होना मनुष्य में स्फूर्ति नहीं लाता वरन् उसे पहले से अधिक कमजोर बना डालता है जिससे कि वह पीछे मुड़ जाय" इसे याद रखिये। आध्यात्मिक मार्ग में दो ही बातें सम्भव हैं—उन्नति या अवनति। इसमें ठहरना कहां ? आराम करना तो सड़ना ही है। ज्वलंत मुमुक्षुत्व को लेकर आगे बढ़ते जाइये। उन्नति साधना काल पर निर्भर नहीं करती। यह तो इस पर निर्भर करती है कि आपने कहाँ तक अपने पुराने विचार तथा आचार के तरीकों पर विजय प्राप्त की है। किस हद तक आपने बाह्य परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की है। क्या आपका मन शांत एवं सन्तुलित रहता है ? क्या आप छोटे-छोटे क्रोधोद्दीपक कार्यों से अप्रभावित रहते हैं ? क्या क्षमा के लिये तो अधिक परन्तु प्रतिकार करने की कम ऐसी आपकी प्रवृत्ति है ? क्या आप अधिकाधिक साधना कर रहे हैं, या आप ईश्वरीय कृपा की प्रतीक्षा कर रहे हैं जिससे आप अपने संकल्पों तथा व्रतों का पालन कर सकें ? क्या आप सन्तों तथा अवतारों से आशीर्वाद प्राप्ति की प्रतीक्षा करते हैं। आशीर्वाद

तो सदा मिलते हैं किन्तु जब तक आप वीरतापूर्वक उन्नति के लिये युद्ध न करेंगे तब तक उनका उपयोग उस व्यक्ति के लिये जूते और छड़ी के समान है जो यात्रा में चलना चाहता नहीं।

जंगल पथ के किनारे पार्वतीय भाग में एक साधु रहते थे। वे बड़े ही अध्यवसायी थे। उन्होंने पत्थरों को एकत्रित कर एक सुन्दर कुटी का निर्माण किया। फिर उन्होंने कुटी के चारों ओर का स्थान साफ कर दिया, परन्तु दरवाजे के सामने एक पत्थर रख छोड़ा। उन्हें लोग पत्थर बाबा कहते थे। वे बहुत बड़े विरक्त थे। लोग उनके दर्शनों को जाते तथा आशीर्वाद की याचना करते। बाबा चुप रहते परन्तु लोगों के अधिक जोर देने पर वे उन्हें पत्थर की कुटीर दिखा कर कहते 'देख, यही परिश्रम का फल है।' और पुनः उस पड़े हुए पत्थर की ओर दिखा कर कहते 'आप आशीर्वाद चाहते हैं ? उस पत्थर को देखिये। वह दिन में तीन बार मेरा आशीर्वाद प्राप्त करता है फिर भी वह पत्थर का पत्थर ही है। आशीर्वाद से पत्थर जहां का तहां पड़ा है, परन्तु परिश्रम से यह देखिये सुन्दर कुटीर तैयार हो गई है।'

अतः बाहरी सहायता पर सदा निर्भर न रहिये। आगे बढ़ते जाइये। आवश्यकता पड़ने पर अन्तर से सहायता प्राप्त होगी। आपको बहुत दूरी तय करनी है। समय कम है। बाधायें अधिक हैं। दिन, महिने तथा वर्ष जल्दी-जल्दी गुजरते जा रहे हैं। हर क्षण बहुमूल्य है। अतः लक्ष्य की ओर शीघ्रतापूर्वक बढ़िये।

ईश्वर बहुत कारुणिक है। यदि आप एक कदम उसकी ओर बढ़ें तो वह दस कदम आगे बढ़कर आपकी अगवानी करता है। यह कथन सत्य है। परन्तु पहले आपको ही एक कदम उसकी ओर बढ़ना है। आप शायद ऐसा समझते हैं कि आपकी परिस्थितियां प्रतिकूल हैं। तराई में रहने वाला व्यक्ति कभी भी कोहरा को साफ नहीं कर सकता। उसे थोड़ी ऊँचाई चढ़नी होगी, तभी कोहरा उसकी नजरों से दूर होगा। अतः परिस्थिति तथा कमजोरियों की चिंता न कीजिये। स्थिर साधना के द्वारा आत्मज्ञान की ऊंची पौढ़ियों पर चढ़िये। अन्धकार में बैठकर 'प्रकाश' 'प्रकाश' चिल्लाते रहना तो मूर्खता ही है। उठिये तथा सूर्य के प्रकाश की ओर बढ़िये।

सेवा में अग्रसर बनिये, प्रेम में विश्वास कीजिये, ज्ञान में उन्नति कीजिये। सेवा के लिये सुअवसर का निर्माण कीजिये। प्रतिदिन कुछ न कुछ नई बात सीख लीजिये। ईश्वर के प्रति अधिकाधिक भक्ति का विकास कीजिये। साधना बढ़ाइये। मार्ग में संलग्न रहिये। आपकी उन्नति सतत् होती रहे। अवनति होने का प्रश्न ही न रहेगा। यही सफलता के लिये सुनिश्चित मार्ग है। कभी ठहरिये नहीं। कभी ढिलाई न कीजिये। आगे बढ़ते जाइये। आप शीघ्र ही लक्ष्य को प्राप्त करें।

साधन चतुष्टय

ज्ञान योग के मार्ग में साधन चतुष्टय से सम्पन्न बनना पड़ता है। विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व—ये ही साधन चतुष्टय हैं।

ईश्वर की कृपा से उस व्यक्ति में विवेक का जागरण होता है जिसने पूर्व जन्म में निष्काम्य कर्म तथा बहुत से सुकर्म किये हैं। सत्य एवं असत्य, नित्य एवं अनित्य, आत्मा तथा अनात्मा के बीच भेद की पहचान करना ही विवेक है।

सर्वप्रथम आपको सत्य एवं असत्य के बीच विवेक तथा इहलौकिक एवं पारलौकिक भोगों के प्रति वैराग्य का विकास करना चाहिये तभी आपको शम के अभ्यास में सफलता मिलेगी। विवेक से उत्पन्न वैराग्य ही आपकी आध्यात्मिक साधना में सहायक बन सकता है। कारण वैराग्य जो पत्नी, पुत्र अथवा सम्पत्ति के विनाश से उत्पन्न होता है, स्थायी नहीं रह सकता है। इससे आपको कोई लाभ नहीं। यह तो अमोनियां के समान ही उड़ जाने वाला है।

वासनाओं के सतत् उन्मूलन के द्वारा शम-मन की शान्ति की प्राप्ति होती है। जब कभी आपके मन में कामनायें स्फुटित हों तो उन्हें पूर्ण न होने दीजिये। विवेक, विचार तथा वैराग्य के द्वारा उनका निषेध कीजिये। सतत् अभ्यास से आप मन की शान्ति तथा मनोबल प्राप्त करेंगे। मन क्षीण हो जायगा। इसकी बहिर्मुखी वृत्ति निरुद्ध हो जायगी। यदि कामनाओं का उन्मूलन कर दिया गया तो संकल्प स्वतः विनष्ट हो जायेंगे। विषयों में दोष दर्शन द्वारा मन विविध विषय

पदार्थों से अनासक्त होकर ब्रह्म में स्थिर हो जाता है। शम के अभ्यास में पंच ज्ञानेन्द्रिय कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा को भी नियंत्रित करते हैं।

वाह्य इन्द्रियों-पंच कर्मेन्द्रिय, वाणी, हाथ, पैर जननेन्द्रिय तथा गुदा का नियन्त्रण करना दम कहलाता है। ये इन्द्रियां विषयों से समेट ली जाती हैं तथा उन्हें उनके विशेष केन्द्रो में स्थिर कर दी जाती हैं।

आंखें किसी वस्तु को देखने के लिये बाहर दौड़ती हैं। यदि आप तुरन्त उस वस्तु से आंखो को मोड़ लें तो यह दम है। दम के द्वारा आपको अपनी अन्य इन्द्रियों का भी दमन करना चाहिये।

कुछ लोग कहते हैं कि 'दम का अभ्यास आवश्यक नहीं है। यह शम में ही सन्निहित है। इन्द्रियां स्वतन्त्र काम नहीं कर सकतीं। वे मन के सहयोग से ही काम करती हैं। यदि मन को वश में कर लिया गया तो इन्द्रियां स्वतः ही नियन्त्रित हो जायंगी।'

यदि दम का भी अभ्यास किया गया तो मन सुगमतया वश में आ जायगा। शत्रु को भीतर तथा बाहर दोनों ओर से मारना चाहिये। इस प्रकार वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। यदि अन्तर्वाह्य दोनों ही दरवाजे बन्द कर दिये गये तो वह शीघ्र ही पकड़ में आ जाता है। भागने के लये कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। दम के अभ्यास से आप इन्द्रिय तथा मन किसी को भी विषय के सम्पर्क में नहीं आने देते। आप मन को बाह्य इन्द्रियों से—जैसे आंख से आकर वस्तु को आकार धारण करने नहीं देते। नये साधकों में शम का उग्र अभ्यास करने पर भी मन आत्मस्थित नहीं हो पाता। यह बाह्य वस्तुओं में दौड़ने की कोशिश करता है। दम का अभ्यास करने पर मन को शीघ्र ही वश में किया जा सकता है। यदि किसी उपद्रवी लड़के के हाथ को आप बांध दें तो वह पांव से उत्पात करने की कोशिश करेगा, परन्तु यदि पैरों को भी बांध दें तो वह शांत हो जायेगा। शम के द्वारा हाथों को बांधते हैं और दम के द्वारा पैरों को। अतः दम का अभ्यास आवश्यक है।

ज्ञान योग के साधक के लिये दम का अभ्यास है। प्रत्याहार दम के ही समान है। राजयोगी प्रत्याहार का अभ्यास करता है। शम के बाद दम की बारी आती है। प्राणायाम के वाद प्रत्याहार की बारी आती

है। ज्ञान योग के अभ्यास में मन को शान्त अथवा निरुद्ध कर इन्द्रियों को समेट लेते हैं। राजयोग में प्राण का निरोध कर इन्द्रियों को समेट लेते हैं। प्राण तथा मन दोनों के नियंत्रण से इन्द्रियां शीघ्र ही विषयों से हट जायगी। मन ही इन्द्रियों को गतिशील करता है। प्राण इन्द्रियों को स्फूर्ति प्रदान करता है। शम तथा दम वास्तव में राजयोगी के अभ्यास हैं।

अव हम "उपरति" का वर्णन करेंगे। कुछ लोग सारे कर्मों का त्याग तथा संन्यास-ग्रहण को उपरति कहते हैं। शम तथा दम के बाद उपरति की बारी आती है। उपरति आत्मा का अन्तर्मुख होना है। बाह्य विषयों के द्वारा मन कार्य करना बन्द कर देता है। उपरति प्रत्याहार की सीमा है। इसमें मन विषय-भोगों से मुड़ जाता है।

सुन्दर वस्तु को देखने पर भी उपरति में स्थित साधक का मन जरा भी उद्विग्न नहीं होगा। जरा भी आकर्षण न होगा। वह स्त्री, वृक्ष तथा काष्ठ सब की ओर एक सी ही दृष्टि रखेगा। सुस्वादु भोजन की ओर देखते हुए भी उसको प्रलोभन न होगा। उसे किसी विशेष वस्तु की ओर तृष्णा न रहेगी। वह ऐसा कदापि न कहेगा, 'मैं अमुक पकवान चाहता हूँ।' जो कुछ भी उसके समक्ष रख दिया जाय वह उसी से सन्तुष्ट हो जाता है। विवेक, वैराग्य, शम तथा दम के अभ्यास से उसमें मनोबल की प्राप्ति होती है। मनोबल के कारण ही ऐसा संभव है। उपर्युक्त अभ्यासों से मन अपूर्वशान्ति तथा आध्यात्मिक सुख का अनुभव करता है। वह भ्रामक अल्प सुखों को नहीं चाहता। यदि आपके पास मिश्री है तो आपका मन छोआ की ओर नहीं दौड़ेगा। मन को ऊँचे प्रकार के सुख का स्वाद चखाकर उसे निम्न प्रकार के सुखास्वादन से उपरत कर सकते हैं। यदि आप गाय या बैल को बिनौले की खली दें तो वे घास भूसे की ओर नहीं दौड़ते। मन भी वैल के समान ही है।

ब्रह्मचर्य के अभ्यासी को शम, दम तथा उपरति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये, तभी वे ब्रह्मचर्य पालन में स्थित हो सकते हैं।

सहन करने की शक्ति 'तितिक्षा' है। तितिक्षु व्यक्ति कष्ट, अपमान, गर्मी तथा सर्दी को सहन कर सकता है। वह सारी व्यथाओं से मुक्त होता है। वह इनके कारण अशान्त नहीं होता।

ब्रह्म के अस्तित्व, गुरु तथा शास्त्रों के उपदेश तथा अपनी आत्मा में अविचल विश्वास ही 'श्रद्धा' है। यदि किसी में उपर्युक्त साधना की सम्पन्नता है तो उसे समाधान या मन की एकाग्रता तथा मुमुक्षुत्व-मुक्ति प्राप्ति की ज्वलन्त कामना-की प्राप्ति होगी। मन स्वभावतः सदा अन्तरात्मा की ओर मुड़ेगा। साधक को अब किसी ब्रह्मश्रोत्री ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाना, श्रुतियों का श्रवण तदनन्तर मनन तथा 'तत्वमसि' महावाक्य के लक्ष्यार्थ पर सतत् निदिध्यासन का अभ्यास करना चाहिये। उसे आत्म साक्षात्कार मिलेगा।

यदि आप में विवेक है तो वैराग्य स्वतः आ जायगा। यदि आप में विवेक तथा वैराग्य हैं तो शम स्वतः आ जायगा। यदि आपमें विवेक, वैराग्य तथा शम हैं तो दम स्वतः आ जायगा। यदि आप में शम तथा दम दोनों हैं तो उपरति स्वः प्राप्त होगी। यदि आप में उपर्युक्त सभी गुण मौजूद हैं तो तितिक्षा स्वतः प्राप्त होगी। यदि आप में उपर्युक्त सभी गुण मौजूद हैं तो तितिक्षा, श्रद्धा तथा समाधान (एकाग्रता) स्वतः आ जायेंगे। यदि आप में विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा तथा समाधान हैं तो मुमुक्षुत्व स्वतः प्रगट होगा।

जीवन्मुक्त की भी आंखें स्वभाववश वस्तुओं की ओर जायेंगी, परन्तु यदि वह चाहे तो आंखों को पूर्णतः समेट कर उन्हें खाली नेत्र गोलक के रूप में भी रख सकता है। जब वह किसी स्त्री को देखता है तो वह उसे अपने से अलग नहीं देखता। वह समस्त जगत को अपने भीतर देखता है। वह स्त्री को भी अपनी आत्मा ही जानता है। उसमें लिंग विचार नहीं। उसके मन में बुरे विचार नहीं। उसे स्त्री के प्रति कामुक आकर्षण नहीं जबकि सांसारिक व्यक्ति स्त्री को अपने से अलग देखता है। वह कामुक विचारों को रखता है। उसे आत्मा का ज्ञान नहीं। वह उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। ज्ञानी तथा संसारी जन की दृष्टि में यही अन्तर है। स्त्री की ओर देखने में कोई हानि नहीं, परन्तु आपको बुरे विचार नहीं लाने चाहिये। ऐसा भाव बनाइये कि स्त्री मां काली की अभिव्यक्ति है। भान कीजिये कि स्त्री की सुन्दरता ईश्वर की ही सुन्दरता है। ऐसा भान कीजिये कि सारे रूप ईश्वर की ही मूर्ति हैं। आपका मन उन्नत हो जायगा।

कुछ साधक पूछते हैं "क्या हमें विवेक, वैराग्य आदि का क्रमशः अभ्यास करना चाहिये या सबों का एक साथ ? यदि हम एक-एक कर अभ्यास करें तो इस जीवन में एक या दो अंगों पर भी प्रभुत्व होना शायद ही सम्भव है। सभी अंगों पर पूर्ण अधिकार करने में तो कई जन्म लग जायेंगे। जीवन बहुत अल्प है। हम क्या करें ?" यह साधक की रुचि तथा क्षमता पर निर्भर करता है। कुछ एक-एक कर अंगों को पूर्ण करते हैं। कुछ लोग सभी अंगों का एक बार ही अभ्यास करते हैं। छः महीने तक विवेक, वैराग्य तथा शम के अभ्यास में अपने मन को लगाइये। दूसरे छः महीने में श्रद्धा, समाधान तथा मुमुक्षुत्व के अर्जन में लग जाइये। उस सद्गुण के विकास में अधिक समय लगाइये जिसकी आपमें कमी हो। यदि आप अपने प्रयास में सच्चे हैं तो आप साधन चतुष्टय का विकास कर इसी जन्म में आत्म साक्षात्कार कर सकते हैं।

दूसरा साधक कहता है, 'स्वामी जी ! इस साधन चतुष्टय—विवेक, वैराग्यादि की कोई आवश्यकता नहीं। यह तो लम्बा तथा जटिल मार्ग है। मैं तो कई जन्मों में भी उन्हें प्राप्त नहीं कर सकता हूँ। संक्षिप्त मार्ग तो सदा ब्रह्म चिंतन करते रहना है। सारे सद्गुण स्वतः आ जायेंगे। तब मैं गम्भीर ध्यान कर सकूंगा। वह ठीक कहता है। प्रथम श्रेणी का साधक इस तरीके को व्यवहार में लावे, क्योंकि अपने पिछले जन्म में ही उसने साधन चतुष्टय का अभ्यास कर लिया है। मध्यम श्रेणी का साधक प्रारम्भ में ही ब्रह्म चिंतन नहीं कर सकता है। जब मन मलों से भरा हुआ हो, इन्द्रियां उपद्रवी हों तो फिर ब्रह्म चिंतन कैसे होगा ? यह असम्भव है। वह ब्रह्म चिंतन के लिये बैठेगा, उसका मन आकाश महल बनाने लगेगा, उसका मन विषय चिंतन में निरत रहेगा। वह मूर्खतावश इसी को निर्विकल्प समाधि समझ बैठेगा। गम्भीर निद्रा ही उसे समाधि जान पड़ेगी। बहुत से लोग इस भ्रम में पड़ जाते हैं। उनकी कुछ भी आध्यात्मिक उन्नति नहीं होती। उन्हें जरा भी ब्रह्म तत्व का ज्ञान नहीं होता। जो मन विवेक, वैराग्य, शम, दम आदि से शुद्ध बन गया है वही ब्रह्म को निश्चित रूप से जान सकता है। अशांत, मलिन मन में ब्रह्म विचार नहीं टिक सकता।

आप सभी विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान तथा मुमुक्षुत्व के अभ्यास से ब्रह्मानन्द में निमग्न हो जायं।

साधकों के लिये अपेक्षित योग्यतायें

जिन लोगों ने इसका साक्षात्कार किया है कि विषय-सुख क्षण-भंगुर, भ्रामक, खोखला तथा निस्सार है, वे ही आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के योग्य हैं।

सच्चे साधकों को हर प्रकार के व्यवहार में पूर्णतः सच्चा होना चाहिये।

योग मार्ग के साधक को नम्र, सरल. भद्र, शिष्ट, सहनशील, कारुणिक तथा दयालु होना चाहिये।

अविचल श्रद्धा साधक को असीम के साथ संबद्ध कर देती है।

धैर्य, उत्साह तथा लौह संकल्प से युक्त व्यक्ति ही आध्यात्मिक मार्ग पर चल सकता है।

ज्वलंत वैराग्य तथा मुमुक्षुत्व के बिना शम, दम, तितिक्षा आदि के अभ्यास विफल रहेंगे। वे सभी काम के आवेग में बह जायेंगे।

भक्ति योग के साधक में पर्याप्त शुद्ध भावना होनी चाहिये, ज्ञान योग के साधक में शम की आवश्यकता है तथा कर्म योग के साधक को चाहिये कि वह अपने हृदय को दूसरों में विलीन करने की कला जाने

साधक को आशा, कामना तथा लोभ से मुक्त होना चाहिये।

जो सुख तथा दुःख में स्थिर है वही अमृतत्व की प्राप्ति के लिये सबसे अधिक योग्य है।

जिस तरह रंगीन पानी सफेद वस्त्र में अच्छी तरह मिल जाता है उसी तरह ज्ञानी का उपदेश भी उन साधकों के हृदय में प्रवेश करता है जिसका मन शुद्ध तथा शांत है।

जो व्यक्ति मधुर, दयालु, मिलनसार तथा नम्र है, जो दूसरो
हृदय में प्रवेश करने की कला जानता है, वही सुखी तथा शांत
सकता है।

जो अपने आराम तथा सुख की उपेक्षा कर सदा दूसरों की सहाय
के लिये तैयार रहता है वह आध्यात्मिक मार्ग में उन्नत है।

परीक्षाओं, निराशाओं तथा कठिनाइयों में अविचल श्रद्धा हो
चाहिये। जब मनुष्य पूर्णतः निस्सहाय अनुभव करता है तब उसे अंत
से आशा तथा सहायता प्राप्त होती है।

पूर्णता मानसिक अनासक्ति तथा कठिन आत्म-संयम-ये लक्ष
प्राप्ति के लिये आवश्यक हैं।

वही अधिकारी साधक है जिसने निष्काम्य सेवा द्वारा अपने हृद
को शुद्ध बना लिया है, जिसे गुरु तथा शास्त्र के वचनों में श्रद्धा है तथ
जो साधन चतुष्टय से सम्पन्न है।

सदाचार, आर्जव, आकुलता, दया, उदारता, सेवा तथा करुणा ये
साधक के श्रेष्ठ गुण हैं।

अमरत्व तथा नित्य सुख की प्राप्ति कुतूहल पूर्ण साधना से सम्भव
नहीं। अनवरत सावधानी तथा प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

जिसमें शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति है
वह आदर्श आत्मा है। वह शीघ्र ही आध्यात्मिक मार्ग में सफलता प्राप्त
कर सकता है।

ब्रह्म को जानने की इच्छा उसी व्यक्ति में उत्पन्न होती है जिसका
मन शुद्ध है, जो कामनाओं से मुक्त है तथा जो इस दृश्य जगत के विषयों
को हेय समझता है।

यदि योगी अपने प्रारम्भिक साधनों—यम-नियम में स्थित नहीं
है तो वह मार अथवा शैतान के प्रलोभनों में अन-जानते ही जा
फंसता है।

काम तथा स्वार्थ से पूर्ण स्थूल मन आध्यात्मिक जीवन के लिये सर्वथा अनुपयुक्त है।

घृणा साधक का भयंकर शत्रु है। प्रेम आध्यात्मिक जीवन का संबल है।

जिनमें पर दोष दर्शन की आदत है वे साधक साधना में उन्नति नहीं कर पाते।

जिसका स्वभाव मलिन है तथा जिसमें संयम की कमी है, वह आध्यात्मिक मार्ग में त्वरित उन्नति नहीं कर पाता है। उसकी अन्तर्दृष्टि भी मंद रहती है।

महत्वपूर्ण साधना

नमक, खटाई तथा इमली के अधिक व्यवहार से उत्तेजना एवं क्रोध का आवेग होता है। अतः इन तीन वस्तुओं का पूर्णतः परित्याग कीजिये या स्वल्प मात्रा में ग्रहण कीजिये।

अल्प बोलिये। सदा मधुर बोलिये। कटु अथवा अश्लील शब्द न बोलिये। वाणी का बारम्बार नियंत्रण कीजिये। जब दूसरे गाली दें तो शांत रहिये।

विचार कीजिये। गाली कुछ भी नहीं है। यह शब्द जाल है। जो गाली देता है वह अपनी शक्ति का अपव्यय करता है तथा जिह्वा एवं चरित्र को बिगाड़ता है।

मन अत्युक्ति करता है। कल्पना आपको कष्ट पहुँचाती है। आप व्यर्थ ही कल्पना करने लगते हैं कि अमुक व्यक्ति आपको हानि पहुँचाना चाहता है। वास्तव में तो वह व्यक्ति निर्दोष ही है। वह आपका मित्र तथा हितैषी है। मन अत्युक्ति तथा कल्पना के द्वारा बहुत नुकसान पहुँचाता है।

सास बेकार के लिये कल्पना करने लग जाती है कि बहू उसका अनादर कर रही है। बहू भी यह कल्पना कर लेती है कि सास उसके

प्रति दुर्व्यवहार कर रही है। हर गृह में नित्य ही सास-बहू में झ
होता रहता है। व्यवस्थापक व्यर्थ ही यह कल्पना कर लेता है
अधिकारी उसके प्रति दुर्व्यवहार कर रहा है। किरानी भी कल्पना
लेता है कि उसका आफिसर उसके साथ उचित व्यवहार नहीं कर
है। अतः वह अपने आफिसर के साथ द्वेष रखता है। यह माय
जादू है। यह सब मन का खेल है। सावधान! मन के खेलों
समझिये। ज्ञानी बनिये। विवेक करना सीखिये। निष्काम्य सेवा क
सीखिये।

दलबन्दी न कीजिये। दल में सम्मिलित न होइये। उदार
रहिये। अकेले रहिये। साधुओं एवं महात्मा लोगों की संगति कीजि
जप, प्रार्थना तथा ध्यान के द्वारा अपनी अन्तरात्मा की संगति कीजिये।

जो आपको शाप दे उसे आशीर्वाद दीजिये। जो कष्ट पहुँचाये उस
मनुष्य के लिये प्रार्थना कीजिये। उस मनुष्य की सेवा कीजिये जो
आपकी निन्दा करे। उस मनुष्य से प्रेम कीजिये जो आपको हानि
पहुँचाना चाहता हो। सबों को गले लगाइये। सबों की सेवा कीजिये।
सबों से प्रेम कीजिये। आत्मभाव-नारायण भाव का विकास कीजिये।
राग-द्वेष स्वतः विनष्ट हो जायेंगे।

आदर तथा मान का परित्याग कीजिये। इसे विष्ठा या विष के
तुल्य समझिये। अनादर तथा अपमान को आभूषण के समान समझिये।
ऊँचे पद तथा प्रशंसापूर्ण शब्दों की अपेक्षा न रखिये। फूलदार गद्दियों पर न
बैठिये। जमीन पर बैठिये। गौरांग महाप्रभु उस स्थान पर बैठते जहां
जूते रखे जाते थे। नम्र बनिये। उन सेवा-कार्यों को कीजिये जिन्हें
संसार के लोग हेय दृष्टि से देखते हैं परन्तु जो वास्तव में ईश्वर की पूजा
तथा कर्म-योग है। अन्तिम भोजन के समय जीसस ने अपने शिष्यों के
चरण धोये तथा उन्हें जूते पहनाये। त्रिलोकी के स्वामी भगवान कृष्ण ने
राजसूय यज्ञ के समय अतिथियों के चरण धोये। इन बातों को सदा याद
रखिये। इससे आप नम्र बनेंगे।

अपने मन तथा भावनाओं का नित्य निरीक्षण कीजिये। सावधान
रहिये। शनैः-शनैः धैर्य का विकास कीजिये। बढ़िये, उन्नति कीजिये।

विकास कीजिये । अवंती ब्राह्मण, एकनाथ या जीसस के समान आध्यात्मिक बल से युक्त बनिये तथा आत्मा में शान्तिपूर्वक विश्राम कीजिये।

अपमान तथा नुकसान सहने के लिये ईश्वर आपको आंतर आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करे। आप जीवन्मुक्त बन जायँ।

सदाचार साधना

(1) आत्मा एक ही है। सभी भूतों में एक ही चैतन्य है। सारे जीव एक ही परमात्मा के प्रतिबिम्ब हैं। जिस प्रकार सारे जल पूर्ण पात्रों में एक ही सूर्य प्रतिबिम्बित होता है उसी प्रकार एक परमात्मा ही सभी मनुष्यों में प्रतिबिम्बित हो रहा है। एक अनेक नहीं हो सकता। एक अनेक प्रतीत होता है। अनेक मिथ्या है। पृथकता अस्थायी है। एकता सत्य है। सभी भूतों में एक ही जीवन स्पन्दित हो रहा है। पशु, पक्षी तथा मानव में जीवन एक ही है। अस्तित्व एक ही है। यही उपनिषदों की घोषणा है। धर्म का यह मूल सत्य सदाचार का आधार है। यदि आप किसी अन्य व्यक्ति को चोट पहुँचाते हैं तो आप अपनी ही हानि करते हैं। यदि आप किसी व्यक्ति की सहायता करते हैं तो यह आपकी ही सहायता है। अज्ञान के कारण एक व्यक्ति दूसरे को हानि पहुँचाता है। वह सोचता है कि दूसरे व्यक्ति उससे पृथक् हैं। अत: वह दूसरों को हानि पहुँचाता है। इससे वह स्वार्थी, लोभी तथा अभिमानी बना रहता है। यदि आप इसकी चेतना रखते हैं कि एक ही आत्मा सभी भूतों में व्याप्त है तथा सभी भूत एक ही आत्मा में वैसे ही ग्रथित हैं जिस प्रकार एक ही सूत्र में पुष्प पिरोये रहते हैं। फिर आप किसी को कष्ट कैसे पहुँचा सकते हैं?

(2) हममें से कौन ईश्वर अथवा दिव्य जीवन के सत्य के विषय में जानने के लिये उत्कण्ठा रखता है? हम इन प्रश्नों की जिज्ञासा रखते हैं: "इम्पीरियल बैंक में आपके कितने रुपये हैं? किसने मेरे विरुद्ध कहा? क्या आप जानते हैं मै कौन हूँ? आपके स्त्री बच्चे कैसे हैं?"

परन्तु हम ऐसे प्रश्नों की जिज्ञासा नहीं रखते : "मैं कौन हूँ ? यह संसार क्या है? मैं कहाँ से आया ? मैं कहां जाऊँगा ? ईश्वर कौन हैं ? ईश्वर के विशेषण क्या है ? ईश्वर के साथ हमारा सम्बन्ध क्या है ? मोक्ष को कैसे प्राप्त किया जाय ? मोक्ष का स्वरूप क्या है ?"

(3) अपने प्रति तथा अपने वातावरण एवं कार्यों के प्रति चिंतन करना ही सदाचार का प्रारम्भ है। काम करने से पहले थोड़ा ठहर कर विचार कर लेना आवश्यक है। अपने कर्तव्यों को पहचान कर यदि आप सच्चाई पूर्वक उनका पालन करें तो आपकी उन्नति होगी, आपकी शांति एवं सम्पत्ति की वृद्धि होगी, आपके सुख अधिक शुद्ध होंगे तथा आपके भोग तथा मनोरंजन अधिक शिष्ट होंगे। सुख छाया के समान है। इसके पीछे पड़ने से यह भागता जाता है। यदि मनुष्य इसके पीछे न पड़कर अपना कर्तव्य पालन करता है तो वह सर्वत्र शुद्ध एवं शिष्ट सुख को प्राप्त करेगा। यदि वह सुख के पीछे न पड़े तो सुख उसके पीछे पड़ेगा।

(4) सुख की शुद्धता तथा वृद्धि भी सदाचार का चरम लक्ष्य नहीं है, क्योंकि बुद्धि की वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य के दुःख तथा अशांति की की वृद्धि होती जाती है। सारे अस्तित्व का सारांश है प्रगति अथवा नये आदर्शों का सतत् साक्षात्कार। अतः सदाचार का लक्ष्य मनुष्य के अस्तित्व को ऊपर उठाना—उसे सुख-दुःख के आवेगों से ऊपर उठाना है।

(5) सुकरात का वचन, 'सदाचार ही ज्ञान है' नैतिक जीवन की सम्यक् व्याख्या है। 'ठीक क्या है ?' इसकी जानकारी एक वस्तु है तथा उसे व्यवहार में लाना दूसरी बात है। बुद्धि के आदेश के विरुद्ध कामनायें काम करती हैं। मनुष्य आसान मार्ग को ग्रहण कर लेता है। बुद्धि के आदेश पर चलने के लिये सहनशीलता की आवश्यकता है, कामनाओं का परित्याग करना होगा। बौद्धिक ज्ञान मात्र ही सदाचार को परिपक्व नहीं बनाता। अतः इच्छाशक्ति को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है, जिससे वह बुद्धि के आदेश पर चले तथा कामनाओं का परित्याग कर सके।

(6) शुद्ध बुद्धि मनुष्य को उस कार्य के लिये प्रेरित करती है जो श्रेष्ठ है। मनुष्य की आसुरी प्रकृति उसके विरुद्ध संग्राम करती है। जिस मनुष्य में नैतिक अनुशासन नहीं है उसके आवेग उसकी बुद्धि के विरुद्ध काम करते हैं। सारे सलाह, उपदेश, डांट-फटकार इस बात को प्रमाणित करते हैं कि मनुष्य अपनी निम्न प्रकृति को बुद्धि के अधीन ला सकता है।

(7) आत्म निर्भरता ही सदाचार का आधार है। यही कारण है कि सारे उपदेशकों तथा पैगम्बरों ने अपने अन्दर ईश्वर को पहचानने की आवश्यकता बतलाई है। आत्म निर्भरता ही शिष्टाचार का आधार है।

(8) जिस मनुष्य के जीवन में आदर्शों एवं सदाचार के मूल्यों की प्रधानता है, उसमें आत्म संयम सबसे अधिक रहेगा। सदाचार का चरम लक्ष्य आत्म संयम ही है। मनुष्य की सारी प्रकृति को अनुशासित करना चाहिये। हर तत्व को विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। अनुशासन से आत्म विरोधी तत्वों का दमन होता है। आत्म संयम से साधक सत्य को जानने, शुभेच्छा की वृद्धि करने तथा आत्म साक्षात्कार को प्राप्त करने में समर्थ बन जाता है।

(9) शास्त्रीय आधार पर उपदेश तथा अभ्यास के द्वारा अपनी कामनाओं को प्रशिक्षित करना ही अनुशासन है। आपको केवल बुद्धि को ही नहीं वरन् संकल्प तथा आवेगों को भी अनुशासित करना चाहिये। अनुशासित व्यक्ति अपने कर्मों को नियन्त्रित करेगा। वह आवेग के वशीभूत नहीं होगा। वह इन्द्रियों का गुलाम नहीं रहेगा। ऐसा अनुभव एक दिन के प्रयास का परिणाम नहीं है। सतत् अभ्यास तथा नित्य आत्मानुशासन के द्वारा ही मनुष्य इस शक्ति को प्राप्त कर सकता है। आवेगों की मांग को इनकार करने को कला सीखनी होगी। आत्म संयमित मनुष्य ऐसे बुरे कर्मों से स्वयं को रोकता है जिन कर्मों में सांसारिक लोग फँसे हुये हैं।

मौन साधना

(अ) मौन साधना का शैक्षणिक विवेचन :

मौन चुप रहने का व्रत है। आध्यात्मिक जीवन के लिये यह परमावश्यक है। व्यर्थ बकवास में बहुत अधिक शक्ति का अपव्यय हो जाता है। सारी शक्ति को ओज शक्ति में परिणत करना होगा। इससे आपको ध्यान में सहायता मिलेगी।

यदि परिस्थितियां मौन के अनुकूल न हों तो लम्बी बातें, बड़ी बातें, बेकार बातें, सारे प्रकार के विवाद एवं बहस आदि से जहां तक बन सके बचिये। यदि मौन के द्वारा आप अपनी शक्ति को सुरक्षित रखेंगे तो यह ओज शक्ति में परिणत होकर आपकी साधना में अधिक सहायक सिद्ध होगी। वाणी छांदोग्योपनिषद् के अनुसार तेजोमय है। अग्नि का स्थूल भाग हड्डी का, मध्यम भाग मज्जा का तथा सूक्ष्म भाग वाणी का निर्माण करता है। अतः वाणी बड़ी शक्तिशाली है। इसे याद रखिये। एक साल या छः महीने के लिये मौन व्रत रखिये। यदि आप छः महिने के लिये मौन व्रत नहीं रख सकते तो सप्ताह में कम से कम एक दिन इस व्रत को रखिये। श्री कृष्णाश्रम महाराज जैसे महात्माओं से आपको प्रेरणा लेनी चाहिये। वे हिमालय के बर्फीले प्रदेशों में आठ वर्षों से नंगे ही रहते हैं। ये आठ वर्षों से काष्ठ मौन का पालन करते हैं। 'काष्ठ मौन' में आपको दूसरों से संकेत अथवा लेखनी द्वारा भी बातें नहीं करनी चाहिये।

इन्द्रियों के मौन हो जाने पर इसे 'इन्द्रिय मौन' या कारण मौन कहते हैं। यदि शरीर को स्थिर रखें तो इसे काष्ठ मौन कहते हैं। सुषुप्ति में सुषुप्ति मौन रहता है। द्वैत तथा नानत्व के अन्त होने पर, वृत्तियों के निरोध होने पर ही वास्तविक मौन की प्राप्ति होती है। यही महामौन है। यही परब्रह्म है।

(ब) मौन साधना का महत्व :

यदि आप गम्भीर ध्यान का अभ्यास तथा शीघ्र आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करना चाहते हैं तो ये पांच वस्तुयें अनिवार्य हैं—मौन, मिताहार

या दूध फ़ल का आहार, मनोरम स्थान में एकान्तवास, गुरु का व्यक्तिगत सम्पर्क तथा ठंडा जलवायु।

वाक् इन्द्रिय माया का सवल अस्त्र है जिससे जीवों का मन विक्षिप्त हो जाया करता है। इन उपद्रवी इन्द्रिय के कारण झगड़े तथा युद्ध हुआ करते हैं। यदि आपने इस इन्द्रिय को नियंत्रित कर लिया तो आपका आधा मन नियंत्रित हो चुका।

वाक् इन्द्रिय बहुत ही उपद्रवी तथा हठी है। इसका दमन स्थिरता पूर्वक शनैः शनैः करना चाहिये। इसको नियंत्रित करने के लिये प्रयास करने पर यह आप पर द्विगुणित शक्ति से आक्रमण करेगी। आपको वीर तथा साहसी होना चाहिये।

वाक् इन्द्रिय के द्वारा मन की किसी भी बात को बाहर न निकलने दीजिये। मौन व्रत रखिये। इससे सहायता मिलेगी। इससे अशान्ति के बहुत वड़े कारण को आपने बन्द कर डाला है। आप अब शान्ति में निवास करेंगे। ईश्वर पर ध्यान कीजिये।

वाक् इन्दिय का दमन कारण मौन है। शारीरिक क्रियाओं का पूर्ण निरोध काष्ठ मौन है। वाक् मौन तथा काष्ठ मौन में मानसिक वृत्तियों का निरोध नहीं होता। काष्ठ मौन में आपको सिर भी नहीं हिलाना चाहिये। आपको किसी तरह का संकेत नहीं करना चाहिये, आपको किसी पत्र पर कुछ लिखकर व्यक्त नहीं करना चाहिये।

महा मौन की प्राप्ति में वाक् मौन सहायक है। महा मौन में मन सच्चिदानन्द ब्रह्म में विश्राम करता है। सारी वृत्तियां विनष्ट हो जाती हैं। मौन से शक्ति की सुरक्षा, संकल्प बल की वृद्धि तथा वाणी के आवेगों का नियंत्रण होता है। सत्य के अभ्यास में तथा क्रोध के दमन में यह बहुत ही सहायक है।

जीवन्मुक्त में ब्रह्मानन्द का सुख सुषुप्ति मौन है। संसार तथा इसके गुणों के मिथ्या स्वरूप के ज्ञान से मन में सारी शंकाओं का विनष्ट हो जाना सुषुप्ति मौन है। इसका निश्चय कि यह जगत ब्रह्म से परिपूर्ण है सुषुप्ति मौन है। सबों के प्रति सम दृष्टि रखना तथा सत् असत् जो कुछ है वह सब चिदाकाश ही है ऐसा अनुभव करना सुषुप्ति मौन है।

साधना के प्रारम्भ में ब्रह्मवादियों को भी वाक् मौन का अभ्यास करना चाहिये। मिथ्या अहंकार तथा अभिमान से फूल नहीं जाना चाहिये। मै वेदान्ती हूँ—मेरे लिये वाक् मौन की आवश्यकता नहीं। वेदान्ती के लिये भी वाक् मौन बहुत सहायक है। यदि आप काष्ठ मौन न रख सकें तो वाक् मौन से प्रारम्भ कीजिये।

मौन व्रत रखने वाले को जप, ध्यान तथा मंत्र लेखन में संलग्न रहना चाहिये। उसे दूसरों से नहीं मिलना चाहिये। उसे कमरे से बारम्बार बाहर नहीं आना चाहिये। वाणी की शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति में रूपान्तरित कर उसे ध्यान में लगाना चाहिये। तभी आप शम, शान्ति तथा आंतरिक आध्यात्मिक बल का अनुभव कर सकते हैं।

आपको अनुभव करना चाहिये कि आप मौन व्रत से बहुत लाभ उठायेंगे तथा अधिकाधिक शान्ति, आन्तरिक बल तथा सुख का अनुभव करेंगे। तभी आप मौनव्रत के पालन में दिलचस्पी लेंगे। तभी आप एक शब्द भी बोलने का प्रयास न करेंगे। दूसरों की नकल के लिये तथा बल पूर्वक मौन करने से तो आप अशान्त एवं उदास रहेंगे।

मौन के समय आप अच्छी तरह अन्तर्निरीक्षण तथा आत्म विश्लेषण कर सकते हैं। आप अपने विचारों को देख सकते हैं। आप मन के तरीके तथा उसे कार्यों को समझ सकेंगे। आप यह देख पायेंग कि मन किस प्रकार एक मिनट में ही एक वस्तु से दूसरी वस्तु की तरफ दौड़ता रहता है। मौन के अभ्यास से आपको बहुत लाभ होगा। मन का मौन ही वास्तविक मौन है। वाणी का मौन अन्त में मन के मौन की ओर ले जायगा।

मौन से आत्म बल की वृद्धि होती है। यह संकल्पों को रोकता, वाणी के आवेश का दमन करता तथा मन की शान्ति प्रदान करता है। आप में तितिक्षा बढ़ेगी। आप झूठ नहीं बोल सकेंगे। आपको वाणी के ऊपर विजय प्राप्त होगी।

मौन सत्य के पालन तथा क्रोध के दमन में बहुत ही सहायक है। इससे आवेगों का नियंत्रण होता तथा चिड़-चिड़ापन वन्द हो जाता है।

मौनी व्यक्ति नपे तुले शब्द बोलता है तथा उसकी वाणी बहुत ही प्रभावशाली होती है। साधारण लोगों में वाणी पर जरा भी नियंत्रण नहीं रहता। मौनी पहले सोच लेता है कि उसके शब्द दूसरों की भावना पर आघात पहुंचावेंगे या नहीं तथा उनसे दूसरों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा। वह अपनी वाणी में बड़ा सावधान रहता है। वह बहुत विचारशील होता है। अपने मुँह से निकालने के पहले वह अपने प्रत्येक शब्द को तोल लेता है। मौनी एकांत में बहुत दिनों तक भी रह सकता है। सांसारिक बातूनी आदमी कुछ घंटों के लिये भी एकान्त में नहीं रह सकते। वे सदा संगति चाहते हैं। मौन के लाभ अनिर्वचनीय है। अभ्यास कीजिये। शान्ति का अनुभव कीजिये तथा स्वतः मौन का उपभोग कीजिये।

संस्कृत के अध्ययन से कुछ लोग बातूनी बन जाते हैं। वे अपनी विद्वत्ता के प्रदर्शनार्थ अनावश्यक वाद-विवाद में फंस जाते हैं। इन विवादों में शक्ति का कितना अपव्यय होता है ? इस शक्ति को सुरक्षित करने से कितना लाभ होगा ! ध्यान में कितनी सहायता मिल सकेगी ! वह इस बल से आकाश-पाताल को चलायमान कर सकता है।

पीडा के समय मौन व्रत से मन को बड़ी शान्ति मिलती है। इससे मन के तनाव दूर होते हैं। मौन से शक्ति सुरक्षित होती है। आप मानसिक तथा शारीरिक कार्य अधिक कर सकेंगे। आप अधिक ध्यान कर सकेंगे। यह मस्तिष्क तथा स्नायुओं पर आश्चर्य-कर विश्रांतिदायक प्रभाव डालता है मौन के अभ्यास से वाक् शक्ति शनैः शनैः ओज शक्ति में बदल जाती है।

अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिये मौन का पालन कीजिये। इस प्रदर्शन के लिये मौन न रखिये कि लोग आपको महान् योगी समझें। किसी कार्य को करते समय अपनी प्रवृत्ति की जांच कर लीजिये।

भोजन करते समय मौन रहिये। अकेले रहिये। दूसरों से न मिलिये। संकेत, हाव भाव तथा हू हू हू हू ध्वनि न कीजिये। 'हू हू हू' करना बोलने के समान ही है। यह तो बोलने से भी बुरा है। हू हू हू से शक्ति का और भी अधिक अपव्यय होता है।

कामकाजू लोगों को कम से कम एक घंटा नित्य मौन व्रत रखना चाहिये। रविवार को छः घन्टे के लिये या पूरे दिन तक मौन रख सकते हैं। यह जानकर कि आप नियमित मौन व्रत का पालन कर रहे हैं अन्य लोग भी आपको विघ्न न पहुंचायेंगे। आपके परिवार के लोग भी आपको कष्ट न देंगे। मौन के समय को जप तथा ध्यान में लगाइये। प्रातः ध्यान के समय तो मौन रहता ही है, उसके अतिरिक्त प्रातः या सायं किसी भी समय अपनी सुविधा के अनुसार मौन व्रत रखिये। प्रातः ध्यान के समय को यदि मौन में गिनेंगे तो निद्रा के समय को भी मौन में गिन सकते हैं।

यदि परिस्थितियां मौन के लिये अनुकूल न हों तो बड़ी बातें करना व्यर्थ बातें करना, सारे प्रकार के विवाद तथा बहस को बन्द कीजिये तथा जितना अधिक हो सके स्वयं को समाज से अलग रखिये।

यदि स्थान मौन के अनुकूल न हो तो किसी एकान्त स्थान में चले जाइये जहाँ आपके मित्र आपको तंग न कर सकें।

अच्छा है कि आप कुछ समय के लिये एकान्त में मौन व्रत का पालन कर उन्नति करने की कोशिश करें। पूर्णता प्राप्ति के अनन्तर आप कम समय में ही आश्चर्यजनक कार्य कर सकेंगे।

यदि आप चालीस दिनों तक अनुष्ठान करना चाहते हैं तो इस बीच पूर्ण मौन रखिये। आपको अद्भुत शान्ति तथा आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त होगी। ऋषिकेश, हरिद्वार या प्रयाग में गंगा के तट पर अनुष्ठान कीजिये। घर में रहने वाली स्त्रियां बहुत बातूनी होती हैं। वे सदा कुछ न कुछ विघ्न खड़ा किया करती हैं। सास तथा बहू एक क्षण के लिये भी शान्त नहीं बैठतीं। घर में किसी न किसी प्रकार का झगड़ा चलता रहेगा। अनुष्ठान करने के लिये एकांत स्थान में चले जाइये।

बहुत दिनों तक लम्बा मौन अथवा काष्ठ मौन की आवश्यकता नहीं। अविकसित साधक के लिये बहुत दिनों तक मौन रखना हानिकारक है। बहुत दिनों तक मौन व्रत न रखिये। कुछ दिनों के लिये या एक माह के लिये मौन व्रत रखना वाणी के नियंत्रणार्थ बड़ा ही लाभकर सिद्ध

होगा। शक्ति की अत्यधिक सुरक्षा होगी। आप असीम शान्ति का अनुभव करेंगे।

आप बहुत समय के लिये भी मौन रख सकते हैं। परन्तु यदि इससे आपको कठिनाई मालूम पड़े और जप तथा ध्यान में समय का सदुपयोग न हो तो तुरन्त ही उसे तोड़ दीजिये। परिमित शब्दों वाला मनुष्य बनिये। यह मौन ही है। छः महिनां तक खूब बातें करना और छः महिने तक मौन रहना व्यर्थ ही है।

मौन का अभ्यास क्रमशः होना चाहिये अन्यथा आप दस या पन्द्रह दिन तक एकाएक मौन नहीं रख सकेंगे। जो लोग नित्य दो या तीन घन्टे तथा छुट्टियों में चौबीस घन्टे मौन रखते हैं वे एक सप्ताह या पन्द्रह दिन तक मौन रखने में समर्थ रहेंगे। आपको मौन का महत्व समझ लेना चाहिये। नित्य प्रति दो घन्टे मौन रखिये। धीरे धीरे छः घन्टे तक समय बढ़ा दीजिये। धीरे धीरे महिने में चौबीस घन्टे, दो दिन, एक सप्ताह और इसी तरह अधिक रख सकते हैं।

वाणी शक्ति को संयमित कर यदि उसे आप जप या ध्यान में न लगावें तो पूर्ण रुपान्तरित न होने के कारण वह उपद्रव करेगी। मौन व्रतधारी 'हू हू हू' का उच्चारण करता रहता है तथा हाथों से तरह-तरह के संकेत करता है। 'हू हू हू' करना तो बोलने से भी अधिक बुरा है।

मौन के समय हू हू हू' ध्वनि न कीजिये, हाथों से सकेत भी न कीजिये। यह बातें करने से भी बुरा है। इमसे शक्ति अधिक नष्ट होती है। यदि अनिवार्य कार्य हो तो किसी कागज के टुकड़े पर लिखकर बातें कीजिये। आपको इसका भी त्याग करना चाहिये।

मौन के समय बिना चीनी मिला दूध तथा विना नमक की दाल तथा साग भाजी का आहार कीजिये। यह वाणी का संयम है। दूध में चीनी मिलाने की आवश्यकता नहीं। दूध में प्राकृतिक चीनी रहती ही हैं। मनुष्य आदत के कारण अपनी जिह्वा की तृप्ति के लिये चीनी मिलाया करता है। जिह्वा के संयम से अन्य सभी इन्द्रियाँ शीघ्र ही संयमित हो जायगी। जिह्वा बहुत ही उपद्रवी इन्द्रिय है। जिह्वा का नियंत्रण मन का ही नियंत्रण है। हर वासना के दमन से आपको आत्म-

वल की शान्ति प्राप्त होगी, जिससे आप अन्य वासनाओं को दमन कर सकेंगे।

एकान्त में मौन व्रत का पालन करते समय मानसिक संन्यास का भाव रखिये। कम से कम कुछ दिनों के लिये मन को जरा भी ढीला न छोड़िये। ऐसा विचार न कीजिये-मैं तो अभी गृहस्थी हूं। मै संन्यासी नहीं हूै। कठोर तप से सारी दुर्बलतायें दूर हो जायगी। आपकी शीघ्र उन्नति होगी। उग्र संयम के बिना मन को नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

एकान्तवास के समय मौन व्रत की अवस्था में अखबार न पढ़िये। अखबार पढ़ने से सांसारिक संस्कारों का जागरण होगा जिससे आपकी शान्ति भंग हो जायगी। हिमालय में रहते हुए आप नगरों में ही रहेंगे। मौन से आप को अधिक लाभ न होगा। आपको ध्यान में सफलता न मिलेगी।

मौन के समय कागज के टुकड़े पर, स्लेट पर अथवा अपनी ऊंगली से अपने हाथ पर लिख कर अपने पडौसियों से अधिक बातें न कीजिये। आपको हंसना भी नहीं चाहिये। ये सभी मौन व्रत के खंडन हैं। ये सब बोलने से भी अधिक बुरे हैं।

अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिये। पहले से ही भोजन तथा उसके समय आदि की व्यवस्था कर लीजिये। अपने आहार में बारम्बार परिवर्तन न लाइये। सदा तरह तरह के खाद्य पदार्थों का चिन्तन न कीजिये।

कमरा साफ करना, पानी लाना, कपड़े साफ करना आदि स्वतः कीजिये। दाढ़ी बनाना, जूते में पालिश करना, धोबी से कपड़े धुलाना आदि की चिन्ता न कीजिये। इससे आपके ईश्वर चिंतन में विघ्न होगा। शरीर, भोजन तथा दाढ़ी की अधिक चिन्ता न कीजिये। ईश्वर का चिंतन कीजिये।

मन सदा इस ताक में रहेगा कि वह साधक को पतन के खड्ड में गिरा दे, अतः बहुत सावधान तथा सतर्क रहिये।

मौन के द्वारा आप शान्ति प्राप्त करें। भोग के द्वारा आप शांति के असीम सागर में गोता लगावें। मौन के द्वारा आप महा मौनी या जीवन्मुक्त बनें! ईश्वर आपको बल दे जिससे आप अखण्ड मौन व्रत का पालन कर सकें।

ब्रह्मचर्य साधना

विचार, वाणी तथा कर्म में शुद्धता ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य केवल जननेन्द्रिय का ही नहीं वरन् अन्य सभी इन्द्रियों का भी संयम है। यह ब्रह्मचर्य की विस्तृत व्याख्या है। ब्रह्मचर्य दो प्रकार का है–शारीरिक तथा मानसिक। शरीर का नियंत्रण शारीरिक है तथा बुरे विचारों का नियंत्रण मानसिक है। मानसिक ब्रह्मचर्य में कामुक विचार भी मन में प्रवेश नहीं करेंगे। जाग्रत तथा स्वप्न में कामुक विचारों से मुक्ति ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है।

वीर्य जो आपके जीवन को धारण करता है, आपका महान धन है। यह रुधिर का सारतत्व है। ब्रह्मचर्य सचमुच ही बहुमूल्य मुक्ता है। यह सबसे अधिक प्रभावशाली महौषधि है जो रोग, क्षय तथा मृत्यु को विनष्ट करता है। इस आत्मा का स्वरुप ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य में ही आत्मा का निवास है।

वीर्य जीवन, विचार, बुद्धि तथा चैतन्य का सार है। वीर्य के एक बार नष्ट होने पर पुनः आप दूध, मक्खन बादाम, मकरध्वज, टानिक आदि के आजीवन सेवन से भी उसकी पूर्ति न कर सकेंगे। वीर्य को साव-धानी पूर्वक सुरक्षित रखने से यह ईश्वरीय धाम के द्वारों को खोलता है तथा जीवन के सभी ऊँचे आदर्शों की प्राप्ति में सहायक बनता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा ही प्राचीन काल के ऋषियों ने मृत्यु पर विजय पाई तथा सुख एव आनन्द के धाम को प्राप्त किया।

ब्रह्मचर्य के बिना आप स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक जीवन प्राप्त नहीं कर सकते। जीवन के हर क्षेत्र में ब्रह्मचर्य ही सफलता की कुंजी है। ब्रह्मचर्य ही अतीत सुख का प्रवेश द्वार है। यह मोक्ष के द्वार को खोलता

है। ब्रह्मचारी के चरणों पर सिद्धि तथा ऋद्धि लौटती हैं। ब्रह्मचारी की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है? ब्रह्मचर्य अथवा निष्कलंक पवित्रता सर्वोत्तम तप है। इस संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जिसे ब्रह्मचारी प्राप्त न कर सके। वह समस्त जगत को चलायमान कर सकता है।

इन्द्रिय परायणता जीवन, सौन्दर्य, बल, वीर्य, स्मृति-शक्ति, धन, यश, पवित्रता तथा ईश्वर भक्ति का विनाश करती है। शरीर से वीर्य के बहिर्गमन से मृत्यु निकट आती जाती है। उसके संरक्षण से आयु बढ़ती है। जिन लोगों ने वीर्य का अत्यधिक क्षय किया है वे शीघ्र ही अशान्त तथा आलसी बन जाते हैं। वे शीघ्र ही रोग के शिकार बन जाते हैं। वे अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

ब्रह्मचर्य के अभाववश अथवा वीर्य शक्ति के क्षय के कारण मनुष्य शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक दुर्बलता प्राप्त करता है। ऐसे व्यक्ति छोटी छोटी वस्तु के लिये भी चिड़चिड़ा पड़ते हैं। वे बहुत से रोगों के शिकार हो अकाल मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

सुसंयमित जीवन, धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय, सत्संग, जप, ध्यान, सात्विक आहार, सदाचार, तीन प्रकार के तप तथा अन्य आध्यात्मिक साधनाओं से अन्ततः इसकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचर्य के अभ्यास से किसी तरह की हानि नहीं होती, किसी तरह के रोग अथवा मानसिक ग्रन्थियों की उत्पत्ति नहीं होती। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक गलत बतलाते हैं। उन्हें इस विषय का अनुभवात्मक ज्ञान नहीं है। उनकी यह गलत धारणा है कि अतृप्त काम शक्ति बहुत सी ग्रन्थियों का रूप धारण करता है। अधिक क्रोध, घृणा, द्वेष, चिन्ता, उदासी आदि के कारण ही ये रोग उत्पन्न होते हैं।

अश्लील चित्रों को न देखिये। अश्लील शब्द न बोलिये। कामोत्तेजक उपन्यासों को न पढ़िये। अशिष्ट भावनाओं को हृदय में स्थान न दीजिये। कुसंगति का परित्याग कीजिये। सिनेमा न जाइये। प्याज, लहसुन, चटपटी चीजें, चटनी तथा मसालों का त्याग कीजिये। पौष्टिक तथा सात्विक आहार लीजिये। काम शक्ति को ओज में बदल

डालिये । जप, कीर्तन, दिव्य विचार अथवा आत्म विचार तथा प्राणायाम के अभ्यास से यह परिवर्तन सम्भव होगा । शीर्षासन तथा सर्वांगासन का अभ्यास कीजिये । उपनिषद् तथा गीता का स्वाध्याय कीजिये । योगियों महात्माओं तथा साधुओं का सत्सग कीजिये । आप ब्रह्मचर्य में स्थित हो जायेंगे । काम शक्ति का रूपान्तरण हो जायगा ।

अन्तर्मुखवृत्ति की साधना

खोजिये, समझिये, साक्षात्कार कीजिये - इस त्रितय को याद रखिये । खोजना–श्रुतियों का श्रवण है । समझना-मनन अथवा सुनी हुई बात का चिंतन करना है । 'मैं ब्रह्म हूँ', इस विचार के सतत गंभीर निदिध्यासन से आत्म साक्षात्कार की प्राप्ति होती है, वेदान्त के अनुसार आत्म साक्षात्कार के ये तीन साधन हैं ।

विश्लेषण कीजिये, समझिये तथा त्यागिये - यह दूसरा त्रितय भी महत्व पूर्ण है । इससे वैराग्य का विकास होगा, विषयों के प्रति मोह का नाश होगा । ज्योंही कोई विषय आपको आकृष्ट करे त्यों ही इस त्रितय को याद कीजिये । उस विषय के विभिन्न अंगों का विश्लेषण कीजिये । इन विषयों के वास्तविक स्वरूप को समझ लीजिये तथा उनका परित्याग कर दीजिये । उपर्युक्त मंत्र के सतत जप से आप बहुत लाभ उठायेंगे । इससे वैराग्य की वृद्धि होगी । मन विषयों की ओर नही दौड़ेगा । यह विषयों से मुड़ जायेगा । विषयों के प्रति राग धीरे धीरे विलुप्त हो जायगा । इस तराके से मैंने बहुत लाभ उठाया है । सभी विषयों के प्रति राग के नष्ट हो जाने पर मन हृदय की ओर मुड़ेगा । यही मन का यथास्थान है । मन ईश्वर की ओर मुड़ेगा । वही अर्न्तवृत्ति है ।

आत्मविश्लेषण की साधना

नित्य आत्मविश्लेषण या आत्म निरीक्षण अनिवार्यतः आवश्य है। तभी आप अपने दोषों को दूर कर शीघ्रता पूर्वक आध्यात्मिक उन्न कर सकेंगे। माली नये पौधों की देख-रेख बड़ी सावधानी से करता है वह नित्यप्रति मोथों को दूर निकालता है। वह पौधों के चारों ओ मजबूत घेरा डालता है। वह उचित समय पर पानी डालता है। तभ वे अच्छी तरह बढ़ते तथा शीघ्र फलद होते हैं। ठीक उसी प्रकार दैनि आत्म निरीक्षण तथा आत्म विश्लेषण के द्वारा आपको अपने दोषों का पत लगा लेना होगा तथा अनुकूल साधनों से उन्हें दूर करना होगा। यदि एक तरीके से सफलता न मिले तो कई तरीकों का समन्वय रखिये। यदि प्रार्थना से फल न मिले तो सत्संग, प्राणायाम, ध्यान, विचार आदि कीजिये। आपको अभिमान, दंभ, काम, क्रोध आदि की बड़ी वृत्तियों को ही नष्ट नहीं करना है वरन् उनकी सूक्ष्म वासनाओं को भी जो चित्त के प्रकोष्ठों में छिपी रहती है नष्ट करना होगा तभी आप पूर्णतः सुरक्षित होंगे।

ये सूक्ष्म वासनायें बहुत ही खतरनाक हैं। वे चोर की भांति घात लगाये रहती हैं तथा आपको असावधान पाकर अथवा आपके वैराग्य में कमी देख कर या साधना में ढ़िलाई होने पर अथवा आपके उत्तेजित होने पर आप पर आक्रमण कर बैठती हैं। कई अवसरों पर अति उत्तेजना मिलने पर जब वे दोष प्रकट न हों, कई दिनों तक नित्य अन्तर्निरीक्षण तथा आत्मविश्लेषण की साधना बन्द हो तो आपको निश्चय जानना चाहिये कि सूक्ष्म संस्कार भी विनष्ट हो गये हैं। आप सुरक्षित हैं। आत्म विश्लेषण तथा आत्म निरीक्षण के अभ्यास के लिये धैर्य, संलग्नता, जौंक की भांति चिपके रहना, अध्यवसाय, लौह संकल्प, सूक्ष्म बुद्धि, साहस आदि की आवश्यकता है। परन्तु इसका फल अनमोल है। वह फल है अमरत्व, परम शान्ति, परमानन्द। इसके लिये आपको काफी मूल्य चुकाना होगा। अतः अपनी साधना करते समय असन्तोष न प्रकट कीजिये। आध्यात्मिक अभ्यास में आपको पूर्ण मन, हृदय, बुद्धि तथा आत्मा को लगाना होगा, तभी त्वरित सफलता सम्भव है।

नित्य आध्यात्मिक दैनन्दिनी का पालन कीजिये तथा रात्रि में आत्मविश्लेषण का अभ्यास कीजिये। डायरी में ये अंकित कीजिये कि दिनभर में आपने कितनी गल्तियां की हैं तथा कितने भले कार्य आपने किये हैं? प्रातः समय ऐसा संकल्प कीजिये : 'मैं आज क्रोध के वशीभूत नहीं बनूंगा। मैं आज ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। मैं सत्य बोलूँगा।

आध्यात्मिक दृष्टि की साधना

आसुरी प्रकृति को दैवी प्रकृति में परिणत करने के चार साधन हैं। जो इस साधना का अभ्यास करता है वह कदापि बुरी दृष्टि नहीं रखेगा। उसे आध्यात्मिक दृष्टि की प्राप्ति होगी। उसका दृष्टिकोण परिवर्तित हो जायगा। वह बुरे वातावरण की शिकायत नही करेगा। आपको इन चारों की साधना नित्य प्रति करनो चाहिये।

(1) कोई भी व्यक्ति पूर्णतः बुरा नहीं है। हर व्यक्ति में कुछ न कुछ सद्गुण अवश्य हैं हर व्यक्ति में शुभ के दर्शन कीजिये। शुभ दृष्टि का विकास कीजिये। दोषान्वेषक दृष्टि के लिये यह बहुत प्रभावशाली उपचार है।

(2) पहले दर्जे का दुष्ट व्यक्ति भी प्रसुप्त सन्त ही है। वह भविष्य में होने वाला सन्त है। इसको अच्छी तरह याद रखिये। वह शाश्वत दुष्ट नहीं है। उसे सन्तों की संगति में रख डालिये। उसकी चोर-वृत्ति तुरन्त ही बदल जायगी। दुष्टता से घृणा कीजिये परन्तु दुष्ट से नहीं।

(3) याद रखिये कि भगवान नारायण स्वयं दुष्ट, चोर तथा वेश्या के रूप में संसार के रंगमंच पर नाट्य क्रीडा कर रहे हैं। यह उनकी लीला है। आपकी सारी दृष्टि तत्क्षण परिवर्तित हो जायगी। दुष्ट को देखते ही आपके हृदय में भक्ति की भावना उत्पन्न होगी।

(4) सर्वत्र नारायण दृष्टि रखिये। सर्वत्र नारायण को देखिये। उसकी स्थिति का भान कीजिये। जो कुछ भी आप देखते; छूते तथा चखते हैं वह ईश्वर के सिवा और कुछ भी नहीं है।

मानसिक दृष्टिकोण को वदल डालिये। दृष्टिकोण को वदलिये तभी आप इस पृथ्वी पर स्वर्ग को प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषदों तथा वेदान्त सूत्रों के अध्ययन से क्या लाभ यदि मनुष्य की दृष्टि बुरी और जवान गन्दी हो।

सर्व साधना संग्रह

(1) चारों मुख्य साधनाओं के त्रिक्

(1) कर्म योग

वढ़िये	विकसित वनिये	त्याग कीजिये
सेवा कीजिये	दान दीजिये	शुद्ध बनिये

(2) भक्ति योग

प्रम कीजिये	कीर्तन कीजिये	आत्मार्पण कीजिये
स्मरण कीजिये	रोदन कीजिये	पूजा कीजिये
		(राम राम राम)

(3) राजयोग

दमन कीजिये	वश में लाइये	निरोध कीजिये

(4) ज्ञानयोग

श्रवण कीजिये	मनन कीजिये	निदिध्यासन कीजिये
विचार कीजिये	अनुसंधान कीजिये	चिंतन कीजिए
निश्चय कीजिये	जांचिये	भावना कीजिये
खोजिए	समझिये	साक्षात्कार कीजिये
		(ॐ, ॐ, ॐ)

(2) स्वर साधना

(क) विवरण :

मनुष्य के शरीर में कुल 72000 नाड़ियाँ हैं जिनसे प्राण का संचरण होता है। उनमें चौबीस नाड़ी मुख्य हैं। इन चौवीस में भी दस मुख्य हैं तथा उन दस में भी तीन मुख्य हैं (1) इड़ा या इंगला या चन्द्र (2) पिंगला या सूर्य तथा (3) सुषुम्ना।

एक दिन तथा एक रात में मनुष्य 21600 बार श्वास लेता तथा छोड़ता है।

दाहिनी नासिका से श्वास चलती हो तो उस समय सूर्य या पिंगला नाड़ी काम कर रही है। जब बांई नासिका से श्वास भीतर आती तथा बाहर जाती हो तो चन्द्र अथवा इड़ा नाड़ी काम कर रही है।

पृथ्वी तत्व का रंग पीला है। जल तत्व का रंग उजला है। अग्नि तत्व का रंग लाल है। वायु तत्व का रंग हरा है। आकाश तत्व का रंग काला है।

प्रातः यदि सूर्य नाड़ी काम कर रही हो तो सबसे पहले दायें पैर को जमीन पर रख कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर चलना लाभदायक है। प्रातः बिछावन से उठते समय नाड़ी के अनुसार पैर को जमीन पर रखना लाभदायक है। चन्द्र नाड़ी काम कर रही हो तो बाएं पैर को जमीन पर रखते हुए दक्षिण या पश्चिम दिशा की ओर तीन पग चलना चाहिये।

यदि कोई मनुष्य प्रश्न पूछे और उस समय सूर्य नाड़ी काम कर रही हो तथा प्रश्नकर्ता ऊपर, सामने या बांयी ओर खड़ा हो तो सफलता मिलेगी।

प्रातः उठकर सवेरे दाहिनी हथेली देखना शुभ है। नाड़ी के अनुसार हथेली से चेहरे को छूना बड़ा ही लाभदायक है। यदि सूर्य नाड़ी काम कर रही हो तो दाईं हथेली को चेहरे पर घुमाइये।

रविवार, मंगलवार तथा शनिवार—ये तीन दिन सूर्य नाड़ी के लिये हैं। चन्द्र नाडी के लिये सोमवार, बुधवार, बृहस्पतिवार तथा शुक्रवार हैं। इन दिनों जब उनके अनुकूल नाड़ी चल रही हो तो कोई भी प्रश्न पूछे जाने पर सफल रहेंगे। सुषुम्ना के समय प्रश्न पूछने पर सफलता नहीं मिलती।

श्वास की साधारणतः लम्बाई 12 अंगुल, खाते समय 20 अंगुल, टहलते समय 24 अंगुल, सोते समय 30 अंगुल, मैथुन के समय 36 अंगुल तथा व्यायाम के समय और भी अधिक रहती है।

ढाई घटिका के अन्तर पर अथवा हर घन्टे के बाद इड़ा तथा पिंगला में परिवर्तन होता रहता है। सुषुम्ना के समय ईश्वर पर ध्यान कीजिये।

किसी भी महिने के शुक्लपक्ष में पहले तीन दिनों तक चन्द्र नाड़ी का चलना लाभदायक है। चौथ, पंचमी तथा षष्ठी के दिन सूर्य नाड़ी शुभ है। सप्तमी, अष्टमी तथा नवमी को चन्द्र नाड़ी फलद है। दशमी, एकादशी तथा द्वादशी को सूर्य नाड़ी तथा त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा को चन्द्र नाड़ी फलद है। कृष्ण पक्ष में प्रथम तीन दिन सूर्य नाड़ी, दूसरे तीन दिन चन्द्र नाड़ी लाभकर है। इसी भांति आगे भी समझें।

इड़ा के समय पवित्र कार्यों को कीजिये। सूर्य नाड़ी के समय भोजन तथा मैथुन कीजिये। इड़ा नाड़ी सभी अंगों में अमृत का संचार करती है।

चन्द्र नाड़ी के समय लम्बी यात्रा या तीर्थ यात्रा के लिये निकलिये, धार्मिक त्यौहार मनाइये, कुएं तालाब खुदवाइये, मन्दिर–मूर्ति का उद्‌घाटन कीजिये, दवा लीजिये, विवाहोत्सव कीजिये, नये गृह में जाइये। कृषि कीजिये, मित्र अथवा मालिक से मिलिये, गुरू की पूजा कीजिये तथा अध्ययन प्रारम्भ कीजिये।

सूर्य नाड़ी के समय व्यायाम कीजिये। किसी गृह या नगर में प्रवेश करते समय तथा बाहर जाते समय नाड़ी के अनुकूल पेर पहिले रखकर चलिये।

षण्मुखी या योनि मुद्रा का अभ्यास कीजिये—दोनों कानों को दोनों अगूठों से, दोनों नासिकाओं को मध्यमा उंगलियों से, मुख को कनिष्ठा तथा अनामिका उंगलियों से बन्द कर लीजिये। हलका कुम्भक कीजिये। दोनों भौंहों के बीच मन को एकाग्र कीजिये।

यदि वृत पीला देखने में आवे तो पृथ्वी तत्व है, उजला तो जल तत्व है, लाल तो अग्नि तत्व है, हरा तो वायु तत्व है, काला तो आकाश तत्व है।

सूर्य नाड़ी के लिये 3, 5, 7, 9, विषम संख्यायें हैं। चन्द्र नाडी के लिये 2, 4, 6, 8 सम संख्यायें हैं। सूर्य नाड़ी के समय प्रश्न पूछे जाने पर,

यदि प्रश्न के अक्षर विषम हों तो उससे अच्छे फल की प्राप्ति होती है।

यदि पुत्र पुत्री के जन्म के विषय में प्रश्न पूछा जाय तो चन्द्र नाड़ी के समय पूछे जाने पर लड़की, सूर्य नाड़ी में लड़का तथा सुषुम्ना के समय नपुंसक को प्राप्ति होगी। स्त्री के मासिक शौच के अनन्तर पांचवें दिन यदि पति की सूर्य नाड़ी तथा पत्नी की चन्द्र नाड़ी चल रही हो तो उस समय उनका प्रसंग पुत्र उत्पन्न करेगा। यदि नाड़ी वाले पार्श्व में खड़े होकर प्रश्न पूछा जाय तो पुत्र की प्राप्ति होगी। खाली नासिका वाले पार्श्व से पूछने पर पुत्री की प्राप्ति होगी तथा सुषुम्ना में यमज की।

(ख) विधि :

श्वास प्रश्वास की गति को जानने तथा स्वर साधना के ज्ञान एव अभ्यास से भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है। यह विज्ञान रहस्यों का रहस्य है। यह सत्य अथवा ब्रह्म का प्रकाशक है तथा ज्ञानियों के लिये शिरोमणि है। यदि साधक में श्रद्धा, संलग्नता, तथा अवधान हो तो यह ज्ञान आसानी से समझा जा सकता है। नास्तिकों में यह आश्चर्य लाता है। स्वर में वेद तथा शास्त्र निहित हैं। स्वर परब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। स्वर ज्ञान से अधिक कोई गुप्त ज्ञान, स्वर ज्ञान से अधिक उपयोगी कोई धन न तो सुनने में आया है और न देखने में ही। स्वर शक्ति के द्वारा मित्र पुनः संगठित हो जाते हैं।

शरीर में नाड़ियाँ हैं जिनके रूप तथा विस्तार विविध हैं। ज्ञानार्जन के लिये साधकों को उनका परिज्ञान रखना चाहिये। नाभि स्थित कन्द से निकलकर 72000 नाडियाँ शरीर में फैलती हैं। कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में सर्प की भांति सोई हुई है। यहाँ से दस नाड़ियाँ ऊपर को तथा दस नाड़ियाँ नीचे को जाती हैं। इनमें तीन नाड़ी—इड़ा पिंगला तथा सुषुम्ना मुख्य हैं।

इडा मेरुदण्ड के बायें भाग में, पिंगला दायें भाग में तथा सुषुम्ना मध्य भाग में है। प्राण इन नाड़ियों से होकर शरीर के विभिन्न भागों में संचरित होते हैं। इडा बांयी नासिका से, पिंगला दाहिनी नासिका से तथा सुषुम्ना दोनों नासिकाओं से चलती है। इड़ा चन्द्र नाड़ी है। पिंगला सूर्य नाड़ी है। जीव सदा सोहम् का जप करता रहता है। सावधानी पूर्वक श्वास का निरीक्षण कीजिये। श्वास के समय 'सो' की ध्वनि होती

है तथा प्रश्वास के समय 'हम्' की। इड़ा तथा पिंगला की गति को बड़ी सावधानी पूर्वक देखिये। प्राण तथा मन को शान्त रखिये। जो लोग सूर्य तथा चन्द्र को समुचित क्रम में रखते हैं उनके लिये भूत तथा भविष्य हस्तामलकवत् बन जाते हैं।

इड़ा में श्वास अमृत के रूप में है। यह जगत का पोषक है। दक्षिण में जगत की उत्पत्ति होती है। मध्य में सुषुम्ना चलती है। चन्द्र नाड़ी के समय शान्तिपूर्ण कार्य कीजिये। सूर्य नाड़ी के समय कठोर कार्यों को कीजिये। सुषुम्ना नाड़ी के समय सिद्धि योग तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये साधना कीजिए।

चन्द्र तथा सूर्य के बीच पाँच घटिका (दो घन्टे) का अन्तर पड़ता है। दिन की साठ घटिका तक वे क्रमानुसार चलते रहते हैं। एक-एक घटिका के क्रम से पांच तत्व चलते हैं। प्रतिपदा के दिन शुरू होते हैं। क्रम बदल देने से परिणाम में भी अन्तर होता है। शुक्ल पक्ष में चन्द्र शक्तिमान है। कृष्ण पक्ष में सूर्य शक्तिमान है। यदि श्वास सूर्योदय के समय इड़ा से चलता है और दिनभर इसी तरह चलता रहता है तथा सूर्यास्त के समय पिंगला से चलता है तो मनुष्य बहुत लाभ प्राप्त करता है।

सूर्योदय से सूर्यास्त तक सारे दिन श्वास को इड़ा से चलने दीजिये तथा सूर्यास्त से सूर्योदय तक सारी रात पिंगला से। यही स्वर साधना का रहस्य है।

जो ऐसा अभ्यास करता है वह महान योगी है। इसका अभ्यास कीजिये। अपने आलस्य को दूर कीजिये। व्यर्थ बातों का त्याग कीजिये। कुछ तो लाभदायक कार्य कीजिये। कुछ तो व्यावहारिक कार्य कीजिये। गलत स्वर के द्वारा बहुत सी बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। उपर्युक्त स्वर साधना के द्वारा स्वास्थ्य एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है। इससे आप निस्सन्देह आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त करेंगे।

स्वर का परिवर्तन कैसे हो ?

निम्नांकित अभ्यास दिए जा रहे हैं जिनसे इड़ा से पिंगला में स्वर को बदला जा सकता है। अपने अनुकूल किसी भी विधि को चुन

लीजिए। पिंगला से इड़ा में बदलने के लिए उसी अभ्यास को दूसरी तरफ कीजिए :

(1) बांई नासिका को महीन वस्त्र अथवा रूई से कुछ मिनट के लिए बन्द कर दीजिए।

(2) दस मिनट के लिए बांई करवट लेट जाइए।

(3) सीधा बैठिये। बायें घुटने को ऊपर उठाइये। बांई एडी को बायें चूतड़ के निकट रखिये। बांई बगल को घुटने से दबाइये। कुछ ही क्षण में पिंगला चलने लगेगी।

(4) दोनों ऐडियों को दाहिने चूतड़ की ओर रखिये। दाहिनी एडी बांई एडी के ऊपर होनी चाहिये। बांई हथेली को एक फुट की दूरी पर जमीन पर रखिये। आपके शरीर का भार बायें हाथ पर पड़ना चाहिये। सिर को भी बांई ओर मोड़ लीजिये। दाहिने हाथ से बाये पांव की नली को पकड़ लीजिये। यह प्रभावशाली विधि है।

(5) नौली क्रिया के द्वारा भी स्वर परिवर्तन किया जा सकता है।

(6) योग दंड (करीब दो फीट लम्बा) (U) के आकार के सिरे को बांई कांख के वीचे रखिये तथा उस पर भार देकर बांई ओर झुकिये।

(7) खेचरी मुद्रा के द्वारा तत्क्षण ही परित्रर्तन हो जाता है। योगी जिह्वा को भीतर मोड़ कर जिह्वा के अग्रभाग से नासिका रध्र को बन्द कर देता है

3. लय योग साधना

(क) साधना की विधि :

लय योग में धारणा परमावश्यक है। किसी आन्तरिक चक्र अथवा वाह्य वस्तु अथवा अनाहत नाद अथवा किसी सूक्ष्म विचार पर मन को एकाग्र करने तथा अन्य सारे विषयों एवं जगत से मन को मोड़ लेने से धारणा गम्भीर हो जाती है।

पद्म अथवा सिद्ध आसन में बैठ जाइये। अंगूठों से कान को बन्द कर योनिमुद्रा का अभ्यास कीजिये। दाहिने कान से आन्तरिक ध्वनि का श्रवण कीजिये। जिस ध्वनि को आप सुनेंगे वह आपको अन्य सारी ध्वनियों के प्रति बहरा बना देगी। सारी बाधाओं पर विजय पाकर आप लय योग के अभ्यास से पन्द्रहवें दिन तुरीयावस्था को प्राप्त करेंगे। अभ्यास के प्रारम्भ में आप बहुत जोरों की आवाज सुनेंगे। वे धीरे-धीरे सुरीली होती जायेंगी तथा अभ्यास अनन्तर वे सूक्ष्म होती जायेंगी। आपको अधिकाधिक सूक्ष्मतर ध्वनि का अनुसंधान करना होगा। आप स्थूल ध्वनि से सूक्ष्म ध्वनि में और सूक्ष्म ध्वनि से स्थूल ध्वनि में अपनी धारणा बदल सकते हैं, परन्तु अपने मन को किसी अन्य वस्तु की ओर न भागने दीजिये।

सर्व प्रथम मन किसी भी एक नाद पर एकाग्र हो जाता है तथा धीरे-धीरे उसी में विलीन हो जाता है। बाह्य ध्वनियों से विरत होकर मन उस एक नाद से उसी प्रकार तन्मय हो जाता है जैसे दूध और पानी तथा शीघ्र ही वह चिदाकाश में विलीन होने लग जाता है। सभी विषयों से उपरत होकर, अपने आवेगों का दमन कर सतत् अभ्यास के द्वारा आपको नादानुसंधान करना होगा जो मनोनाश कर डालता है। सभी विचारों का परित्याग कर, सभी कर्मों से उपरत होकर आपको सदा नाद पर ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। तब आपका चित्त उसमें विलीन हो जायगा। जिस तरह मधु-मक्खी मधु पान करते समय सुगन्ध की परवाह नहीं करती, उसी तरह चित्त भी सतत् नाद में निरत रह कर विषय पदार्थों की कामना नहीं करता क्योंकि वह नाद की मधुर गंध में ही बंधा रहता है और उसने अपनी चंचलता का परित्याग कर डाला है। चित्त रूपी सर्प नाद का श्रवण करते हुए अन्ततः नाद में ही पूर्णतः विलीन हो जाता है। चित्त अन्य सभी पदार्थों के प्रति अचेतन होकर नाद पर ही रमा रहता है। नाद तेज अंकुश का काम करता है जिससे कि चित्त रूपी मदमत्त गज वश में आ जाता है : वह चित्त-रूपी हिरण को फंसाने का काम करता है। यह चित्त-रूपी समुद्र-तरंगों के लिए किनारे का काम करता है।

प्रणव से उद्भूत नाद प्रकाशमय होता है। मन उसमें विलीन हो जाता है। यही विष्णु का परम पद है। जब तक नाद है मन भी रहता

है, परन्तु नाद की परिसमाप्ति हो जाने पर तुरीयावस्था की प्राप्ति होती है। वह नाद ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है, तथा नि: शब्द अवस्था ही परम पद है। नाद पर सतत् ध्यान के द्वारा यह प्राणयुक्त मन जिसमें कर्माशय है, ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं। सभी अवस्थाओं तथा वृत्तियों से मुक्त हो जाने पर शरीर मृतवत् अथवा काष्ठवत्-शीतोष्ण, सुख-दुख से विमुक्त प्रतीत होगा। जब आध्यात्मिक दृष्टि निर्विषय अवस्था में स्थित हो जाती है, तब प्राण अनायास ही स्थिर हो जाते हैं तथा जब चित्त बिना किसी आलंबन के ही स्थिर हो जाता है तब आप ब्रह्म बन जाते हैं। जब मन विनष्ट हो जाता है, जब पाप तथा पुण्य विदग्ध हो जाते हैं, आप विशुद्ध नित्य, निष्कलंक ब्रह्म के रूप में विभासित हो उठते हैं। आप अब मुक्त हैं।

(ख) लय योग साधना में अनुभव :

पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ जाइये। कानों को अंगूठों से बन्द कर लीजिये। यह षण्मुखी मुद्रा या वैष्णवी मुद्रा या योनि मुद्रा है। ध्यान पूर्वक अनाहत ध्वनि सुनिये। समय-समय पर आप बाएं कान से भी ध्वनि सुन सकते हैं। आप केवल दाहिने कान से ही स्पष्टत: कैसे सुन पाते हैं ? क्योंकि सूर्य नाड़ी उधर है। पिंगला नाक के दाहिने भाग में है। अनाहत ध्वनि को ओंकार ध्वनि कहते हैं। यह प्राण के स्पंदन के कारण है।

श्वास के साथ सोऽहम् (अजपाजप) जप कीजिये। एक या दो महीने के लिए प्राणायाम का अभ्यास कीजिये। आप स्पष्टत. दस अनाहत ध्वनि सुन सकते हैं तथा आत्म संगीत का उपभोग कर सकते हैं। सारे जागतिक विचारों का आप परित्याग कर सकते हैं। मन की सारी विक्षिप्त किरणों को समेट कर अनाहत ध्वनि पर लगाइए। यम अथवा सदाचार का अभ्यास कीजिये।

दस प्रकार के नाद अथवा अनाहत सुनाई पड़ते हैं। पहला है चिनी, दूसरा है चिनी-चिनी, तीसरा है घंटा ध्वनि के समान, चौथा है शख घोष के समान, पांचवां है तंत्री के समान, छठा है ताल के समान, सातवां है बांसुरी के समान, आठवां भेरी के समान, नवां मृदंग के समान और दसवां घनघोष के समान है।

नाद की निश्रयिणी की ऊपरी सीढ़ी पर पैर रखने से पहले आपको अपनी अंतरात्मा की वाणी को सात प्रकार से सुनना होगा। पहली है बुलबुल की सुरीली ध्वनि-उस समय की जिस समय वह अपने जोड़े से बिछुड़ती है। दूसरी है ध्यानियों के रजत-तालों की ध्वनि जो टिमटिमाते तारों को जगमगाती है। तीसरी है बंदी सामुद्रिक बैताल के फरियाद के संगीत के समान और इसके बाद वीणा की टंकार। पांचवी ध्वनि बांसुरी है जो आपके श्रोत्रों को गुंजा डालती है। बाद में यह मृदंग की ध्वनि में परिणत होती है। अन्तिम ध्वनि नभ गर्जन के सदृश होती है। यह सातवीं ध्वनि अन्य सारी ध्वनियों को आत्मसात कर लेती है। वे विलीन हो जाती हैं और फिर सुनाई नहीं पड़तीं।

सातवीं में आप गुप्त वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे। इसके बाद की अवस्थाओं में आप परा वाक् का श्रवण करेंगे तथा दिव्य चक्षु का विकास करेंगे। अन्ततः आप परब्रह्म को प्राप्त करेंगे।

ध्वनि मन को फंदे में डालती है। मन ध्वनि के साथ उसी प्रकार एक हो जाता है जिस प्रकार दूध पानी से मिलकर। यह ब्रह्म में विलीन हो जाती है।

हृदय की शुद्धि के बिना आप लय योग में जरा भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। आपको सर्व प्रथम निष्काम्य कर्मयोग, कीर्तन, जप, ध्यान, दिव्य गुणों का अर्जन तथा दुर्गुणों के त्याग के द्वारा अपने हृदय को शुद्ध बना लेना होगा। आपको साधन चतुष्टय से सम्पन्न बनना चाहिये, फिर लय योग का अभ्यास करना चाहिये। तभी आप नित्य सुख एवं अमृतत्व के धाम को प्राप्त कर सकते हैं।

प्रणव साधना :

भवसागर में डूबते हुए मनुष्यों के लिए प्रणव नौका के समान है। बहुतों ने नौका के सहारे समुद्र का संतरण किया है। आप भी यदि ॐ पर सतत् ध्यान करें तो संसार का संतरण कर सकते हैं।

अमर सर्वव्यापक परमात्मा का एकमेव प्रतीक ॐ ही है। सभी विषय विचारों का परित्याग कर ॐ का चिंतन कीजिये। सारे सांसारिक

विचारों को वन्द कर डालिये। वे बारम्बार आवेंगे। परन्तु आपको शुद्ध आत्मा का बारम्बार विचार करना होगा। ॐ के साथ शुद्धता, पूर्णता, मुक्ति, ज्ञान, अमृतत्व, नित्यता, असीमता आदि के विचारों को संयोजित कीजिये। ॐ का मानसिक जप कीजिये।

सदा निम्नांकित विचारों पर ध्यान कीजिये तथा उनका मानसिक जप कीजिये—

मैं हूँ ज्योति का सर्वव्यापक सागर	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ ज्योतियों की ज्योति	,,
मैं हूँ सूर्यों का सूर्य	,,
मैं हूँ असीम	,,
मैं हूँ शुद्ध चैतन्य	,,
मैं हूँ सर्वव्यापक असीम ज्योति	,,
मैं हूँ व्यापक परिपूर्ण	,,
मैं हूँ ज्योतिर्मय ब्रह्म	,,
मैं हूँ सर्वव्यापक सर्वज्ञ	,,
मैं हूँ सुखमय शुद्ध स्वरूप	,,
मैं हूँ पूर्ण महिमा, पूर्ण आनन्द	,,
मैं हूँ पूर्ण स्वास्थ्य, पूर्ण शान्ति	,,

वीर साधक! अद्वैत की चरम शिक्षा को सदा याद रखिये। 'तत्वमसि' तू वही है। ऐसा अनुभव कीजिये, ऐसा पहिचानिये। सर्वसुखमय आत्मा के साथ अपना तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कीजिये। अभी इसी क्षण कीजिये।

ॐ का जप ब्रह्म के साथ तादात्म्य सम्बन्ध रखकर करना चाहिये। तज्जपः तदर्थ भावनम्। सुखमय आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध बनाइये। जब आप ॐ का जप या ध्यान या विचार करें तो पंचकोशों का निराकरण कर आत्मा के साथ तादात्म्यता स्थापित कीजिये।

ॐ को सच्चिदानन्द ब्रह्म अथवा आत्मा का प्रतीक जानिए। यही अर्थ है। ध्यान के समय भावना कीजिये कि आप शुद्ध स्वरूप ज्योति स्वरूप तथा सर्वव्यापक सत्ता हैं। नित्य आत्मा पर ध्यान कीजिये। विचार कीजिये कि आप मन अथवा शरीर से पूर्णतः पृथक् हैं। अनुभव

कीजिये कि आप सच्चिदानन्द आत्मा है, मैं सर्वव्यापक चैतन्य हूँ। यह वैदान्तिक ध्यान है।

भावना तथा अर्थ के साथ ॐ पर ध्यान करने से ब्रह्मज्ञान का साक्षात्कार होता है। यही ज्ञान योग है 'अ' 'उ' 'म्' तथा अर्द्ध मात्रा के अतिरिक्त ॐ के चार और अंग हैं—बिन्दु, बीज, शक्ति तथा शान्ति। ध्यान में भावना के द्वारा इन चारों का अनुभव करना चाहिए। ॐ के लय, चिंतन से अद्वैत निष्ठा या निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होती है।

(क) विश्व विराट् में लय होता है। विराट् 'अ' में लीन होता है।

(ख) तेजस् हिरण्यगर्भ में लय होता है तथा हिरण्यगर्भ 'उ' में।

(ग) प्रज्ञा ईश्वर में लय होती है तथा ईश्वर 'म' में।

तुरीय जीव तथा ईश्वर दोनों में समान है। 'अ' मात्रा कूटस्थ में लय होती है—जीव ब्रह्मैक्यम्-जीव तथा ब्रह्म की एकता। इस तरह आपको प्रणव साधना के द्वारा परमात्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना पड़ेगा।

आप सभी अद्वैत ब्रह्म में निवास कर अमृत रस का पान करें। जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं के अनुभवों का विश्लेषण कर आप सभी तुरीय को प्राप्त करें। आप सभी ओंकार अथवा प्रणव तथा 'अ' मात्रा का समुचित ज्ञान रखें। 'अ' 'उ तथा 'म' का अतिक्रमण कर आप निःशब्द ॐ में प्रवेश करें। आप सभी ॐ पर ध्यान करे तथा चरम सत्य लक्ष्य को प्राप्त करें। यह ॐ आपका पथ प्रदर्शन करे! यह ॐ आपका केन्द्र लक्ष्य तथा आदर्श हो।

सोऽहम् साधना :

सोऽहम् का अर्थ है मैं वह हूँ या मैं ब्रह्म हूँ। सः का अर्थ है वह। अहम् का अर्थ है मैं। यह सबसे बड़ा मंत्र है। यह अभेद बोध वाक्य है जिसका अर्थ है जीव तथा ब्रह्म की एकता।

सोहम वास्तव में ओउम ही है। 'स' तथा 'ह' व्यंजनों का निषेध कीजिये। आप ॐ प्राप्त करेंगे। सोहम् ॐ का ही रूपान्तर है।

सोहम् पर ध्यान का अर्थ है ॐ पर ध्यान करना। सोहम् साधना करने से पहले नेति का अभ्यास करना चाहिये। शरीर तथा अन्य कोशों का आपको निषेध कर लेना चाहिये—'नाहम् इदं शरीरम् अहमेतत् न।' मैं शरीर, मन अथवा प्राण नहीं हूँ। मैं वही हूँ। वह मैं हूँ। सोहम् सोहम्।

जीव चौबीस घन्टे के अन्दर 21600 बार इस मंत्र का अनजाने ही जप करता रहता है। सुषुप्ति में भी सोहम् का जप जारी रहता है। श्वास का सावधानी पूर्वक निरीक्षण कीजिये और आप इसे जान जायेंगे। श्वास लेते समय 'सो' की ध्वनि होती है तथा श्वास छोड़ते समय 'हम्' की। यह अजपा मंत्र है।

इस मंत्र का मानसिक जप कीजिये। पूरे हृदय से आप ऐसा अनुभव कीजिये कि आप सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सुखपूर्ण ब्रह्म अथवा आत्मा हैं। यन्त्रवत् जप आपको अधिक सहायता नहीं दे सकता। अनुमति के द्वारा ही अधिकाधिक लाभ की प्राप्ति हो सकती है। यदि बुद्धि यह भावना करने का प्रयास करे, 'मैं ब्रह्म हूँ मैं सर्व शक्तिमान हूँ' परन्तु चित्त यह अनुभव करे मैं अमुक व्यक्ति हूँ, मैं दुर्बल हूँ. मैं असहाय हूँ, 'तो साक्षात्कार सम्भव नहीं है। आपको सारे गलत संस्कार, झूठी कल्पनायें, दुर्बलता तथा अंध विश्वास एवं भय को नष्ट करना पड़ेगा। आपको अविद्या को विनष्ट करना होगा। मन ने ही मनुष्य को देहाध्यास के द्वारा इस बंधन में डाल दिया है। अविद्या के आवरण का भेदन कीजिये। पंचकोशों को विदीर्ण कर डालिये। अविद्या के पर्दे को उठाइये। सोहम् साधना की शक्ति के द्वारा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हो जाइये। निश्चय कीजिये,' अहम् ब्रह्मोस्मि' घोषणा कीजियेः 'तत्वमसि'।

गाइये

मैं शरीर और मन से अतीत हूँ, मैं हूँ अमरात्मा सोहम्।
मैं हूँ तीनों अवस्था का साक्षी, परम अस्तित्व सोहम्।
मैं हूँ तीनों अवस्था का साक्षी, परम चैतन्य सोहम्।
मैं हूँ तीनों अवस्था का साक्षी, परम आनन्द सोहम्।
सोहम् सोहम् शिवोहम् सोहम्
सोहम् सोहम् शिवोहम् सोहम्।
यह शरीर नहीं हूँ मैं, न शरीर है यह मेरा।

यह प्राण नहीं हूँ मैं, न यह प्राण है मेरा।
यह मन नहीं हूँ मैं, न यह मन है मेरा।
यह बुद्धि नहीं हूँ मैं, न यह बुद्धि है मेरी।
मैं हूँ वही मैं हूँ, मैं हूं वही मैं हूँ।
मैं हूँ वह मैं हूँ, वह मैं हूँ वही, मैं हूँ वही!
सोहम् सोहम् शिवोहम् सोहम्
सोहम् सोहम् शिवोहम् सोहम्
मैं हूँ सच्चिदानन्द स्वरूप
मैं हूँ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव।
मैं हूँ स्वयंप्रकाश, मैं हूँ शान्तिस्वरूप।
मैं हूँ अकर्ता अभोक्ता, मैं हूँ असंग साक्षी।
प्रज्ञानम् ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि।
तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म
सत्यं ज्ञानम्, अनन्तम् ब्रह्म
एकमेवाद्वितीयम्, सर्वं खल्विदं ब्रह्म।
नेह नानास्ति किंचन।
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

शरीर भावना का निराकरण कर ब्रह्म भावना के द्वारा अपने स्वरूप का साक्षात्कार कीजिये। सदा सोहम् का मानसिक जप कीजिये। सच्चिदानन्द ब्रह्म का ध्यान कीजिये। बैठते हुए, खड़े होते हुए, खाते हुए, बोलते हुए मौन रूप से सोहम् का उच्चारण कीजिये तथा श्वास का निरीक्षण कीजिये। धारणा के लिये यह सुगम विधि है। सोहम् भाव आपका स्वभाव बन जाना चाहिये।

सोहम् साधना आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़े हुए साधकों के लिए ही उपयुक्त है खासकर उन लोगों के लिए जो अद्वैत वेदांत के साधक हैं। फिर भी मनुष्य को प्रारम्भिक अभ्यासों से गुजरना होगा ही। उसे योग की निश्रयिणी पर एक-एक सीढ़ी कर के ही चलना होगा। जब तक हृदय शुद्ध नहीं होगा जब तक मन का मल दूर नहीं होगा, जब तक कर्तृत्वाभिमान तथा अहंकार पूर्णतः विनष्ट नहीं होंगे तब तक मनुष्य सोहम् साधना के मार्ग में विशेष उन्नति नहीं कर सकता।

विचार साधना

बहुधा हम वस्तु को पीछे छोड़ छाया के पीछे दौड़ते रहते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से यह सिद्धान्त ही बंधन का मूल है। ईश्वर को न खोज मनुष्य उसकी छाया-जगत के पीछे दौड़ता है। यह सारे दुखों का कारण है।

'ईश्वर' शब्द से भी बहुधा हम 'छाया' के बारे में ही जानते हैं, उस 'वस्तु' के विषय में नहीं। इस असत्य छाया के पीछे हम इतना संलग्न हो जाते हैं कि वृक्ष की चेतना भूल जाती है तथा अरण्य का सुन्दर दृश्य तिरोहित हो जाता है।

सद्ग्रन्थों के अध्ययन सम्बन्धी विषय में भी यही बात है। जनता की गलत धारणा में सुधार लाने के लिए सुधारकों तथा पैगम्बरों को बारम्बार प्रयत्न करना पड़ता है। सद्ग्रन्थों का तत्व गलत धारणाओं से बारम्बार आच्छन्न हो जाता है। जगत के अधिकांश धर्मों की उत्पत्ति इसी प्रकार के सुधार का ही परिणाम है। सबों का मूल एक ही धर्म था। कालान्तर में भ्रमवश लोगों ने उसे मत-मतान्तर के द्वारा विभिन्न सम्प्रदायों में बदल दिया। वे विरोधी दलों में बंट जाते हैं। हर धर्म स्वयं को ही सच्चे धर्म का अनुयायी बतलाता है। तब एक नक्षत्र की-सुधारक की आवश्यकता होती है जो ज्ञान सागर में डुबकी लगाकर सत्य की मुक्ता को बाहर निकाल लाता है। कुछ तो उसका अनुगमन करते हैं दूसरे अपनी उलटी तान छेड़ते ही रहते हैं। नया द्रष्टा अपने अनुयाइयों का दल प्राप्त करता है जो उसके उपदेशों का प्रचार करते हैं और ये नये धर्म की स्थापना कर बैठते हैं। यही लीला युग युगान्तरों से चलती आ रही है।

धर्म ग्रन्थों के उपदेश के अतिरिक्त सभी धर्मों में उनके पैगम्बरों की शिक्षायें हैं। ये सभी 'कहावतों' का रूप धारण करती हैं। इन कहावतों में जो आध्यात्मिक हैं, उनका अर्थ गूढ है तथा वे धर्म ग्रन्थ के वाक्यों के समान ही गम्भीर हैं। इससे भावी संतति उनका विपरीत अर्थ लगा लेती है। स्वर्गिक सगीत को तान छेड़ने के विफल प्रयास में बहुत से निरर्थक राग भी अलापने लगते हैं।

तामिल साहित्य से ही कुछ उदाहरण देखे। एक सुन्दर कहावत है—'जब आप कुत्ते को देखते हैं तो पत्थर नहीं, जब पत्थर देखते हैं तो कुत्ता नहीं।' यह कहावत अब सस्ती बन गई है। लोग इसके शाब्दिक अर्थ को ही समझने लग गये हैं। कोई व्यक्ति ग्राम-पथ से कहीं जा रहा है। बहुत से कुत्ते उसके निकट आ धमकते हैं। वह सोचता है—'दुख की बात है इतने कुत्ते हैं, परन्तु पत्थर नहीं है, नहीं तो इन कुत्तों को मजा चखाता। वही व्यक्ति तीर्थ यात्रा को निकलता है। गंगा तट पर बहुत से पत्थरों को देखता है और विचारता है—'यहां इतने पत्थर है, परन्तु कुत्ते नहीं जिनको इनसे मारा जाय।' उस कहावत का ऐसा गलत अर्थ लगाया जाता है। कुछ विचारशील व्यक्ति इसका अर्थ इस प्रकार लगाते हैं—'जहां रुपये की अधिक आवश्यकता है वहां रुपयों का अभाव है। जहां आवश्यकता नहीं वहां तो रुपयों की प्रचुरता है।' शायद ही कोई इस कहावत के गूढार्थ को समझ पाता है।

इस कहावत के गूढार्थ को समझने से पहले हम ईश्वर तथा जगत के विषय में विचार करें। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या', 'जीवो ब्रह्मैव नापरः'- यह जगत मिथ्या है, इसका अस्तित्व ही नहीं—ऋषियों ने ऐसी घोषणा की है। हम इस जगत को उसी प्रकार देखते हैं जिस प्रकार रस्सी में सर्प, मृगतृष्णा में जल, सीपी में रजत। अपने कार्यालय से एक मनुष्य थका माँदा घर लौटता है और दरवाजे के भीतर घुसते ही उसे लगता है मानों उसके पांव तले कोई सर्प आ गया हो। अन्धकार के कारण वह उस वस्तु की जांच नहीं कर पाता। उस अवस्था में विचारशक्ति काम नहीं करती। उसका सिर चकराने लगता है, वह भयभीत हो जाता है। वह चक्कर खाकर जमीन पर गिर जाता है। लोग तुरन्त ही हल्ला मचाने लगते हैं। इस मनुष्य को सर्प ने डस लिया। लोगों की भीड़ उसकी चारपाई के चतुर्दिक एकत्र हो जाती है। रोना, चिल्लाना, प्रार्थना, मंत्र आदि प्रारम्भ हो जाते हैं। इसी बीच एक बुद्धिमान व्यक्ति आता है। वह कहता है 'मार्ग छोड़ो, मैं जरा रोगी को देखूं।' वह शान्तिपूर्वक रोगी की जांच करता है तथा अपनी लम्बी दाढ़ी को सहलाते हुए पूछता है, 'सर्प ने आपको कहां पर काटा?' वह व्यक्ति धीमें स्वर में कहता है, 'दरवाजे से चार गज की दूरी पर।' हाथ में बत्ती लेकर वह वृद्ध मनुष्य देखने निकल पड़ता है। सर्प तो स्थिर रहने

वाला नहीं। वह वृद्ध उस स्थान पर तथाकथित सर्प को देखता है। परन्तु बत्ती की रोशनी ने उसे फूलों की माला के रूप में बदल दिया। विजयी भाव से वह मनुष्य उस माला को हाथ में लेकर मरणासन्न व्यक्ति के नजदीक आता है। 'यही तो वह सर्प है जिसने तुम्हें काटा था। इसमें जहर तो जरा भी नहीं। अतः उठ बैठो। अपनी कमीज बदल डालो। यह पसीने से भीग गई है।' वह व्यक्ति तुरन्त स्फूर्तिमान हो जाता है, दुख तथा भय दूर हो जाते हैं। वह तुरन्त उठ जाता है, अपने रक्षक को गले लगाता है तथा भीड़ को बिदा करता है।

यही हिसाब है इस जगत का भी। यह ब्रह्म के ऊपर अध्यास है। जैसा यह दिखाई पड़ता है वैसा यह है नहीं। जब तक आप अन्धकार में इसे देखेंगे तब तक यह सर्पवत् मालूम पड़ेगा। ज्ञानदीप को जलाइए, यह जगत अदृश्य हो जायगा और आप सारतत्व ब्रह्म का साक्षात्कार करेंगे। बहुत से तामिल सन्तों ने इस विचार को प्रेरणात्मक काव्यों में रखा है। जो ईश्वर को देखता है वह पंचतत्वों से रचित जगत को नहीं देखता। जो तत्वों के खेल में निमग्न है वह ईश्वर के दर्शन नहीं करता।

कहावत के वास्तविक अर्थ को जानने के लिए हमें उस प्रसंग को जानना चाहिए जिसमें इसकी उत्पत्ति हुई। तभी हम तात्पर्य को जान पाते हैं।

एक शिल्पी किसी पुराने मन्दिर के चारों ओर भ्रमण करता है तथा उसकी चित्रकारी के सौन्दर्य में उसका मन विलीन हो रहा है। वह बिल्ली की पूँछ देखता है। अहा! कितनी सुन्दर है यह। यह शेर का मुँह है और उसमें पत्थर का गोला है। इस तरह वह एक मूर्ति से दूसरी मूर्ति की ओर देखता जाता है। वह मुड़ता है—'अहा वह विशाल कुत्ता! यदि उसने मुझ पर छलांग लगाई तो! इसके पैने दांत को तो देखा! और इसकी रक्त-पिपासित जिह्वा। यह तो सीधे मेरी ही ओर देख रहा है। हे प्रभु! अब मैं क्या करूँ? वह भय से आंखें मूंद लेता है। एक मिनट, दो मिनट, तीन मिनट गुजर गये। अभी भी वह कुत्ता शांत है। 'सम्भवतः कुत्ता बंधा हुआ है वह एक छोटा पत्थर कुत्ते की ओर फेंकता है।' फिर भी वह ज्यों का त्यों वहीं है, उसी ओर टकटकी

लगाये हुये। "यह तो अपनी पूंछ भी नहीं हिलाता? यह तो अनोख
कुत्ता है?" वह और भी निकट जाता है तथा पूंछ छूता है। उसक
सारा शरीर हंसी से स्पदित हो उठता है, अपने ही इस मूर्खतापू
व्यवहार पर। यह तो पत्थर का बना हुआ है। परन्तु ऐसी उसक
कारीगरी थी कि वह सचमुच कुत्ता ही मालूम पड़ता था। यही उ
कहावत का भी तात्पर्य है—'जब कुत्ता है तो पत्थर नहीं, जब पत्थर
तो कुत्ता नहीं। कुत्ता देखते हैं तो पत्थर का विचार नहीं उठता
पत्थर जान लेने पर कुत्ता विलीन हो जाता है। इस तरह इस कहाव
में इन सारे विचारों का समन्वय है। अनेकता देखने से एकता नहं
रहती। एकता देखने से अनेकता नहीं रहती। ईश्वर साक्षात्कार रे
जगत नहीं रहता। जगत में खो जाने से ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता।

यह विचार तामिल साहित्य के बहुत से दोहों में बहुत ही कलात्मक
रूप से व्यक्त किया गया है। एक कहता है– हाथी ने जगल पर पर्दा डाल
दिया और जंगल में हाथी अदृश्य हो गया।' यह आश्चर्य मालूम पड़ता
है। उदाहरण देखिये—एक बच्चे के हाथ में आम की लकड़ी का बना
हुआ हाथी है जिसे उसने अपने माता पिता से भेंट के रूप में प्राप्त
किया। बरामदे में एक बढ़ई काम कर रहा है। बच्चा उसके पास
दौड़कर जाता है और अपना हाथी दिखाता है—"देखो, इसके पैर कितने
बड़े हैं, इसके कान सूप जैसे हैं, इसके दांत तुम्हारी छाती को चीर देंगे।"
बच्चा उसके साथ ऐसा खेलता है मानों वह सचमुच में हाथी ही हो। बढ़ई
इस खिलौने को लेकर उसकी जांच करता है। "ऐ बच्चे! यह अच्छा
नहीं है।" 'क्यों मेरा हाथी है यह?" हां, परन्तु यह आम की लकड़ी का
बना है। यह शीघ्र ही बिगड़ जायगा। बढ़ई के लिए यह हाथी नहीं है
परन्तु लकड़ी का एक टुकड़ा है। सांसारिक व्यक्ति तथा संत की दृष्टि में
ऐसा ही अन्तर है। सांसारिक व्यक्ति जगत को अनेकता से पूर्ण देखता
है, वह सुख दुख का मिश्रण पाता है तथा इसे विषयों का भण्डार
समझता है। साधु उस गुप्त सत्ता को देखता है जिससे जगत व्याप्त है,
यह जगत उसके लिए सच्चिदानन्द ब्रह्म का आभास है।

(2) दूसरी कहावत लीजिये। हिन्दी में उसका अनुवाद है, "जब
'उरु' बंट जाता है तब नर्तकी के लिये सुविधा होती है। उरु का अर्थ
ग्राम लगाया जाता है। एक बार एक गांव में एक वड़ा जमींदार रहता

था जिसके अधीन सारा ग्राम था। एक नर्तकी दिन में उस जगह आती थी तथा नृत्य दिखा कर जमींदार से काफी भेंट प्राप्त करती थी। जमींदार मर गया तथा उसके दो पुत्रों ने उसकी सम्पत्ति प्राप्त की। उन दो पुत्रों में ग्राम का बंटवारा हो गया। दोनों ने अलग अलग घर बनवाये। वह नर्तकी पुन: आई और जमींदार की सम्पत्ति को दो भाइयों में विभक्त देखा। वह एक भाई के पास गई तथा उसने अपनी कला का प्रदर्शन किया। उससे उसने काफी पारितोषिक प्राप्त किया। वह दूसरे भाई के पास गई। उसने भी उसे काफी उपहार दिये। अभिमानवश दूसरे भाई ने पहले भाई से अधिक मूल्य की वस्तुए भेंट की। वह नर्तकी पहले एक ही जमींदार से भेंट पाती थी, अब दो भाइयों से भेंट मिलने लगी। साथ ही उसे अधिक परिमाण में वस्तुएं प्राप्त होने लगी। इस कहावत का साधारणत: यही अर्थ लगाया जाता है।

इस कहावत से यही शिक्षा ली जाती है कि परिवार में विभाजन नहीं होना चाहिये, नहीं तो तीसरा व्यक्ति उन दोनों का सर्वनाश कर डालेगा। परन्तु यदि हम सच्चे अर्थ को जान लें तो इन विपरीत अर्थों के प्रति हमें हंसी आयेगी।

उरु शब्द का गलत अर्थ ग्राम से लगाया जाता है। इस गलत अर्थ के कारण ही यह सारी कहानी गढ़ी गई। उरु शब्द संस्कृत से लिया गया है जिसका अर्थ है जंघा।

संभवत: आप उर्वशी के जन्म की कहानी जानते होंगे। भगवान नारायण कई वर्षों से हिमालय में तपस्या कर रहे थे। इन्द्र ने नारायण की तपस्या में विघ्न डालना चाहा। भगवान नारायण को मोहित करने के लिये बहुत सी अप्सरायें भेजी गईं। वे सभी नारायण के पास पहुँच कर अपने सम्मोहन जाल फैलाने लगीं। नारायण को पता लग गया। उन्होंने अपनी आंखें खोली और अप्सराओं को जी जान से प्रयत्न करते देखा। वे उनकी मूर्खता पर मुस्कराये और उनकी ओर देखते हुए उन्होंने अपनी दाहिनी जांघ पर हाथ से ताली लगाई। तुरन्त ही अप्सराओं की लावण्यमयी सेना निकल आई। इन अप्सराओं ने इन्द्र द्वारा प्रेषित देवताओं को मोहित कर लिया। वे सभी अपने कार्य भूल गये। इन्द्र ने बहुत प्रतीक्षा की। निराश होकर उसने विलम्ब का कारण जानने के

लिये कुछ दूत भेजे। वे दूत भी नारायण की दृष्टि से मोहित हो गये। इन्द्र को स्वयं आकर वस्तुस्थिति का ज्ञान करना पड़ा। यदि महर्षि की कृपा न होती तो स्वयं इन्द्र भी उन स्त्रियों की कामुक दृष्टि के शिकार बन जाते। अपनी कमजोरी जान कर इन्द्र नारायण के चरणों पर गिर गये तथा उन्होंने क्षमा याचना की। इस भय से कि कहीं उनके अपने देवगण नारायण की सृष्टि के सामने नगण्य न हो जायं इन्द्र ने भगवान से प्रार्थना की कि वे अपनी सृष्टि को स्वयं में समेट लें। ऋषि ने सभी स्त्रियों को खींच लिया। एक उर्वशी बच रही। इस उर्वशी को उन्होंने इन्द्र के साथ भेज दिया।

यही उरु का अर्थ है। कहावत का अर्थ इस प्रकार हुआ, जंघे अलग होने से नर्तकी को सुविधा मिली।

एक बार पार्वती ने शिव के साथ नृत्य प्रतिद्वन्द्विता की। भगवा शिव बहुत देर तक नाचते रहे परन्तु उनकी जीत न हो सकी। उन मस्तिष्क में एक अनोखी सूझ आई। वे एक पैर ऊपर उठा कर नाच लगे। कोई भी कुलीन स्त्री ऐसा नहीं कर सकती। अतः पार्वती पराजय स्वीकार कर ली। यह कहावत उस घटना की भी याद दिला है, 'यदि जांघें अलग न की जातीं तो नृत्य में विजय न मिलती।

(3) एक और बात है।

एक कहावत है जिसका साधारण अर्थ है, "श्मशान घाट तभी जा जाता है यदि मनुष्य की मृत्यु पहले हो चुकी हो।" यह तो निरर्थक मालूम पड़ता है। श्मशान घाट को जानने के लिये पहले मृत्यु प्राप्त कर की क्या आवश्यकता है? मरा हुआ व्यक्ति तो यह जानता ही नहीं उसे कहां ले जाया जा रहा है। अतः मृतक व्यक्ति के लिये श्मशान घ जानना तो असम्भव है।

परन्तु इस कहावत का अर्थ है। अब हम इसकी गहराई में प्रवे करें। श्मशानघाट से तात्पर्य है विनाश या जो जलता है। हम स जानते हैं कि मनुष्य में जो पहली वस्तु उठती है वह है 'अहंता'। उस बाद दूसरी वस्तु है 'ममता'। ममता अपने जाल फैलाकर 'अहं' उसमें बद्ध बना लेती है। इस मिथ्याभिमान को दूर किये बिना मनु

मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। तामिल सन्तों ने इसकी घोषणा की है, "हे मूर्ख, जब पहली वस्तु 'अहंता' मर जायगी और उसके बाद मन तब कहीं आप उस ज्ञान घाट को जान सकेंगे जहां अज्ञान का विनाश होता है।" कितना उन्नत विचार है यह। परन्तु विचारहीन व्यक्तियों के हाथ इसकी कितनी विकृति हो चुकी है।

आप सभी महान कहावतों के तात्पर्य समझें तथा उनका अपने नित्य जीवन में पालन करें।

ध्यान योग साधना

(क) ध्यानाभ्यास के लिये आवश्यक गुण :

अपने मन को ब्रह्म विचार से संतृप्त करने से पहले आपको दिव्य विचारों का पाचन करना होगा। पहले पाचन और तब संतृप्ति, तब अविलम्ब ही साक्षात्कार की प्राप्ति होगी। अतः इस त्रिक् को याद रखिये : पाचन-संतृप्ति-साक्षात्कार।

अधिक आत्म चिंतन, वासना-क्षय, इन्द्रिय-दमन तथा आन्तरिक जीवन के द्वारा आपको अपना आत्मबल मजबूत बनाना होगा। रविवार तथा छुट्टियों के दिन हर क्षण का सदुपयोग कीजिये।

यदि आपने बंगाल के रसगुल्ले का स्वाद एक माह तक लिया है तो रसगुल्ले के प्रति मानसिक आसक्ति हो जाती है। ठीक उसी तरह यदि आप संन्यासियों के साथ में रहेंगे, यदि आप योग, वेदान्त आदि पुस्तकों का स्वाध्याय करेंगे तो आपके मन में ईश्वर साक्षात्कार के लिये मानसिक आसक्ति होगी। केवल मानसिक आसक्ति ही आपको अधिक लाभ नहीं दे सकती। ज्वलंत वैराग्य, ज्वलंत मुमुक्षुत्व, आध्यात्मिक साधन की क्षमता, उग्र तथा सतत संलग्नता तथा निदिध्यासन की आवश्यकता है, तभी आत्मज्ञान सम्भव है।

सदाचार मय जीवन यापन करना ही ईश्वर साक्षात्कार के लिये पर्याप्त नहीं है। सतत् ध्यान परमावश्यक है। सदाचारमय जीवन

मन को धारणा तथा ध्यान लिये अनुकूल बना देता है। धारणा तथा ध्यान ही अन्ततः आत्म साक्षात्कार की ओर ले जाते हैं।

आप गीता में इन शब्दों को कई बार पायेंगे—"मन्मनः, मत्परः।" इनका अर्थ यह है कि आपको अपना सम्पूर्ण मन लगाना होगा—शत प्रतिशत। तभी आप आत्म साक्षात्कार प्राप्त करेंगे। यदि मन की एक वृत्ति भी विषयों की ओर दौड़ती हैं तो ईश्वर चैतन्य प्राप्त करना असम्भव है।

मन वासनाओं तथा संकल्पों से मलिन बना हुआ है। अतः जिस तरह गंदले पानी में फिटकरी डालकर उसे निर्मल बनाया जाता है, उसी तरह मलिन मन को भी ब्रह्म चिंतन से निर्मल बनाना होगा। तभी आप वास्तविक ज्ञान प्राप्त करेंगे।

फल प्राप्ति के लिये अधीर नहीं होना चाहिये। एक युवती लड़की ने सन्तान प्राप्ति की कामना से एक पीपल के वृक्ष की एक सौ आठ बार परिक्रमा की तथा वह अपने पेट पर हाथ रख कर अनुमान करने लगी कि बच्चा है या नहीं। यह निरी मूर्खता है। उसे कुछ महीनों तक प्रतीक्षा करनी चाहिये थी। उसी तरह यदि आप नित्य प्रति कुछ समय तक ध्यान करेंगे तो आपका मन परिपक्व हो जायगा तथा आप आत्म साक्षात्कार प्राप्त करेंगे। जल्दबाजी से हानि ही होती है।

उन्नत गृहस्थ साधकों को ध्यान में उन्नति कर लेने पर मुक्ति प्राप्ति के लिये सारे सांसारिक कार्य व्यापारों को बन्द करना पड़ेगा। यदि वे वास्तव में सच्चे हैं तो उन्हें स्वतः ही कर्म त्याग के लिये विवश होना पड़ेगा। उन्नत साधकों के लिये कर्म बाधा है। यही कारण है कि भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं, 'योग प्राप्ति के लिये कर्म को साधन कहते हैं, योगारूढ़ होजाने पर शम को साधना कहते हैं।' तब कर्म तथा ध्यान अम्ल तथा क्षार के समान प्रतिकूल हो जाते हैं।

आपको नित्य प्रति अपने वैराग्य, ध्यान तथा धैर्य संलग्नता, करुणा, प्रेम, क्षमा, शुद्धता आदि गुणों की वृद्धि करनी चाहिये। वैराग्य तथा सद्गुण ध्यान में सहायक होते हैं और ध्यान से सात्विक गुणों की वृद्धि होती है।

सर्व व्यापी ब्रह्म भावना रखिये। सीमित शरीर को आभास मात्र समझिये। सदा इस भावना को बनाये रखिये।

ध्यान करते समय आप आंखें बन्द क्यों करते हैं? आंखें खोलिये और ध्यान कीजिये। नगर के कोलाहल में भी अपने मन का सन्तुलन बनाये रखिये। तभी आप पूर्ण हैं। प्रारम्भ में मन के विक्षेप को दूर करने के लिये आप आंखें बन्द कर सकते हैं क्योंकि आप बहुत दुर्बल हैं। परन्तु बाद में टहलते समय भी आप ध्यान कर सकते हैं। गम्भीर विचार कीजिये कि यह जगत मिथ्या है। जगत है ही नहीं, आत्मा ही है। आँखें खोलकर भी यदि आप आत्मा पर ध्यान कर सकेंगे तो आप सबल हैं। तब आप जल्दी अशान्त न बनेंगे। आप तभी ध्यान कर सकेंगे जब आपका मन सारी चिन्ताओं से मुक्त हो।

ध्यान तथा धारणा में आपको अपने मन को विविध रूप से अनुशासित करना होगा। तभी स्थूल मन सूक्ष्म बन जायेगा।

जप तथा ध्यान करते समय क्रोध, द्वेष, घृणा, इत्यादि की सारी वृत्तियां सूक्ष्म रूप धारण करती हैं। वे तनु बन जाती हैं। समाधि के द्वारा उन्हें विनष्ट करना होगा तभी आप सुरक्षित हैं। प्रसुप्त वृत्तियां प्रकट होने के लिये अवसर की ताक में रहती हैं। आपको सदा सावधान तथा सतर्क रहना चाहिये।

नियमित ध्यान के द्वारा रजस, तमस् आदि विरोधी अधोगामी शक्तियों का दमन करना होगा। स्पष्ट तथा अनुशासित विचार के द्वारा मन के निरर्थक भ्रमण को बन्द कीजिये। मन की झूँठी आवाज को न सुनिये। आन्तरिक दृष्टि को ईश्वरीय केन्द्र की ओर मोड़ दीजिये। अपनी यात्रा में आपको बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ेंगी, परन्तु उनसे भयभीत न होइये। वीर बनिये। वीरता पूर्वक अग्रसर होते जाइये। अन्ततः आप नित्य सुख के केन्द्र में विश्राम करेंगे।

बड़े नगर में आठ बजे रात्रि में बड़ा कोलाहल रहता है। नौ बजे उतना कोलाहल नहीं रहता। दस बजे कोलाहल और भी कम हो जाता है। ग्यारह बजे और भी कम होजाता है। एक बजे सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य छा जाता है। उसी प्रकार योग साधन के प्रारम्भ में मन में

अनेकानेक वृत्तियाँ रहती हैं, मन में अधिक आवेग तथा विक्षेप रहते हैं। धीरे धीरे वृत्तियां विलीन होने लगती हैं। अन्ततः सारी वृत्तियों का निरोध हो जाता है। योगी परम शान्ति का अनुभव करता है।

बड़े नगर या शहर से गुजरते समय आप छोटी छोटी ध्वनियों को नहीं सुन सकेंगे। परन्तु प्रातः काल में साथियों के साथ सामूहिक ध्यान के लिये बैठते समय आप उन्हें पहचान सकते हैं। ध्यान के लिये बैठते समय यदि बुरे विचार घुसें तो घबड़ाइये नहीं। उग्र जप तथा ध्यान कीजिये। वे शीघ्र ही विलीन हो जायेंगे।

ध्यान करते समय इन्द्रियों के कारण उत्पन्न विचार तरंगों की अवहेलना कीजिये। सावधानी पूर्वक स्मरण, तुलनात्मक विचार आदि मन के कार्यों को दूर कीजिये। अपने मन की सारी शक्ति को ईश्वर अथवा आत्मा पर ही लगा दीजिये।

योग के साधक को अधिक धन नहीं रखना चाहिये क्योंकि इससे वह संसार के प्रलोभनों की ओर खिंच जायगा। शरीर की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये वह कुछ रुपया रख सकता है। आर्थिक स्वतन्त्रता होने से मन चिंता मुक्त रहेगा तथा साधक अबाध गति से साधना कर सकेगा।

(ख) ध्यानासनों की आवयकता :

मनुष्य को बैठकर ध्यान करना चाहिये क्योंकि सोकर अथवा खड़े खड़े ध्यान करना असम्भव है। मन की एक ही अवस्था को सतत बनाये रखना ध्यान है। अतः बैठ कर ही ध्यान करना सम्भव है। खड़े-खड़े, टहलते समय तथा दौड़ते समय मन की अवस्था एक समान नहीं रह सकती। लेट कर ध्यान करने से मनुष्य शीघ्र ही गहरी नींद के वशीभूत हो जायगा।

उपासना बैठकर ही करनी चाहिये। विचार की तैलधारावत् अविच्छिन्न धारा ही उपासना है। अतः बैठकर उपासना करना आवश्यक है।

उपासना में मनुष्य को अपने मन को एक ही वस्तु पर एकाग्र करना है। खड़े खड़े अथवा सोकर ऐसा नहीं कर सकते। खड़ा रहने पर मन

शरार का सन्तुलन सम्भालने में लग जाता है। अतः सूक्ष्म चिन्तन सम्भव नहीं है। बैठकर ध्यान करना आसान है ।

उपासना का अर्थ भी वही है जो ध्यान का है। एकाग्र दृष्टि द्वारा मन को एक ही वस्तु पर लगाना ही उपासना है। यह बैठकर ही सम्भव है।

कर्माङ्ग उपासना में कर्म विशेष के अनुसार बैठकर या खड़े होकर उपासना करनी पड़ती है। साक्षात्कार की अवस्था में उपासना अथवा ध्यान का प्रश्न नहीं उठता। कुछ लोग तर्क कर सकते हैं कि ध्यान तो मानसिक है अतः शरीर की अवस्था से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु ऐसा तर्क ठीक नहीं है।

ब्रह्म का स्मरण तो सदा करना ही चाहिये। स्मरण के लिये आसन की आवश्यकता नहीं। परन्तु गम्भीर ध्यान के लिये तो आसन परमावश्यक है। केवल स्मरण से ध्यान बहुत ही ऊँचा है। इसमें शंका की कोई बात नहीं। अतः ध्यान के लिये बैठने की आवश्यकता प्रमाणित हो गई।

विचार के प्रभाव को दीर्घ काल तक बनाये रखना ही ध्यान है। आप उस व्यक्ति को विचारशील कहते हैं जिसका मन किसी एक वस्तु पर एकाग्र है तथा जिसके अग हिलते नहीं। आप कह सकते हैं कि राम-कृष्ण विचारशील हैं। विचारशीलता उन्हीं के लिये आसान है जो बैठते हैं। स्त्री बैठकर सुदूर यात्रा में गये हुए पति का चिन्तन करती है। अतः आप इससे भी यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ध्यान के लिये बैठना आवश्यक है।

किसी एक विषय का सतत चिंतन ही ध्यान है जिसमें चिन्तनीय विषय से असम्बन्धित विचारों का प्रवेश न हो। ऐसा ध्यान बैठने की अवस्था में ही सम्भव है न कि लेटने या खड़े होने की अवस्था में, क्योंकि जब आप बैठकर ध्यान करते हैं तो मन के विक्षेप में न्यूनता आती है। अतः प्रार्थना एवं ध्यान इन दोनों के लिये बैठने की अवस्था का ही उपयोग करना चाहिये।

पृथ्वी को ध्यानस्थ कहा जाता है क्योंकि यह स्थिर है। इससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि ध्यान तभी सम्भव है जब मनुष्य बैठा हुआ हो, न कि जब खड़ा अथवा चल रहा हो। ध्यान के साथ स्थिरता रहती है। शरीर तथा मन की स्थिरता बैठकर ही सम्भव है।

उपर्युक्त कारणों से योग शास्त्र ध्यान के लिये पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि विभिन्न आसनों की शिक्षा देता है।

(ग) सगुण ध्यान साधना :

किसी वस्तु या रूप पर ध्यान करना सगुण ध्यान है। भक्ति-प्रधान मनुष्य के लिये ध्यान का यह स्थूलरूप है। यह ईश्वर का गुणों के साथ ध्यान है। शिव, विष्णु, कृष्ण या राम—अपनी प्रवृत्ति अथवा रुचि के अनुसार किसी भी मूर्ति को चुन लीजिये। तीरन्दाज पहले स्थूल तथा बड़े पदार्थों की ओर निशाने का अभ्यास करता है। उसी प्रकार मनुष्य को पहले सगुण ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। जब मन नियन्त्रित तथा अनुशासित हो जाय तो निराकार ध्यान की प्राप्ति स्वतः हो जायगी।

पद्म, सिद्ध, या सुखासन में बैठ जाइये। सिर, गर्दन तथा रीढ़ को एक ही सीध में रखिये। अपने सामने इष्टदेव का चित्र रख दीजिये, उदाहरणार्थ भगवान हरि का फोटो रखिये। कुछ समय तक टकटकी लगाकर देखिये। आंखें बन्द कर लीजिये तथा उस रूप का मानसिक चित्रण कीजिये। उसे दोनों भौंहों के बीच या हृदय में या नासिकाग्र पर या इच्छानुसार किसी भी केन्द्र पर चित्रण कीजिये। मानसिक चित्रण करते समय मन को देवता के विभिन्न अंगों पर घुमाइये। पहले चरण को देखिये तब निम्नांकित क्रम से उनके पांव, रेशमी पीताम्बर, गले में मुक्ताजटित स्वर्ण माल, मुखारविंद, सिर का मुकुट, ऊपरी दायें हाथ में चक्र तथा बायें हाथ में शंख, निचले दायें हाथ में गदा तथा बायें हाथ में पद्म। उसी प्रक्रिया के अनुसार पुनः चरणों में चले आइये। इस क्रिया को बारम्बार दुहराइये। अन्ततः चरणों में या चेहरे पर मन को एकाग्र कर दीजिये।

जब रूप विलीन होने लगे अथवा चलायमान हो तो आंखें पुनः खोल लीजिये तथा स्थिरता पूर्वक पुनः चित्र को देखिये। इस क्रिया का

अभ्यास तब तक कीजिये जब तक आप बिना चित्र की सहायता के ही ध्यान न करने लगें। ध्यान करते समय भगवान हरि के इष्ट मंत्र ॐ नमो नारायणाय' का मानसिक जप कीजिये। सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, शुद्धता करुणा आदि भगवान के विशेषणों पर विचार कीजिये। यदि आप हृदय में अनाहत चक्र पर ध्यान करते हैं तो कल्पना कीजिये कि भगवान हरि ज्वाजल्यमान षोड़श दल पद्म पर बैठे अथवा खड़े हैं। उनका सारा रूप सूर्य की भांति विभासित है। मान लीजिये कि उनके ईश्वरीय गुण आपकी ओर प्रवाहित हो रहे हैं, आप शुद्ध बन गये हैं तथा सारे मलों से मुक्त हैं। आप अब दिव्य गुणों की मूर्ति बन गये हैं। इस प्रक्रिया से आपकी शीघ्र उन्नति होगी।

इसी प्रकार आप भगवान शिव अथवा राम अथवा कृष्ण के रूप पर ध्यान कर सकते हैं।

प्रातः सबेरे तीन से छः बजे तक ध्यान का अभ्यास कीजिये। ध्यानाभ्यास के लिये यह सर्वोत्तम समय है। आधी रात को भी आप ध्यान का अभ्यास कर सकते हैं। वातावरण बड़ा ही शान्त रहता है। उस समय किसी तरह की अशान्ति नहीं होगी मन स्वतः ही ध्यानावस्था को प्राप्त करता है। यह कोरे कागज की भांति रहता है। सोने से पहले भी आप ध्यान के लिये दूसरी बैठक कर सकते हैं।

यदि आपके ध्यान का कमरा अलग हो तो बड़ा ही अच्छा होगा। अपने कमरे को सदा साफ तथा शुद्ध बनाये रखिये। किसी को भी कमरे में प्रवेश न करने दीजिये। देवता के समीप घृत प्रदीप अथवा मोमबत्ती जलाइये। इससे मन और भी ध्यानस्थ बन सकेगा, आपको अच्छी धारणा लगेगी। सम्भव हो तो स्नान कर लीजिये अथवा कम से कम हाथ पैर ही धो लीजिये। तब ध्यान के लिये बैठिये। मन को सदा शुद्ध, शान्त तथा स्तब्ध बनाये रखिये। पवित्र दिव्य विचारों को ही प्रश्रय दीजिये।

मन को सारे विषय चिंतनों से दूर रखिये। सारे संकल्प विकल्प से दूर रहिये। अपने मन को लक्ष्य पर ही एकाग्र कर डालिये। मन की अन्य सारी प्रक्रियाओं को बन्द कर डालिये। अब सम्पूर्ण मन एक ही विचार से परिप्लावित हो जायेगा, निष्ठा की प्राप्ति होगी। किसी

विचार या कार्य की पुनरावृत्ति करते रहने से उसमें पूर्णता आती है। उसी प्रकार एक ही ध्यान की प्रक्रिया को दुहराते रहने से धारणा तथा अबाध ध्यान में पूर्णता मिलती है।

ध्यान करते समय आपके मन में बहुत प्रकार के विचार, सूक्ष्म संस्कार तथा भूतकाल के संस्मरण उठेंगे। उनसे आपके ध्यान में विघ्न पड़ेगा। स्थिर तथा संलग्न प्रयत्न से ही उनका दमन किया जा सकता है। बल प्रयोग कदापि न कीजिये। ऐसा करने से वे दुगुनी शक्ति से उभरेंगे। ध्यान के लिए बैठते समय मन को पूर्णतः शिथिल बना दीजिये। पूर्णतः शांत रहिये। बड़ी सावधानी पूर्वक अपने विचारों का निरीक्षण कीजिये। सावधान रहिये। अपने विचारों तथा उनकी लीला के मूक साक्षी बने रहिये। तब शनैः शनैः मन की विक्षिप्त किरणों को समेट लीजिये तथा उन्हें लक्ष्य पर एकाग्र कीजिये। जब कभी बुरे विचार उठें, तुरन्त ही अपने मन को ईश्वर के पवित्र गुणों की ओर मोड़ दीजिये तथा बुरे संस्कारों को पूर्णतः भूल जाइये।

यम नियम के पालन के बिना ही ध्यान का अभ्यास करना तो कमजोर नींव पर इमारत खड़ी करने के समान है। अतः नैतिक आचरण के द्वारा मानसिक अनुशासन परमावश्यक है। यम तथा नियम में पूर्णतः संस्थित हो जाइये। सुसंयमित नैतिक जीवन का यापन कीजिये। दिन में एक बार आहार तथा रात्रि में केवल फल तथा दूध का ही सेवन कीजिये। उससे मन और भी अधिक स्थिर रहेगा। पूर्ण शम, दिव्य गुणों का अर्जन, दिव्य विचारों का चिंतन, सात्विक आहार—इन सबों से आध्यात्मिक मार्ग में सफलता प्राप्त होगी।

(घ) निर्गुण ध्यान साधना :

निर्गुण ध्यान साधना अथवा वैदान्तिक साधना में दो बातें आवश्यक हैं। संकल्प बल तथा मनन। श्रवण के बाद मनन की बारी आती है, मनन के बाद निदिध्यासन-उग्र ध्यान की। निदिध्यासन के द्वारा साक्षात्कार अथवा अपरोक्ष साक्षात्कार की प्राप्ति होती है। जिस तरह जल की एक बूंद गर्म तवे पर पड़ कर तत्क्षण ही सूख जाती है उसी तरह मन तथा आभास चैतन्य ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं, चिन्मात्र

चैतन्य ही शेष रह जाता है। अतः इस साधन-चतुष्टय-श्रवण, मनन आदि के द्वारा आप निर्गुण साधना के लिये अनुकूल बन सकते हैं।

निर्गुण ध्यान में मन की अपनी चेतना नहीं रहती। वह सर्वव्यापक, निराकार, नाम रहित, विशेषण रहित, अविछिन्न, अव्यक्त, असीम चैतन्य मे एक बन जाता है। ध्याता तथा ध्येय, विचारक तथा विचार, अहम् तथा इदम् एक बन जाते हैं। निर्गुण ध्यान साधना का यह अन्तिम चरण है। ध्याता की दृष्टि से जगत विलीन हो जाता है तथा वह शुद्ध निर्गुण ब्रह्म में निवास करता है।

ऐसा देखा जाता है कि मनुष्य जब तक सगुण ध्यान में प्रगति प्राप्त नहीं करता तब तक वह निर्गुण ध्यान साधना में अधिक उन्नति नहीं कर सकता। जो व्यक्ति यम, नियम तथा साधना चतुष्टय में स्थित है, जो उग्र निष्काम्य सेवा के द्वारा कर्त्तापन तथा भोक्तापन का परित्याग कर सर्वव्यापक एकरस सत्ता का सर्वत्र दर्शन करता है, जिसने विवेक, वैराग्य तथा श्रवण-मनन के अभ्यास से मन का पूर्ण समाधान प्राप्त कर लिया है—वही इस निर्गुण ध्यान साधना को कर सकता है तथा अन्य साधनों की अपेक्षा अल्पसमय में ही परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

साधना का अभ्यास छः प्रकार से किया जाता है—(1) नेति-नेति विधि, (2) साक्षी विधि, (3) अन्वय व्यतिरेक विधि, (4) भाग-त्याग लक्षणा विधि, (5) लय-चिन्तन विधि तथा (6) भावना के साथ ॐ पर ध्यान की विधि।

यहां मैं एक-एक कर उनका संक्षिप्त वर्णन दे रहा हूं—

(1) नेति-नेति साधना—नेति-नेति का अर्थ है यह नहीं, यह नहीं। यह निषेधात्मक विधि है। उपनिषदों की घोषणा है कि यह शरीर आत्मा या ब्रह्म नहीं है, यह प्राण आत्मा या ब्रह्म नहीं है, यह मन आत्मा नहीं है, यह बुद्धि आत्मा नहीं है, यह आनन्दमय कोष आत्मा नहीं है। इन मिथ्या, भ्रामक उपाधियों के निषेध के अनन्तर जो बचा रहता है वही शुद्ध व्यापक सच्चिदानन्द आत्मा है! आप वास्तव में वही आत्मा हैं। यही निषेधात्मक विधि है।

(2) साक्षी विधि—आपको अपनी वृत्तियों का अन्तर्निरीक्षण करना होगा। आप अपने को मन की वृत्तियों से अलग करें। उनके साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित न करें, इन वृत्तियों से प्रभावित न होकर साक्षी बनें रहें। 'ॐ मैं साक्षी हूँ, ॐ साक्षी अहम्' इसका सदा मानसिक जप करें। सतत् जप तथा भाव के द्वारा अन्तर में यह भावना जम जानी चाहिये। आप अन्ततः देह के ऊपर उठ जायेंगे। जीव-भावना पूर्णतः लुप्त हो जायगी। काम करते हुए भी सारे कार्यों के साक्षी बने रहिये। वास्तव में मन तथा इन्द्रिय ही कार्य करते हैं। आप तो साक्षी मात्र हैं। आप सदा इस भावना को बनाये रखें। गीता के पांचवे अध्याय के आठवें श्लोक को सदा याद रखें—'समत्व बुद्धि-प्राप्त व्यक्ति, जिसने तत्व का ज्ञान कर लिया है इस प्रकार सदा विचारशील रहता है। देखते हुए, सुनते हुए, छूते हुए, सूंघते हुए, खाते हुए, घूमते हुए, सोते हुए तथा श्वास लेते हुए मैं कुछ भी नहीं करता। इन्द्रियां इन्द्रियों के विषय में वर्तती हैं।

(3) अन्वय व्यतिरेक विधि—हर वस्तु के पांच भाग हैं—नाम, रूप, अस्ति भाति तथा प्रिय। नाम तथा रूप मिथ्या हैं। वे माया के हैं। अस्ति, भाति तथा प्रिय का अर्थ सच्चिदानन्द है। नाम तथा रूप भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु अस्ति, भांति तथा प्रिय सबों में एक हैं। वे आत्मा के विशेषण हैं। नाम तथा रूप व्यतिरेक है। अस्ति भाति तथा प्रिय अन्वय हैं। अन्वय-व्यतिरेक विधि से आपको नाम रूप का निषेध कर सभी विषयों में गुप्त अस्ति, भाति तथा प्रिय को निकाल लेना होगा। यही साधन है जिससे निर्गुण ध्यान साधना की चरम अवस्था को प्राप्त करते हैं, जिसमें आप ब्रह्म के साथ तादात्म्म सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। सतत् विचार तथा ध्यान शक्ति के द्वारा नाम तथा रूप विलीन हो जायेंगे। अस्ति, भाति तथा प्रिय ही सर्वत्र विभाजित होंगे। सदा इसका अभ्यास कीजिये।

(4) भाग-त्याग लक्षणा विधि—इसका तत्वमसि महावाक्य से सम्बन्ध है। तत् तथा त्वम् के दो प्रकार के अर्थ हैं। प्रथम हैं वाच्यार्थ-तत् का वाच्यार्थ है ईश्वर व द्वितीय है लक्ष्यार्थ। तत् का लक्ष्यार्थ है ब्रह्म। त्वम् का वाच्यार्थ है जीव तथा लक्ष्यार्थ है कूटस्थ। आपको उपाधि, अविद्या, उसके धर्म तथा अविद्या में प्रतिबिम्बित चैतन्य को

न उठिये। इससे आपका संकल्प बल बढ़ेगा तथा आप सुगमता पूर्वक मन पर नियन्त्रण कर लेंगे।

दूसरी मुख्य बात यह है कि जब तक आपकी संख्या पूरी न हो जाय आपकी साधना में व्यतिरेक नहीं होनी चाहिये। सांसारिक विचारों का आना, योजना आदि बनाना ये व्यतिरेक हैं। यदि दो माला जप कर लेने के बाद कोई कमी आ जाय तो उस दो माला को अपनी संख्या में न गिनिये। आपको पुनः दस माला जप का आरम्भ करना होगा तथा दस माला तक जप करना होगा। यदि चार माला के बाद कोई विघ्न पड़ जाय तो उस चार माला को न गिनिये। पुनः दस माला जप कीजिये। यह अनुशासन कठोर तो है जरूर, परन्तु इस साधना का फल है आत्मा में नित्य सुख तथा अमृतत्व प्राप्त करना। यदि आपको परम लक्ष्य का साक्षात्कार करना है तो इसका अभ्यास कीजिये।

यदि स्कूल में कोई लड़का गलती करता है तो गुरु उसे कान पकड़ कर दस बार बैठक करने को कहते हैं। यदि चार बैठक के बाद ही वह क्रम को तोड़ता है तो पुनः उसे दस बार बैठक करने को कहते हैं। जप साधना करते समय आपको भी अपने मन को इसी तरह अनुशासित करना होगा। अपने मन को ढीला न छोड़िये। ढीला छोड़ने से फिर उसे अपने वश में लाना कठिन हो जायगा।

बन्द कमरे में आसन पर बैठते ही विचार कीजिये कि आप मानसिक संन्यासी हैं। आपको जगत अथवा परिवार के सदस्यों से कुछ भी नहीं करना है। सब कुछ भूल जाइये। यदि कोई व्यक्ति आपका दरवाजा खटखटाये तो अशांत न बनिये। दरवाजा न खोलिये। अपने परिवार के लोगों से यह कह दीजिये कि साधना की समाप्ति से पहले वे आपको तंग न करें।

कमरे से बाहर निकलने पर भी उसी सात्विक भाव को बनाये रखिये। मंत्र अथवा भगवन्नाम का सदा जप कीजिये। यदि कोई बाधा हो तो पुनः स्मरण जारी कीजिये। शनैः-शनैः जप सहज बन जायगा। आपका चित्त सदा नाम का जप करता रहेगा, मन भले ही भूल जाय।

व्यवहार काल में यदि आप सावधान नहीं हैं तो कमरे के अन्दर आपने जिन संस्कारों का निर्माण किया है वे सब नष्ट हो जायेंगे। आपको सावधान रहना चाहिये कि आप कैसी संगति रख रहे हैं। सांसारिक चर्चा, खानपान, वेश भूषा तथा जिन वस्तुओं को आप देखते एवं शब्दों को सुनते हैं उनके प्रति सावधान रहिये।

आपको अश्लील शब्द नहीं बोलने चाहिये। आपको सात्विक भोजन-वस्त्र ग्रहण करने चाहिये। अपने मन को सदा ईश्वर के रूप में लगाये रखना चाहिये। क्लबों में न जाइये। अखबार तथा उपन्यास न पढ़िये। उपन्यास, अखबार तथा सिनेमा ये बुरे संग हैं। ये सांसारिक विचार उत्पन्न करते तथा मन की शान्ति को भंग करते हैं। आपको इनसे कोई लाभ नहीं होता।

इस जगत में बहुत सी बाधायें तथा कठिनाइयाँ हैं। परन्तु यदि आपको अमृतत्व प्राप्त करना है तो आपको योग के नियमों का पालन करना होगा। यदि संकल्प है तो मार्ग भी दिखाई पड़ेगा। यदि आप में प्रबल मुमुक्षुत्व है तो अन्तर से बल मिलेगा। संसार में रहते हुए भी नियमों के पालन में आप समर्थ बन सकेंगे। पण्डित मदन मोहन मालवीय, गांधी जी तथा अन्य बहुत से लोगों ने ससार में ही उन्नति पाई। व्यर्थ बहाना न कीजिये। यह जगत आध्यात्मिक मार्ग में बाधा नहीं है। यह जगत आपका गुरु है। यह जगत प्रशिक्षण पाठशाला है। यह जगत विराट अथवा ईश्वर है।

अपनी छुट्टियों को ऋषिकेश जैसे एकान्त स्थान में बिताइये तथा उग्र साधना कीजिये। इस समय अकेले आइये और सन्यासी का जीवन व्यतीत कीजिये।

आप सभी जन्म मृत्यु के चक्र से विमुक्त बनें। आप सभी आन्तरिक आत्मा में रमण करें। वह आत्मा आनन्द सागर, सुख-निर्झर, ज्ञान-गंगा तथा नित्य-तृप्ति का अमर प्रवाह है।

(ख) जप साधना सम्बन्धी व्यावहारिक उपदेश :

आपको जप योग तथा नाम की महिमा के विषय में पूरा ज्ञान प्राप्त हो चुका है। आप इसी क्षण से वास्तविक साधना का समारम्भ

कर सकते हैं। आपकी दैनिक साधना के लिये बहुत से उपदेश नीचे दिये जा रहे हैं। कृपया उनका सावधानी पूर्वक पालन कीजिये :

(1) निश्चित समय--प्रातः सबेरे ब्रह्म मुहूर्त तथा सूर्यास्त का समय जप के लिये बहुत ही लाभदायक है, क्योंकि उन समयों में सत्व का प्राधान्य रहता है। जप में नियमितता बहुत ही आवश्यक है।

(2) निश्चित स्थान—एक ही स्थान में नियमित आसन लगाकर बैठना बहुत ही लाभकर है। अपने स्थान को बदलते न रहिये। जब आप वहाँ बैठेंगे तो स्वभावतः ही आपको जप करने की प्रवृत्ति हो जायगी। पुस्तकालय में प्रवेश करते ही आपकी मनोवृत्ति पुस्तक पढ़ने की ओर, मन्दिर में प्रवेश करते ही प्रार्थना करने की हो जाती है, उसी प्रकार अपने आसन पर बैठते ही आपको जप करने की मनोवृत्ति प्राप्त होगी।

(3) स्थिर आसन—सुखद आसन लगाने से मन भी स्थिर रहता हैं। यह रजस् को रोकता तथा एकाग्रता लाता है। जिसका आसन स्थिर नहीं हैं वह एकाग्रता नहीं प्राप्त कर सकता है। अपनी रीढ़ को सदा सीधी रखिये। यदि जप के लिये बैठते समय आप वृद्ध मनुष्य की तरह झुक जायेंगे तो आपका मन सदा घूमता तथा भटकता रहेगा। जप के पूरे समय तक स्थिर आसन में बैठे रहिये।

(4) उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुख रखिये— इसमें सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है तथा जप अधिक शक्तिशाली हो जाता है। जो उत्तर की ओर मुख करके जप करते हैं उन्हें हिमालय के ऋषिगण सहायता देते हैं।

(5) आसनी—मृगचर्म अथवा कुश की चटाई अथवा कम्बल को आसनी के रूप में रख सकते हैं। गीता कहती है : चैलाजिनकुशोत्तरम्। कुश, चटाई, मृगचर्म तथा सफेद वस्त्र क्रमशः एक के ऊपर दूसरा रखिये। उपयुक्त आसनी रहने से शक्ति का क्षय नहीं होता।

(6) प्रेरणात्मक प्रार्थना—स्रोतों अथवा प्रार्थना द्वारा इष्टदेवता का आह्वान करते हैं। इससे सात्विक भाव आता है। सारी आध्यात्मिक साधना में ईश्वरीय साधना पूर्वापेक्ष्य है। इसके विना आध्यात्मिक उन्नति संभव नहीं तथा उच्छृंखल मन को वश में करना असम्भव हो जाता है।

(7) स्पष्ट उच्चारण—जप करते समय मंत्र का स्पष्ट, ठीक ठीक उच्चारण कीजिये। यदि उच्चारण स्पष्ट है तो मंत्र शक्ति शीघ्र ही जाग्रत हो जायगी, मन समुन्नत होगा तथा उसमें एकाग्रता आवेगी।

(8) सावधानी—यह बहुत ही आवश्यक है। जप प्रारम्भ करते समय आपको सजग एवं सावधान रहना चाहिये। कुछ समय के बाद मन थक जाता है और आपके अनजाने ही घूमने लगता है तथा आप निद्रा के वशीभूत हो जाते है। इस अवस्था को दूर कीजिये। कुछ लोग जप ध्यान करते समय सो जाते हैं तथा समाधि-सुख की कल्पना कर बैठते हैं।

(9) जप-माला—माला रखने में सावधानी बनी रहती है तथा सतत जप करते रहने की प्रेरणा मिलती है। संकल्प लीजिये कि इतना माला जप करके ही उठूंगा। बिना माला के जप करने पर मन आपको धोखा देगा—आप समझेंगे कि बहुत देर तक जप किया।

(10) जप में विविधता—रुचि बनाये रखने, थकावट दूर करने तथा उदासी हटाने के लिये यह आवश्यक है। कुछ समय के लिये जोर से जप कीजिये। फिर गुनगुनाइये तब फिर मानसिक जप कीजिये। जब आपको जप का स्वाद मालुम हो जायगा तब जप सुखद तथा स्वाभाविक हो जायगा, तब जरा भी उदासी नहीं होगी। जप की विविधता तो प्रारम्भिक साधकों के लिये ही है। मानसिक जप सबसे अधिक शक्तिशाली है। यह मन की बुरी वृत्तियों को निष्क्रिय बनाता है तथा मन को शुद्ध बना देता हैं।

(11) ध्यान—जप के साथ साथ ऐसा ध्यान कीजिये कि भगवान आपके समक्ष हैं। तथा उनकी मनोहर मूर्ति का चित्रण कीजिये। इस अभ्यास से आपकी साधना को काफी शक्ति मिलेगी। मन ईश्वर के रूप में स्थिर हो जायगा तथा इन्द्रिय विषयों की ओर दौड़ने के लिये उसे मौका ही नहीं मिलेगा। ईश्वरीय सुख के समक्ष इन्द्रिय सुख तो तृणवत् हैं।

(12) विसर्जन तथा विश्राम—यह आवश्यक है। जप समाप्ति होने पर तुरन्त स्थान न छोड़िये तथा हर किसी से न मिलिये, न तो सांसा-

रामायण में पढ़ेगें कि किस तरह राम के चरण के स्पर्श से पत्थर की शिला भी अहिल्या के रूप में परिणत हो गई। राम के नाम को इतना मधुरता तथा भक्ति से जपिये कि पक्षीगण भी मुग्ध होकर सुनने लग जायें तथा वृक्ष के पत्ते भी उस दिव्य संगीत के प्रभाव से आपकी ओर झुक जायं।

संत कबीरदास ने अपने पुत्र कमाल को संत तुलसी दास जी के पास भेजा। तुलसीदास ने तुलसी पत्र पर राम नाम लिखकर उसके रस को पांच सौ कुष्ठ रोगियों पर छिड़क दिया। सभी रोगी अच्छे हो गये। कमाल बड़ा ही आश्चर्य चकित हुआ। तव कबीर ने कमाल को अन्धे सूरदास के पास भेजा। सूरदास ने नदी में वहते हुए एक शव को लाने के लिए कहा। सूरदास ने शव के कानमें केवल एक बार 'राम' कहा और वह जीवित हो उठा। कमाल का हृदय आश्चर्य चकित हो गया। ईश्वर के नाम में ऐसी ही शक्ति है। कबीरदास जी कहते हैं-'यदि कोई व्यक्ति स्वप्न में भी रामनाम जपता है तो मैं उसके नित्य व्यवहार के लिये अपने शरीर की खाल से निर्मित जूते प्रदान कर अपने को धन्य मानूं।'

ईश्वर के पवित्र नाम की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है? ईश्वर के नाम की महिमा कौन समझ सकता है? भगवान शिव की पत्नी पार्वती भी ईश्वर के नाम की महिमा का समुचित वर्णन करने में विफल रही। जब कोई व्यक्ति उनके नाम का गान करता है अथवा उसके गान का श्रवण करता है तो अनजाने ही वह आध्यात्मिक ऊंचाइयों को प्राप्त कर लेता है। वह अपनी देह चेतना को खो बैठता है। यह सुख में निमग्न हो जाता है। वह अमृत सुधा का छक कर पान करता है। वह ईश्वरीय उन्माद प्राप्त करता है। ईश्वर के नाम के जप से भक्त अपने भीतर तथा सर्वत्र ईश्वरीय महिमा तथा सत्ता का अनुभव करने लगता है। हरि का नाम कितना मधुर है। ईश्वर का नाम कितना मधुर है। ईश्वर का नाम कितना शक्तिशाली है जो उसके नाम का जप करता है उसको कितना आनन्द, बल तथा शान्ति प्राप्त होते है। वे लोग धन्य हैं जो ईश्वर के नाम का जप करते हैं क्योंकि वे भव चक्र से [illegible]त होकर अमृतत्व प्राप्त करेंगे।

आपको पता ही होगा कि गणिका (वेश्या) किस तरह तोते से [illegible]ाम सीखकर नाम की शक्ति द्वारा साध्वी स्त्री में परिणत हो गई।

उसने एक चोर से उस तोते को प्राप्त किया था। वह तोता "श्री राम, श्री राम" बोलने में दक्ष था। पिंगला रामनाम के बारे में कुछ भी न जानती थी। तोते के मुंह से उसने रामनाम सुना। यह बड़ा ही मोहक तथा आकर्षक था। पिंगला को बड़ा ही आकर्षण हुआ। उसने रामनाम पर अपना मन एकाग्र कर लिया तथा वह भाव समाधि में चली गई। रामनाम की शक्ति ऐसी ही है।

(घ) जप के लिए सूची :

संख्या	मंत्र		प्रति मिनट की गति	एक घण्टा में किये गये जप की संख्या	एक पुनश्चरण की पूर्ति के लिये छः घण्टा प्रतिदिन के हिसाब से समय				
					वर्ष	महिना	दिन	घण्टा	मिनट
1.	ॐ	(धीमा)	140	8400	—	—	—	11	54
		(मध्यम)	250	15000	—	—	—	6	40
		(ऊँचा)	400	24000	—	—	—	4	10
2.	हरि ॐ या श्रीराम	(धीमा)	120	7200	—	—	1	3	47
		(मध्यम)	200	12000	—	—	—	16	40
		(ऊँचा)	300	18000	—	—	—	11	7
3.	ॐ नमः शिवाय	(धीमा)	80	4800	—	—	17	2	10
		(मध्यम)	120	7200	—	—	11	3	30
		(ऊँचा)	150	9000	—	—	9	1	35
4.	ॐ नमो नारायणाय	(धीमा)	60	3600	—	1	7	0	15
		(मध्यम)	80	4800	—	—	27	4	45
		(ऊँचा)	120	7200	—	—	18	3	15
5.	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	(धीमा)	40	2400	—	2	23	2	0
		(मध्यम)	60	3600	—	1	25	3	30
		(ऊँचा)	90	5400	—	1	7	0	15
6.	गायत्री मंत्र	(धीमा)	6	360	3	0	16	0	45
		(मध्यम)	8	480	2	5	18	5	30
		(ऊँचा)	10	600	1	7	15	3	35
7.	महामंत्र या हरे राम मंत्र	(धीमा)	8	480	3	0	16	0	45
		(मध्यम)	10	600	2	5	8	5	30
		(ऊँचा)	15	900	1	7	17	3	35

गायत्री साधना

(क) गायत्री साधना का रहस्य :

आत्मा में ही हमारी शक्ति है। आत्मा का स्वरूप सर्वशक्तिमान है। आत्मा में अनन्त शक्ति है। उस शक्ति से सर्वप्रथम नाद की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर नाद से सारी सृष्टि की। सारी सृष्टि नाद से ही उत्पन्न है। वेद शब्द ब्रह्म है। वेदों के प्रत्येक मत्र में असीम शक्ति है। सच्चा साधक इसी मंत्र शक्ति पर अवलम्बित रहता है। यही उसकी शक्ति का रहस्य है। सभी मंत्रों में यह गायत्री मंत्र परम शक्तिमान् है।

हर सच्चे हिन्दू का यह जीवन तथा आधार ही है। यही नहीं हर सच्चे साधक के लिये, चाहे वह किसी जाति, वर्ण अथवा मत का क्यों न हो, जिसमें इस मंत्र की शक्ति तथा महिमा के प्रति विश्वास है, यह मंत्र जीवनाधार है। मनुष्य की श्रद्धा तथा हृदय की शुद्धता ही वास्तव में लाभ देने वाली है। गायत्री बहुत ही शक्तिशाली कवच है, जो साधक को सुरक्षित रख कर उसे ईश्वरत्व में परिणत करती तथा परम आध्यात्मिक ज्ञान को प्रदान करती है। चाहे जो भी आपका इष्टदेवता हो, आप यदि नित्य प्रति कुछ माला गायत्री मंत्र का जप कर ले तो आपका इस लोक तथा परलोक में कल्याण होगा।

यह धारणा गलत है कि यह मंत्र केवल ब्राह्मणों के लिये ही है। यह सार्वभौम है क्योंकि प्रकाश प्राप्ति के लिये यह प्रार्थना के रूप में है सर्वशक्तिमान से प्रार्थना की जाती है। यह सारी मानव जाति के लिये पथ प्रदर्शिका ज्योति है।

गायत्री की आप किसी भी रूप में पूजा अथवा उपासना कर सकते हैं। साधारणतः भक्तजन गायत्री को देवी बतलाते हैं जो पांच सिरों वाली है। यदि आप शाक्त हैं अथवा माता के उपासक हैं तो इस प्रकार आप ध्यान कर सकते हैं।

परन्तु वास्तव में गायत्री में मातृ-पहलू का कोई संकेत नहीं है। गायत्री में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो मातृ-पहलू के विषय से तात्पर्य रखता हो। केवल गायत्री शब्द ही इसके देवता को स्त्री नहीं बना

सकता। यह तो इस मंत्र के छंद का नाम है, देवता का नहीं। कुछ लोगों का कहना है कि गायत्री का अधिष्ठाता देव सूर्य है। वास्तव में इस विचार को भी परिष्कृत करने की आवश्यकता है। इसमें जिस सूर्य का वर्णन है वह आंखों के सामने का भौतिक सूर्य नहीं है। तत् सवितुः यह वह महान सूर्य है जो इस सूर्य अथवा चन्द्र से आलोकित नहीं होता तथा जो परब्रह्म है।

अतः यह सबसे महान मंत्र है तथा इसका अधिष्ठाता देव परब्रह्म ही है। यह सभी प्रकार के साधकों के लिए ग्राह्य है, चाहे वे देवी के उपासक हों या विष्णु के या सूर्य के अथवा निर्गुण ब्रह्म के।

गायत्री मंत्र का इतना महत्व है कि हर हिन्दू के लिए इसका दैनिक जप अनिवार्य बतलाया गया है। हर हिन्दू के लिए गायत्री मंत्र का दैनिक जप तथा अर्घ्य परमावश्यक है, चाहे उसका कुलदेवता अथवा इष्टदेवता कोई भी क्यों न हो। यदि आप इतर धर्म अथवा वर्ण के हैं तो भी आप गायत्री जप कर सकते हैं, उसके लिए सच्चाई तथा श्रद्धा होनी चाहिये। आपका जीवन धन्य हो जायगा। प्रिय साधक! इस महिमामय गायत्री की आश्चर्यजनक शक्ति का साक्षात्कार कीजिए। इस मंत्र में कितनी बहुमूल्य पैत्रिक सम्पत्ति है इसका साक्षात्कार कीजिए। पूर्व ऋषियों ने इस दिव्य शक्ति को आप लोगों के लिए रख छोड़ा है, उसकी अवहेलना न कीजिये। यही एकमेव सच्ची शक्ति है जिसके समक्ष विद्युत, रेडियो तरंग, न्यष्टि-शक्ति आदि नगण्य हैं। नित्य गायत्री जप का प्रारम्भ कीजिए तथा स्वयं ही इसकी अद्भुत शक्ति का अनुभव कीजिए। जप के लिए निश्चित समय रखिए और उसका पालन कीजिए। कम से कम एक माला का जप अखंड रूप से कीजिए। यह सभी आपत्तियों से आपकी रक्षा करेगा तथा आप असीम शक्ति से सम्पन्न होकर भी बाधाओं का अतिक्रमण कर सकेंगे। यह आपको शान्ति, सुख तथा शक्ति की पराकाष्ठा को ले जायगा।

(ख) गायत्री साधना का अभ्यास :

ब्रह्मा ने तीनों वेदों का दोहन कर उनमें से अ, ऊ तथा म् के सारतत्व को निकाला तथा उनके साथ ही तीन रहस्यमय शब्द बनाए-

भूः, भुवः तथा स्वः या पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग। सारे प्राणियों के परम पिता ने उन तीनों वेदों से तीन मात्राओं को निकाला जिनका प्रारम्भ 'तत्' से होता है तथा जिन्हें सावित्री या गायत्री कहते हैं। (मनुस्मृति अध्याय 3)

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

'हम ईश्वर तथा उसकी महिमा की उपासना करते हैं जिसने इस जगत को सृष्टि की है, जो पूजनीय है, जो सारे पापों तथा अज्ञान को दूर करने वाला है। वह हमारी बुद्धि को आलोकित करे।'

वह आलोक क्या है ? आप में देहात्म बुद्धि है, वैसी बुद्धि जो आपको शरीर के साथ सम्बन्धित रखती है तथा शरीर को ही आत्मा समझने के लिए आपको मोहित करती है। आप वेदों की मां गायत्री से प्रार्थना करते हैं कि वह आपको शुद्ध सात्विक बुद्धि प्रदान करे जिससे आप 'अहं ब्रह्मास्मि' के साक्षात्कार करने में समर्थ बन सकें। यह गायत्री का अद्वैतिक अर्थ है। योग के उन्नत साधक इस प्रकार अर्थ लगा सकते हैं—'मैं वह परम ज्योतियों की ज्योति हूं जो बुद्धि को आलोकित करती है।'

भगवान वेदों में कहते हैं, 'समानो मंत्रः'—एक मंत्र सबों के लिए समान हो। यह मंत्र गायत्री है। उपनिषदें चारों वेदों की सारांश हैं तथा तीन व्याहृतियों के साथ गायत्रो उपनिषदों की सारांश है। वही सच्चा ब्राह्मण है जो इस प्रकार गायत्री को जानता तथा समझता है। जिसे गायत्री का ज्ञान नहीं वह चारों वेदों में पारंगत होकर भी शूद्र ही है।

गायत्री वेदों की मां है तथा सारे पापों की विनाशक है। एकाक्षर ॐ ब्रह्म का प्रतीक है। गायत्री से बढ़कर इस जगत में कुछ भी अधिक शुद्धि कारक नहीं है। गायत्री के जप से वही फल मिलता है जो चारों वेदों तथा उनके अगों के पाठ से। यदि इस एक ही मंत्र का जप भाव पूर्वक शुद्ध अन्तःकरण से किया जाय तो इससे परम कल्याण की प्राप्ति होगी।

गायत्री तीन प्रकार के तापों को विनष्ट करती है। गायत्री चार प्रकार के पुरुषार्थ प्रदान करती है—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। यह अविद्या, काम तथा कर्म की ग्रन्थियों को नष्ट करती है। यह हृदय को शुद्ध बनाती है। अन्ततः गायत्री मनुष्य को मोक्ष प्रदान करती है।

गायत्री के जप से गायत्री का दर्शन प्राप्त होता है तथा अन्ततोगत्वा अद्वैतिक ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्त होता है। जो साधक गायत्री माता से आलोक की प्रार्थना करता है वही अब आनन्दोल्लास से गा उठता है— "मैं ही ज्योतियों की ज्योति हूँ जो बुद्धि को भी आलोकित करती है।"

मंत्र योग साधना

(क) मंत्र योग साधना का मनोविज्ञान :

मंत्र योग वास्तविक विज्ञान है। "मननात् त्रायते इति मंत्रः"— जिसके मनन के द्वारा जन्म मृत्यु के चक्र से त्राण मिलता है वही मंत्र है।

हर मंत्र के लिए एक ऋषि है जिसने उस मंत्र को संसार को प्रदान किया, साथ ही मात्रा, देवता, बीज—जो मंत्र को विशेष शक्ति प्रदान करता है, शक्ति तथा कीलक हैं।

मंत्र ईश्वर है। मंत्र तथा उसके अधिष्ठाता देव एक ही हैं। मंत्र स्वयं देवता है। मंत्र दैवी शक्ति है जो शब्द शरीर से प्रकट होती है। श्रद्धा, भक्ति तथा शुद्धता के साथ सतत् मंत्र का जप करने से साधक की शक्ति बढ़ती है, मंत्र चैतन्य का जागरण होता है तथा साधक को मंत्र सिद्धि मिलती है। उसे ज्ञान, मुक्ति शान्ति नित्य-सुख तथा अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

मंत्र के सतत् जप करने से साधक मंत्र के अधिष्ठाता देवता के गुणों तथा शक्तियों को प्राप्त करता है। सूर्य मंत्र के जप से स्वास्थ्य, दीर्घायु, वीर्य तथा तेज की प्राप्ति होती है। यह शरीर तथा चक्षु के सारे रोगों को दूर करता है। शत्रु कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते। प्रातःकाल आदित्य हृदय का पाठ करना बड़ा ही लाभकर है। अगस्त्य ऋषि द्वारा

प्रदत्त आदित्य हृदय का पाठ कर राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी।

मंत्रों में देवताओं की स्तुति अथवा करुणा या सहायता की याचना है। कुछ मंत्र बुरी आत्माओं को रोकते या अनुशासित करते हैं। शब्दों के लय पूर्ण स्पंदन से आकृतियों की उत्पत्ति होती है। मंत्रों के उच्चारण से उनके देवता विशेष की आकृतियाँ निर्मित होती हैं।

सरस्वती मंत्र—"ॐ श्री सरस्वत्यै नमः" के जप से आप ज्ञान तथा प्रखर बुद्धि प्राप्त करेंगे, आप प्रेरणा प्राप्त कर कवितायें करने लगेंगे। "ॐ श्री महालक्ष्म्यै नमः" के जप से आप सम्पत्ति प्राप्त करेंगे तथा निर्धनता का निवारण होगा। गणेश मंत्र किसी भी कार्य के सम्पादन में वाधा का निवारण करेगा। महामृत्युंजय मंत्र आकस्मिक घटना, असाध्य बोमारियों को दूर कर दीर्घायु तथा अमृतत्व प्रदान करेगा। यह मोक्ष मंत्र भी है।

सुव्रह्मण्य मंत्र—'ॐ श्री शरवणभवाय नमः' के जप से किसी भी कार्य में सफलता मिलेगी तथा आप यशस्वी बनेंगे। यह प्रेतात्माओं के वुरे प्रभावों को दूर भगायेगा। श्री हनुमान मंत्र—"ॐ श्री हनुमते नमः" से विजय तथा बल की प्राप्ति होगी। पंचदशाक्षर तथा षोडषाक्षर (श्री विद्या) के जप से धन, शक्ति, मुक्ति आदि की प्राप्ति होगी। आपकी सभी मनोकामनाओं को यह प्रदान करेगी। आपको गुरु द्वारा ही यह विद्या सीखनी होगी।

गायत्री या प्रणव (ॐ) या ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो नारायणाय; ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—इनमें से किसी भी मंत्र का सवा लाख जप भाव, श्रद्धा तथा भक्ति के साथ करने से आप मंत्र-सिद्धि प्राप्त करेंगे।

ॐ, सोऽहम्, शिवोऽहम्, अहं ब्रह्मास्वामी—ये मोक्ष मंत्र हैं। ये आपको आत्म साक्षात्कार में सहायता प्रदान करेंगे। ॐ श्री रामाय नमः, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—ये सगुण मंत्र है जो पहले सगुण साक्षात्कार प्रदान करेंगे तव अन्त में निर्गुण साक्षात्कार।

विच्छू तथा सर्प के दंश के निवारक मन्त्रों को ग्रहण के समय अपने से शीघ्र सिद्धि मिलेगी। जल में खड़े रहकर मन्त्र को जपिये। यह अधिक शक्तिशाली तथा प्रभावकारी है। मन्त्र सिद्धि की प्राप्ति के लिये इन मन्त्रों का जप किसी दिन भी किया जा सकता है।

विच्छू तथा सर्प आदि के दंश के निवारणार्थ मनुष्य चालीस दिनों में मन्त्र सिद्धि प्राप्त कर सकता है। श्रद्धा तथा भक्ति के साथ मन्त्र का नियमित जप कीजिये। स्नान के उपरान्त प्रातः जप के लिये बैठिये ब्रह्मचर्य का पालन कीजिये तथा चालीस दिनों तक दूध तथा फल का आहार अथवा संयमित आहार कीजिये।

मन्त्रों के द्वारा असाध्य बीमारियाँ भी दूर की जा सकती हैं। मन्त्र के जप से आध्यात्मिक तरंगों अथवा दिव्य स्पन्दनों का निर्माण होता है वे रोगी के स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों में प्रवेश कर कष्टों के मूल का निवारण करते हैं। वे जीव कोषों को सत्व से परिपूरित कर देते हैं वे रोग कीटाणुओं को विनष्ट करते तथा जीव कोषों को शक्ति प्रदान करते हैं। वे सर्वोत्तम कीटाणुनाशक हैं। वे अल्ट्रा आयलेट किरणों से भी अधिक शक्तिशाली हैं।

मंत्र सिद्धि को दूसरों के विनाश कार्य से दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। जो लोग मंत्र सिद्धि का दुरुपयोग करते हैं अन्ततः वे स्वयं विनष्ट हो जाते हैं।

जो लोग सर्पदंश, बिच्छूदंश तथा असाध्य बीमारियों के उपचार के लिये मंत्रशक्ति का उपयोग करते हैं उन्हें किसी प्रकार की भेंट या धन नहीं ग्रहण करना चाहिये। उन्हें पूर्णतः निष्काम होना चाहिये। उन्हें फल तथा वस्त्र भी स्वीकार नहीं करना चाहिये। यदि स्वार्थ के लिये अपनी सिद्धि का उपयोग करेंगे तो सिद्धि चली जायगी। यदि वे पूर्णतः निस्वार्थ हैं, यदि वे सर्वात्मभाव से मानवता की सेवा करते हैं तो ईश्वर की कृपा में उनकी शक्ति बढ़ती जायगी।

जिसे मन्त्र सिद्धि प्राप्त है वह सर्पदंश या विच्छूदंश या किसी भी असाध्य बीमारी को स्पर्श मात्र से दूर कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति को सर्प ने काट लिया है तो मंत्रसिद्ध के पास तार भेज देते हैं। वह मंत्र

सिद्ध मंत्र जपता है तथा सर्पदंश से ग्रस्त मनुष्य स्वस्थ हो जाता है। कितना आश्चर्य है यह ? क्या इससे मंत्र की असीम शक्ति सिद्ध नहीं हाती ?

अपने गुरु से मंत्र दीक्षा प्राप्ति कीजिये अथवा गुरु मिलने में कठिनाई हो तो अपने इष्ट देवता की प्रार्थना कीजिये और किसी विशेष मंत्र का जप प्रारम्भ कर दीजिये।

(ख) मंत्र पुरश्चरण की विधि :

शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति के लिये आध्यात्मिक संयमों तथा व्रतों का पालन करते हुए किसी मंत्र का निश्चित संख्या में जप करना पुरश्चरण कहलाता है। भौतिक उन्नति के लिये भी उसे किया जा सकता है। साधक को कुछ नियम पालन करने होंगे तथा आहार में कठिन संयम रखना होगा तभी मंत्र सिद्धि की प्राप्ति शीघ्र होगी।

पुरश्चरण काल में केवल ताजी सब्जी, फल, दूध, मूल, बार्ली तथा हविष्यान्न (घी, चीनी तथा दूध में पकाया हुआ चावल) ग्रहण करना चाहिये। शुद्ध भिक्षा पर भी साधक रह सकता है। यदि पुरश्चरण काल में आप दूध पर ही रहें तो यह अति श्लाघनीय है। एक लाख जप कर लेने से भी आप मंत्र सिद्धि प्राप्त कर लेंगे।

गंगा तट के किसी तीर्थ स्थान, नदियों के संगम, मनोरम दृश्य वाले पर्वतीय भाग, मन्दिर, तुलसी वाटिका, अश्वत्थ वृक्ष के नीचे किसी भी पवित्र स्थान में पुरश्चरण का प्रारम्भ कीजिये। अपने गृह के किसी भाग को मन्दिर में बदल डालिये। ईश्वर का चित्र रखिये, अगरबत्ती धूप जलाइये तथा अन्य सजावटों से शोभायमान रखिये। यहाँ भी आप साधना कर सकते हैं। पवित्र स्थानों में पुरश्चरण करने से गृह की अपेक्षा सोगुना लाभ होता है ।

आप किसी मंत्र को पुरश्चरण के लिये चुन सकते हैं। आपका गुरु मंत्र या इष्ट मंत्र ही सर्वोत्तम है। संध्याकाल, सूर्योदय, सूर्यास्त तथा मध्यान्ह ये जप के अनुकूल हैं। मंत्र में जितने अक्षर हैं उतने ही लाख बार मंत्र का जप कीजिये। आप उसकी संख्या का आधा भी कर सकते

हैं। परन्तु किसी भी हालत में जप की संख्या एक लाख से कम नहीं होनी चाहिये।

जप के समय पूर्व या उत्तर की ओर मुंह करके बैठिये। सिद्ध, पद्म, स्वस्तिक या वीरासन—किसी भी एक आसन में बैठ जाइये। पेट में भार रख कर कभी भी जप के लिये न बैठिये। जप के लिये निश्चित समय निर्धारित रखिये। प्रारम्भ करने से पहले स्नान कर लीजिये अथवा कम से कम हाथ पैर धो डालिये। आचमन (मंत्र द्वारा पवित्र जल का स्वल्प पान) कीजिये। जप करते समय मृगचर्म, वस्त्र, कम्वल, कुश-घास, व्याघ्र चर्म के आसनों का प्रयोग किया जा सकता है। जप की संख्या के लिये स्फटिक, तुलसी या रुद्राक्ष की माला का प्रयोग किया जा सकता है। एक सौ आठ, चौवन अथवा सत्ताईस दानों की माला रखिये।

मन को सारे सांसारिक विषयों से उपरत कर, मन्त्र के अर्थ में लीन होते हुए ईश्वर चिन्तन के साथ सम गति से मन्त्र का जप करना चाहिये मन्त्र के देवता तथा अर्थ के प्रति एकाग्रता रखने से शीघ्र मंत्र सिद्धि की प्राप्ति होती है। मन्त्र सिद्धि की प्राप्ति तक पुरश्चरण जारी रखिये। एक पुरश्चरण के वाद ही बन्द न कर दीजिये। मन के दोषों के कारण आप एक ही बार में मन्त्र सिद्धि नहीं पा सकते। सिद्धि प्राप्ति के लिये मधुसूदन सरस्वती को अट्ठारह बार गायत्री का पुरश्चरण करना पड़ा था।

कठोर बिछावन पर सोना (तकिये आदि का त्याग), ब्रह्मचर्य व्रत दिन में तीन बार देवता की उपासना, दिनमें तीन वार स्नान करना; तेल स्नान, मांस, मत्स्य, प्याज, लहसुन, चाय, काफी, मिर्च तथा इमली, का परित्याग, मौन व्रत या न्यूनातिन्यून संभाषण. अहिंसा, सत्यवादिता इनका पालन करते हुए पुरश्चरण करना चाहिये। जहां तक सम्भव हो सके पुरश्चरण के समय आलस्य, स्तब्धता, जप के समय थूकना, हाथ पांव को शिथिल करना, दिन में सोना, कुसंगति, स्त्रियों का सम्पर्क, उपहार ग्रहण करना, अश्लील चित्र देखना, झूठ वोलना, रागी व्यक्तियों का साथ, पान खाना, बीड़ी तथा शराब आदि का सेवन, अधिक वोलना, दूसरों की निन्दा, मन वचन कर्म से दूसरों को हानि पहुँचाना आदि से

बचिये। जप के समय अनावश्यक ही शरीर न हिलाइये, इधर उधर न देखिये, हंसी ठट्टा में शक्ति न गँवाइये।

प्रति दिन जप की एक ही गणना पूरी कीजिये। हर एक लाख जप के बाद अथवा पुरश्चरण की समाप्ति पर होम या हवन करना चाहिये।

पुरश्चरण पूरा हो जाने पर जप संख्या का दशांश होम कीजिये, होम का दशांश तर्पण कीजिये, तर्पण का दशांश मार्जन कीजिये तथा तर्पण का दशांश ब्राह्मण को भोजन दीजिये। यदि उपर्युक्त विधि का पालन न कर सकें तो यथाशक्ति भोजन तथा दान दीजिये।

मन्त्र पुरश्चरण के अनगिनत लाभ हैं। मन की प्रसन्नता, सन्तोष, सांसारिक सुखों की ओर वैराग्य, इष्टदेव का दर्शन, सभी कार्यों में सफलता, मन की शुद्धता इन सब कार्यों की प्राप्ति होगी। पुरश्चरण के लिये पूरी सच्चाई बरतिये।

मन्त्र पुरश्चरण के द्वारा आप मोक्ष प्राप्त करें।

(ग) लिखित जप लाभ :

व्यस्त मनुष्यों के लिये सुगम मार्ग।

लिखित जप से ज्ञान की प्राप्ति :

जप की विविध विधियों में लिखित जप बड़ा ही प्रभावशाली है। यह साधकों को धारणा के अभ्यास में सहायता देता है तथा शनैः शनैः ध्यान की ओर ले जाता है।

लाभ :

(1) धारणा : मन, जिह्वा, हाथ तथा आँख सभी मन्त्र में संलग्न रहते हैं, अतः विक्षेप का अभाव होता है। इससे धारणा शक्ति बढ़ती है तथा कार्य में दक्षता आती है।

(2) नियन्त्रण : मन्त्र शक्ति से मन का नियंत्रण होता है। मन आपके लिये अधिक सावधानीपूर्वक कार्य करेगा।

(3) प्रगति : बारम्बार मन्त्र जप से चित्त में सूक्ष्म आध्यात्मिक संस्कार वनते हैं जो आत्मोन्नति में सहायक हैं।

(4) शान्ति : चिन्ता के समय तथा दुखद परिस्थितियों में मन शान्त रहेगा।

(5) शक्ति : कालान्तर में जहाँ आप मन्त्र लिखते हैं वहां के वातावरण में प्रबल आध्यात्मिक शक्ति का निर्माण होता है। इससे भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में सहायता मिलती है।

उपसंहार :

आज ही प्रारम्भ कीजिये। विलम्ब न कीजिये। सच्चाई पूर्वक प्रयत्न कीजिये। अपने मन के मालिक बनिये, गुलाम न हों। नित्यप्रति एक से तीन पृष्ठ तक लिखिये। यदि शीघ्र फल चाहते हैं तो नियमों का यथा सम्भव पालन कीजिये।

(घ) लिखित जप के लिये नियम :

(1) किसी मंत्र का भगवन्नाम को चुन लीजिये। किसी नोटवुक में नित्यप्रति एक से तीन पृष्ठ तक स्याही से मन्त्र को लिखिये।

(2) एक स्थान में नित्य एक ही समय में बैठिये। यदि सम्भव हो तो उस स्थान को ताला कुन्जी से बन्द रखिये।

(3) स्नान के बाद या हाथ पैर तथा मुख धोकर लिखना शुरू कीजिये।

(4) एक ही आसन में सारे समय तक बैठे रहिये। जब तक पूरा न हो, हिलिये नहीं।

(5) मौन व्रत पालन कीजिये, बात-चीत, मिलना-जुलना तथा निमन्त्रण आदि से बचिये।

(6) पुस्तक पर आंखे स्थिर रखिये। जव तक पूरा न हो जाय हिलिये नहीं।

(7) लिखते समय नाम अथवा मन्त्र का मानसिक जप कीजिये।

(8) नाम अथवा मन्त्र लिखते समय मन को ईश्वर की मूर्ति अथवा उसके विशेषणों पर एकाग्र कीजिये।

(9) एक ही प्रकार की लेखन विधि का पालन कीजिये। ऊपर से नीचे या दांयें से बांयें लिखिये।

(10) एक बार में एक मन्त्र या नाम पूरा लिखिये, उसको विभाजित न कीजिये।

(11) मन्त्र अथवा नाम को बदलिये नहीं। एक को चुन लीजिये और आजीवन उसका पालन कीजिये।

(12) सारी लेख पुस्तकों को पूजा-स्थल में सुरक्षित रखिये।

संकीर्तन साधना

भाव, प्रेम तथा श्रद्धा के साथ ईश्वर के नाम का गान करना ही संकीर्तन है। संकीर्तन में लीन एकत्र होकर किसी सार्वजनिक स्थान में भगवान के नाम का गायन करते हैं। संकीर्तन नवधा भक्ति में एक है। आप एकमेव कीर्तन के द्वारा ईश्वर प्राप्त कर सकते हैं। कलियुग में ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त करने का यह सबसे सुगम मार्ग है। "कलौ केशवकीर्तनात्।"

जब बहुत से लोग एकत्र होकर कीर्तन करते हैं तो विशाल आध्यात्मिक शक्ति, महाशक्ति का निर्माण होता है। इससे साधकों का हृदय शुद्ध हो जाता है तथा वे भाव समाधि की ऊँचाइयों को प्राप्त कर लेते हैं। शक्तिशाली स्पन्दन सुदूर स्थानों को जाते हैं। वे सभी लोगों को मन की उन्नति, सान्त्वना तथा बल प्रदान करते हैं तथा शान्ति, समता एवं एकरसता के सन्देशवाहक हैं। वे विरोधी शक्तियों को नष्ट कर समस्त जगत के लिये शीघ्र ही शान्ति तथा सुख की स्थापना करते हैं। भगवान हरि नारद से कहते हैं:

"नाहं वसामि वैकुण्ठे योगीनाम् हृदये न च।

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।"

मैं न तो वैकुण्ठ में वास करता हूँ और न योगियों के हृदय में ही मेरे भक्त जहाँ मेरे नाम का गायन करते हैं वहीं मेरा निवास है।

कीर्तन से पाप वासना, तथा संस्कारों का विनाश होता है तब हृदय प्रेम तथा भक्ति से परिप्लावित हो जाता है। भक्त ईश्वर के दर्शन प्राप्त करता है।

अखड कीर्तन बहुत ही शक्तिशाली है। यह हृदय को शुद्ध बनाता है।

महामंत्र : हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।।

या ॐ नमः शिवाय का कीर्तन तीन घन्टे तक या चौबीस घन्टे तक या तीन दिन या एक सप्ताह तक अखण्ड किया जाता है। कई दल बारी-बारी से कीर्तन करते हैं। एक नेतृत्व करता है दूसरे उसका अनुगमन करते हैं। रविवार के दिन या छुट्टियों के दिन अखण्ड कीर्तन कीजिये। प्रातः गलियों में प्रभात फेरी कीर्तन कीजिये। प्रातः कीर्तन रात्रि कीर्तन से अधिक प्रभावशाली है।

रात्रि में अपने बच्चों तथा सारे परिवार एवं नौकरों के साथ भगवान के चित्र के सामने बैठिये। एक या दो घन्टे तक कीर्तन कीजिये। अभ्यास में नियमित रहिये। आप असीम शान्ति तथा बल प्राप्त करेंगे। अपने हृदय के अन्तस्थल से ईश्वर के नाम का गायन कीजिये। ईश्वर साक्षात्कार में विलम्ब बड़ा ही दुखद है। उसमें लीन हो जाइये। उसमें निवास कीजिये। उसी में स्थित हो जाइये।

आप सबों में शान्ति तथा समृद्धि का निवास हो।
'लोका समस्ता सुखिनो भवन्तु।'

तन्त्र योग साधना

तन्त्र साधना प्रबल सिद्धियों को प्रदान करती है। इसे सिद्ध तांत्रिक गुरु से सीखनी चाहिये। तांत्रिक साधक को शुद्धता श्रद्धा, भक्ति, गुरु के प्रति आत्मार्पण वैराग्य, नम्रता, साहस, विश्वप्रेम, सत्य, अपरिग्रह तथा सन्तोष से सम्पन्न होना चाहिये। साधक में इन गुणों के अभाव होने से शक्ति साधना का दुरुपयोग ही होगा।

हिन्दुओं की पुनर्जाग्रति में शक्तिवाद बहुत ही प्रभावकर रहा है। मूर्ख अज्ञानी तथा अनधिकारी व्यक्तियों द्वारा शक्तिवाद का बहुत ही दुरुपयोग हुआ है। इसमें कोई शक नहीं कि जादू, अनैतिकता तथा सम्मोहन शक्तियां शक्तिवाद के ही विकृत रूप है। पंच मकारों का सिद्धान्त सत्य के विपरीत अभिव्यक्ति का द्योतक है वे मकार है—मद्य, मांस, मत्स्य मुद्रा तथा मैथुन।

शाक्त मत के अनुसार शिव अव्यय नित्य चैतन्य है तथा शक्ति उसकी सक्रिय प्रकृति है। जगत शक्ति है। जगत देवी की महिमा का ही व्यक्तिकरण है। यही शक्ति मत का सिद्धान्त है। शक्ति ईश्वर का बल है। शाक्त वह है जिसके पास शक्ति है।

साधक तीन प्रकार के हैं--पशु, वीर तथा दिव्य। पशु साधक ही पंच मकारों का अभ्यास करते हैं। पंच मकारों का गूढ़ार्थ है—अहं को नष्ट कीजिये मांसगत प्रवृत्ति का दमन कीजिये, ईश्वरीय उन्माद की सुरा पीजिये तथा भगवान शिव के साथ एकता प्राप्त कीजिये। यह दिव्य साधकों की दिव्य साधना है। पशुवृत्ति का परित्याग कीजिये, दिव्य वृत्ति का अर्जन कीजिये।

जिस तरह बीज में फल, दूध में मक्खन, बालकपन में वीर्य छिपा रहता है उसी प्रकार मनुष्य में बहुत सी शक्तियां छिपी हुई है। यदि आप मन को शुद्ध बनाकर धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करें तो ये सारी शक्तियां प्रगट होंगी।

ध्येय वस्तु के साथ एकता अथवा अभेद स्थिति प्राप्त करना ही उपासना का परम फल है। ध्याता तथा ध्येय एक बन जाते हैं। उग्र उपासना के द्वारा देवी का भक्त देवी से एक बन जाता हैं।

शैव-साधना

साधकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है—सात्विक व्यक्ति आध्यात्मिक मनुष्य है। वह दिव्य गुणों से सम्पन्न है। उसका दिव्य भाव है। वह शान्त, शुद्ध, विरक्त, ज्ञानी, रागरहित, निरहंकार, कारुणिक, दयालु, धार्मिक तथा भक्त है। उसमें सत्व गुण का आधिक्य है।

तमोगुण अधिक होने पर उसमें पशुभाव रहता है। वह पशु अथवा जानवर है। वह अज्ञान, भ्रम, प्रमाद, आलस्य तथा मूढता आदि से मुक्त है।

रजोगुण अधिक होने पर मनुष्य वीर बनता है उसमें वीर भाव है।

दिव्य भाव सर्वोत्तम है। वीर को उसके बाद का स्थान है। पशु निकृष्ट है। मनुष्य इस जन्म में अथवा अन्य जन्म में पशु से वीर भाव को प्राप्त करता है। वीर भाव के द्वारा देवता भाव या दिव्य भाव का जागरण होता है।

तंत्र साधना में शैव साधना भी एक है। कुछ वीर साधक श्मशान घाट में इसका अभ्यास करते हैं। निर्भय जन ही इस तरह की साधना कर सकते हैं।

मनुष्य की लाश छाती के बल पर जमीन पर रख दी जाती है। साधक मृत शरीर की पीठ पर बैठ जाता है वह पीठ पर यंत्र बनाता है तथा उसकी उपासना करता है।

यह क्रिया सफल रही तो लाश का सिर घूम कर साधक से वर मांगने के लिए कहता है—चाहे वह मुक्ति की कामना करे या सांसारिक सम्पत्ति की।

मत मनुष्य के मुंह से देवी बोलती है।

क्रिया योग साधना

छ: क्रियायें हैं—धौति, बस्ति, नेति, न्यौली, त्राटक तथा कपाल भाति।

धौति—शौच दो प्रकार के होते हैं—आन्तरिक अथवा वाह्य। आन्तरिक शौच कई तरीके से किया जा सकता है। यहां पर एक प्रधान क्रिया का वर्णन दिया जा रहा है।

तीन इंच चौड़ा तथा पन्द्रह फीट लम्बा महिन कपड़े का एक टुकड़ा ले लीजिये। इसके किनारे अच्छी तरह सिले हुए होने चाहिये। किसी

भी किनारे पर धागे खुले हुए न होने चाहिए। इसे साबुन से धोकर सदा स्वच्छ रखिये। इसे गुनगुने पानी में डुबोइये। पानी को निचोड़ दीजिये। धीरे-धीरे एक छोर से उसे निगलिये। प्रथम दिन केवल एक फुट लम्बा वस्त्र निगलिये। तथा धीरे-धीरे उसे बाहर निकाल दीजिये। धीरे-धीरे अभ्यास के अनन्तर आप एक छोर को पकड़ कर सारे वस्त्र को पकड़ कर सारे वस्त्र को निगल सकते हैं। उसे कुछ मिनट तक पेट में रहने दीजिये, तब धीरे-धीरे उसे बाहर निकाल दीजिये। जल्दबाजी न कीजिये तथा बल पूर्वक वस्त्र को न निकालिये। क्रिया की समाप्ति होने पर एक प्याला दूध पी लीजिये। इससे गले को चिकनाहट मिलेगी। खाली पेट में ही इसे कीजिये। प्रातः का समय अच्छा है। चार-पांच दिनों में इस क्रिया को एक बार कर लेना पर्याप्त है। श्लेष्मा तथा कफ की प्रकृति वाले व्यक्ति के लिये यह बहुत ही लाभप्रद है। स्थिर तथा क्रमिक अभ्यास से गुल्म, मन्दाग्नि तथा पेट की अन्य बीमारियों का निराकरण होता है।

न्योली—आमाशय तथा आंत्र प्रदेश को सशक्त बनाने के लिए न्योली बहुत ही प्रभावशाली क्रिया है। न्योली के अभ्यास के लिए आपको उड्डीयन बंध का अभ्यास होना चाहिये।

पैरों को एक फुट अलग रख कर खड़े हो जाइये। अपने हाथों को जांघों पर रख दीजिये। थोड़ा आगे झुकिये। मुख से श्वास को बलपूर्वक बाहर निकालिये, फेफड़ों को पूर्णतः खाली कर दीजिये। पेडू की मांस पेशियों का आकुंचन कर पीछे पेट की ओर खींचिये। यह उड्डीयन बंध है। यह न्योली की प्रथम अवस्था है।

तब पेडू के मध्य भाग को ढीला कीजिये। सारी मांस पेशियां पेट के बीच सीधी लकीर बनायेंगे। इसे मध्यम न्योली कहते हैं। जितनी देर तक बन सके आराम पूर्वक इस स्थिति को बनाये रखिये। तब सभी मांस पेशियों को ढीला छोड़ते हुए मांस भीतर लीजिये। यह न्योली की द्वितीय अवस्था है।

कुछ अभ्यास के अनन्तर पेट के दाहिने भाग को सिकोड़िये त
वांये भाग को ढीला छोड़िये। सारी मांस पेशियाँ बांये भाग में
जायेंगी। इसे वाम न्योली कहते हैं। तब बांये भाग को सिकोड़िये त
दाहिने भाग को ढीला छोड़ दीजिये। यह दक्षिण न्योली है। इस भां
शनैः-शनैः अभ्यास के द्वारा आप समझ जायेंगे कि किस तरह बीच, ब
तथा दाहिने भाग की मांस पेशियों को सिकोड़ते हैं। कुछ दिनों तक
तरह अभ्यास कीजिये।

तब मांस पेशियों को केन्द्र में लाइये। धीरे-धीरे उन्हें वृत्ताकार
में बांई ओर ले जाइये और तदनन्तर दाहिनी ओर। दाहिने से बां
और बांये से दाहिने। इस क्रिया को कई बार कीजिये। वृत्ताकार गति
में आप मांस पेशियों को धीरे-धीरे घुमायें। अभ्यास होने पर आप इ
बहुत तीव्र गति से कर सकते हैं। यह न्योली की अन्तिम अवस्था है। य
मन्थन के समान प्रतीत होगी। उन्नत साधकों द्वारा इस क्रिया को दे
कर आप आश्चर्य में पड़ जायेंगे। ऐसा मालूम होगा कि फैक्टरी
इंजिन काम कर रहा है।

प्रारम्भ में साधकों को दक्षिण न्योली करते समय थोड़ा बांई ओ
मुड़ जाना सहायक सिद्ध होगा। वाम न्योली करते समय थोड़ा दाहिने
ओर झुकना होगा। मध्यम न्योली में सारी मांस पेशियों को बीच में
बाहर की ओर फेंकिये तथा दाहिने एवं बांये भाग को सिकोड़ रखिये।

न्योली क्रिया से ज़ीर्ण, कोष्ठबद्धता, मन्दाग्नि तथा पेट एवं आंत
की अन्य बीमारियां दूर हो जाती हैं। यकृत तथा प्लीहा शक्ति प्राप्त
करते हैं। पेट के सारे अंग सुचारू रूपेण काम करने लग जाते हैं।

त्राटक—किसी भी बिन्दु या वस्तु पर स्थिर निर्निमेष दृष्टि बनाये
रखना ही त्राटक है। धारणाशक्ति के विकास तथा मानसिक एकाग्रता के
लिए ही इसका अभ्यास करते हैं। सह भी के लिए लाभदायक है

पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जाइये। आप कुर्सी पर भी सीधे
बैठ सकते हैं। अपने इष्ट देवता या ॐ का चित्र या उजले कागज के
टुकड़े पर एक काले बिन्दु को सामने रख लें। आप चमकीले तारे अथवा
प्रदीप पर भी त्राटक कर सकते। नासिकाग्र तथा दोनों भौंहों के बीच

टकटकी लगाकर देखना त्राटक है किसी भी बिन्दु या चित्र की ओर टकटकी लगाकर देखना त्राटक है। आंखें बन्द कर लीजिये तथा उस वस्तु का मानसिक चित्रण कीजिये। दो मिनट के लिए इसका अभ्यास कीजिये और सावधानी पूर्वक त्राटक का समय बढ़ाइये।

त्राटक से नेत्र की दृष्टि बढ़ती है, नेत्र रोग दूर होते हैं। बहुतों ने त्राटक का कुछ अभ्यास कर लेने पर अपने चश्मे फेंक दिये हैं। इससे धारणा शक्ति का बहुत अंश में विकास होता है।

कपाल भाति—कपाल को साफ करने के लिये यह एक क्रिया है। इसमें कपाल चमकने लगता हैं।

पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जाइये। आंखें बन्द कर लीजिये। जल्दी जल्दी रेचक तथा पूरक कीजिये। इसका अभ्यास उग्रता पूर्वक करना चाहिये। आपको जोरों से पसीना आने लगेगा। इससे फेफड़ों का भी व्यायाम हो जाता है। कपाल भांति में जो पूर्ण कुशल हैं वे मस्त्रिका सुगमता पूर्वक कर सकेंगे। पेट की मांसपेशियों को सिकोड़ते ही बल पूर्वक रेचक करना चाहिये। एक बार में बीस रेचक कीजिये तथा धीरे-धीरे इस संख्या को एक सौ बीस तक बढ़ा ले लाइये। कपाल भाति में कुम्भक नहीं है। कपाल भाति फेफड़े तथा नासिका द्वारों को साफ करती है, श्वास नली से कफ को दूर करती है। अत: इससे दमा रोग में आराम मिलता है तथा कालान्तर में इस रोग का निवारण भी हो जाता है। रुधिर के मल बाहर आजाते हैं। रुधिर प्रणाली तथा श्वास प्रणाली को यथेष्ट मात्रा में बल प्राप्त होता है।

संगीत साधना

मनुष्य का जीवन विशुद्ध असीम सुख की प्राप्ति का सतत प्रयास है। धर्म ग्रन्थों ने इसे प्रमाणित किया है। सृष्टि के आदिकाल से ही साधु तथा सन्त जन इस बात की घोषणा करते चले आ रहे हैं कि परमानन्द की प्राप्ति मनुष्य अपनी आत्मा में ही कर सकता हैं। अत: आत्म साक्षात्कार अत्मबोध अथवा अपरोक्षानुभूति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। इससे ही हमारे सारे दुखों तथा क्लेशों का अन्त होगा। परन्तु किस तरह हम उसे प्राप्त कर सकते हैं।

आत्म चैतन्य समाधि अथवा अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति तभी होगी जब मन शुद्ध तथा सात्विक हो जाय। अहंकार के दमन से ही मन की शुद्धता मिल सकती है। अतः अहंता तथा ममता का परित्याग होना चाहिये। इन्द्रियों की शुद्धता तथा उनका नियन्त्रण भी इसमें सन्निहित है। जब तक कि मन सुसंस्कृत एवं नियन्त्रित नहीं होता तब तक इन्द्रियों का दमन सम्भव नहीं है। अतः यह जटिल चक्र है ऋषियों ने ठीक ही घोषणा की है : "मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो:"—मन ही मनुष्य के बन्धन तथा मोक्ष का कारण है।

इस दिशा में अनुभव पूर्ण खोजों से यह पता चला है कि प्राण तथा मन परस्परापेक्षी हैं। जब तक उनमें से एक अनियन्त्रित रहेगा तब तक दूसरा नियन्त्रित नहीं हो सकता। एक को नियन्त्रित कर लेने पर दूसरा स्वतः नियन्त्रित हो जाता है। उन्हें केवल नियन्त्रण में रखना ही पर्याप्त नहीं हैं। उन्हें जब तक विनष्ट न कर दिया जाय वासनायें हमें नहीं छोड़ेंगी। वासनाओं के क्षय के बिना चित्त नाश सम्भव नहीं है। चित्त नाश से ही तो ज्ञान की प्राप्ति होगी।

अतः हमारे सामने दो मार्ग हैं, विभिन्न यौगिक साधनों के द्वारा प्राण को नियन्त्रण में लाकर मन को वशीभूत करना पहला मार्ग है। दूसरा मार्ग मनोलय के द्वारा मन को नाश करना है। इससे उस वस्तु को खोज निकालते हैं जिसमें मन स्वभावतः ही प्रभावित होने लगता है तथा जिसमें वह विलीन हो जाता हैं। ऋषियों ने यह अनुभव किया कि मनोलय के द्वारा मनोनाश करना अधिक सुरक्षित मार्ग है।

ऋषियों ने यह खोज निकाला कि शब्द में मन को आकृष्ट तथा विलीन करने की शक्ति है।

अतः नादयोग के द्वारा मनोलय एवं मनोनाश प्राप्त कर आत्म साक्षात्कार प्राप्त करना सरल एवं सुगम समझा गया।

अनाहत चक्र से निसृत नाद का श्रवण करना तथा उस पर ध्यान करना ही नादानुसंधान है।

इस योग के लिये पूर्वापेक्ष्य वे ही हैं जो अन्य योगों के लिये हैं। नैतिक तथा सदाचार सम्बन्धी योग्यता प्राथमिक आवश्यकता है।

हठयोग तथा प्राणायाम भी आवश्यक है। इनसे धारणा तथा ध्यान के अभ्यास में सहायता मिलती है। अजपाजप अथवा श्वास के साथ सोऽहम् जप से आप सूक्ष्म नाद पर धारणा कर सकते हैं। इससे आप अनाहत नाद को प्राप्त कर सकते हैं।

इन नादों के दो रूप हैं—स्थूल तथा सूक्ष्म। आपको स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना होगा। यदि मन स्थूल शब्द की ओर हो जाय तो आप अशांत न होइये। इसे पहले स्थूल शब्दों में ही अभ्यस्त हो जाने दीजिए। तभी आप इसे सूक्ष्म नाद की ओर ले जा सकते हैं।

सदा ध्यान रखिए कि मनोलय लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य तो मनोनाश तथा आत्म साक्षात्कार ही है।

याद रखिए कि किसी विशेष ध्वनि से आसक्त नहीं होना चाहिये। मन को एक ध्वनि से दूसरी ध्वनि की ओर ले जाइये। इस भांति दसवीं तक ले जाइये। नाद योग का एक दूसरा भी प्रकार है। जिसके अनुयायी ध्वनि श्रवण की तीन भिन्न अवस्थाओं को बतलाते हैं।

पहली अवस्था वह है जब प्राण तथा अपान ब्रह्मरंध्र के निकट मिलते हैं। दूसरी अवस्था में वे ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करते हैं। तीसरी अवस्था वह है जब वे पूर्णतः प्रतिष्ठित हो जाते हैं। पहली अवस्था में समुद्र की गर्जन, ढोल की ध्वनि आदि सुनाई पड़ते हैं। द्वितीय अवस्था में मृदंग, शंख आदि की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। तृतीय अवस्था में किंकिणी, भ्रमर गुंजार, बांसुरी अथवा वीणा की ध्वनि सुनाई पड़ती है।

सातवीं ध्वनि (बंशी) के श्रवण करने पर मनुष्य गुप्त वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

नादोपासना के बहुत प्रकारों में संगीत बड़ा ही मनोरंजक तथा सुगम है। संगीत में ही श्रेय तथा प्रेय, जो अन्यत्र एक दूसरे के विरोधी हैं आ मिलते हैं। श्रेय वह है जो मनुष्य को आत्म साक्षात्कार की ओर ले जाता है। प्रेय वह है जो वर्तमान में ही प्रिय है। साधारण रूप से यह ज्ञात है कि जो श्रेय है वह प्रेय नहीं है और जो प्रेय है वह श्रेय नहीं,

परन्तु संगीत या संकीर्तन में श्रेय तथा प्रेय साथ ही मिलते हैं। संगीत कानों को प्रिय है। यह इन्द्रिय तथा मन के लिए बहुत ही सुखद, यहां तक कि इन्द्रिय तथा मन वशीभूत हो जाते हैं। संगीत आत्मा को उन्नत करता है तथा उसे प्रगट करता है। अत: संगीत को नादोपासना का सर्वोत्तम प्रकार माना गया है।

संगीतज्ञों में श्रेष्ठ, कवियों के सम्राट, संतों के आभूषण भक्त शिरोमणि श्री त्यागराज ने संगीत की दिव्य महिमा को प्रगट किया है। श्री त्यागराज के प्रेरणात्मक संगीत सारे भारत में गाये जाते हैं। उन संगीतों से प्रेरणा तथा मन की प्रसन्नता प्राप्त होती है। श्री त्यागराज की कवितायें भगवान राम की महिमा तथा आध्यात्मिक तत्व से सम्बन्धित हैं। उन्होंने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि संगीत केवल इन्द्रियों के लिए ही नहीं है वरन् आत्मा के लिए पोषक भी है।

त्यागराज अपनी कृति 'नादोपासाना' में कहते हैं—'शास्त्रकार त्रिमूर्तियों ने, धर्म के व्याख्याता महर्षियों ने तथा कला और विज्ञान के आचार्यों ने नादोपासना के द्वारा ही इतनी सफलता प्राप्त की। वे सभी नादोपासना–भाव, राग, ताल की कला में पारंगत थे।' इस सत्य को सदा याद रखिये कि हमारे सारे महान धर्म ग्रन्थ गीत तथा छन्दों में लिखे गये हैं। उनमें राग, ताल तथा स्वर हैं, विशेषकर सामवेद का संगीत तो अद्वितीय ही है। यही कारण है कि त्यागराज सारे ऋषियों को नदोपासक मानते हैं।

त्यागराज 'सगीत शास्त्र ज्ञानम्' में कहते हैं—'संगीत शास्त्र के ज्ञान से आप सारुप्य अवस्था प्राप्त कर सकते हैं।' क्यों ? क्योंकि 'सारे शब्द ॐ से ही निकलते हैं। ॐकार सारे वेदों, आगमों शास्त्रों तथा पुराणों का सारतत्व है। ॐकार आपके सारे दुखों को दूरकर नित्य सुख प्रदान करेगा।' वे अपनी घोषणा के साथ-साथ इस अनुभूति को रखते हैं, 'संगीत ने ही इस जगत में राम का रूप धारण किया है।' यही कारण है कि दूसरी कृति में उन्होंने लिखा है कि जो संगीत से भगवान की उपासना करता है वह सारूप्य मुक्ति प्राप्त करेगा क्योंकि संगीत ही भगवान है तथा इस पर ध्यान करने से नादोपासक नादस्वरूप या ईश्वर ही बन जाता है।

संगीत केवल स्नायु उत्तजन मात्र ही नहीं है। यह तो योग है। श्री त्यागराज अपनी 'श्री पप्रिय' में लिखते हैं—'सप्त स्वरों का संगीत उन महान तपस्वियों के लिए खजाना है जिन्होंने तापत्रय का शमन कर लिया है।'

वास्तव में त्यागराज तो ऐसा ही कहेंगे कि जो संगीत नहीं जानते उनके लिए मोक्ष असम्भव है। 'मोक्षमुगलद' में वे कहते हैं—"क्या उन लोगों के लिए मोक्ष है जिन्हें भक्ति संगीत का ज्ञान नहीं, जो इन सत्य को नहीं जानते कि सप्तस्वर प्रणव से निकलते हैं, प्रणव, प्राण तथा अग्नि के संयोग से उत्पन्न हैं और जिन्हें वीणा पसन्द तो है परन्तु शिव तत्व का ज्ञान नहीं।" यह ठीक है कि संगीत बड़ा ही प्रभाव पूर्ण साधन है, परन्तु त्यागराज इस बात पर बल देते हैं कि केवल शब्दों के उच्चारण मात्र से ही संगीत गाने वाले को मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। मनुष्य को संगीत के मूल तथा लक्ष्य को खोजना चाहिये।

इस सत्य का साक्षात्कार करने पर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। त्यागराज अपने 'राग सुधारस' में कहते हैं—"राग की सुधा का पान कीजिए तथा ज्ञान प्राप्त कीजिए। नादोपासना के द्वारा आप उन सिद्धियों को प्राप्त कर लेंगे जिनको योग-याग आदि से प्राप्त करते हैं। वे जीवन्मुक्त हैं जिन्हें इसका साक्षात्कार है कि संगीत आत्मा से उत्पन्न ॐकार ही है, जिसका शरीर नाद है—सप्तस्वरों से विभूषित यह संगीत हो सदाशिव है।" अतः साधक की शिव तत्व के साक्षात्कार के लिए प्रेरित किया जाता है।

श्री त्यागराज कहते हैं--हे प्रभु, तेरे ही दर्शन को लक्ष्य रखते हुए तेरे नामों का मधुर गायन तथा आनन्द में नर्त्तन क्या पर्याप्त नहीं है? क्या यह वही स्थिति नहीं है जिसके लिए ऋषिगण कामना करतें है? त्यागराज कहते हैं कि नादोपासना स्वयं ही साधक को अद्वैत साक्षात्कार प्रदान करती है। उसी संगीत में वे कहते हैं—"तुझमें मैं विश्व के दर्शन करता हूँ और अपनी स्वच्छ तथा आलोकित बुद्धि के साथ में स्वय को तुझमें ही विलीन करता हूँ।"

प्रार्थना के द्वारा साधना

ईश्वर के साथ योग प्राप्त करने का मनुष्य का प्रयास ही प्रार्थना है। प्रार्थना महती आध्यात्मिक शक्ति है। वह उतना ही ठोस सत्य है जितना कि गुरुत्वाकर्षण का बल।

प्रार्थना मन को उन्नत करती है। यह मन को शुद्धता से भर देती है। यह ईश्वर की स्तुति से सम्बन्धित है। मन को ईश्वर के साथ एकतान करती है। प्रार्थना उस धाम को पहुँचा सकती है जहां तर्क को जाने का साहस नहीं। प्रार्थना आपको आध्यामिक धाम को ले जा सकती है। यह भक्त को मृत्यु के भय से विमुक्त कर देती है। यह मनुष्य को ईश्वर के निकट लाती है तथा उसे अपने अमर सुखमय स्वरूप का साक्षात्कार कराती है।

प्रार्थना की शक्ति अवर्णनीय है। इसकी महिमा अमिट है। भक्तजन ही इसकी महिमा तथा उपयोगिता को समझ पाते हैं। आदर, श्रद्धा, निष्काम्य भाव तथा भक्ति के साथ प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना के विषय में तर्क न कीजिए। आप भ्रमित हो जायेंगे। आध्यात्मिक विषयों में तर्क की आवश्यकता नहीं। इस सीमित बुद्धि पर विश्वास न कीजिए। प्रार्थना की ज्योति से अपनी अविद्या-निशा को दूर कीजिए।

द्रोपदी ने हार्दिक प्रार्थना की। भगवान कृष्ण उसकी विपत्ति को दूर करने के लिए द्वारका से दौड़ पड़े। गजेन्द्र ने करुण प्रार्थना की। भगवान हरि सुदर्शन चक्र लेकर उसकी रक्षा के लिए दौड़ पड़े। प्रल्हाद की प्रार्थना ने उबलते तेल को ठण्डा बना डाला। मीरा की प्रार्थना ने कांटों की सेज को फूलों में बदल डाला, सर्प को पुष्प माला में परिणित कर दिया।

प्रार्थना करते समय आप असीम के साथ सम्बद्ध हो जाते हैं। आप हिरण्यगर्भ से शक्ति, बल तथा ज्योति प्राप्त करते हैं।

प्रार्थना के लिए अधिक विद्वत्ता अथवा वक्तृत्व कला की आवश्यकता नहीं। ईश्वर तो आपके हृदय की मांग करता है। निरक्षर

किन्तु शुद्ध हृदय के व्यक्ति के विनयपूर्ण टूटे-फूटे शब्द भी ईश्वर के लिए पर्याप्त हैं।

डाक्टरों द्वारा जिस रोग को असाध्य बतलाया जाता है प्रार्थना उसे भी चमत्कारी ढंग से दूर कर देती है। इस प्रकार की बहुत सी घटनायें हुई हैं। प्रार्थना के द्वारा रोग का उपचार बड़ा ही आश्चर्य का तथा रहस्यमय है।

जो नियमित प्रार्थना करता है उसने परम शान्ति एवं सुख के पथ को ग्रहण कर लिया है। जो प्रार्थना नहीं करता वह व्यर्थ ही जीता है।

प्रार्थना का महान प्रभाव है। मुझे इसके बहुत अनुभव हैं। यदि प्रार्थना आन्तरिक है, यदि वह आपके हृदय के अन्तस्थल से निःसृत होती है तो वह तत्क्षण ही ईश्वर के हृदय को द्रवित कर देती है।

सांसारिक उद्देश्यों अथवा विषयों के लिए प्रार्थना न कीजिये। ईश्वर की करुणा के लिये प्रार्थना कीजिये। "हे प्रभु, मैं सदा आपकी याद बनाये रखूं। मेरा मन आपके चरण कमल में लगा रहे। मेरी बुरी आदतों को दूर कीजिये।"

प्रार्थना शुभ आध्यात्मिक प्रवाहों का निर्माण करती है तथा मन की शान्ति लाती है। यदि आप नियमित प्रार्थना करें तो शनैः-शनैः आपका जीवन परिवर्तित हो जायगा। प्रार्थना स्वाभाविक बन जानी चाहिये। यदि प्रार्थना आपका स्वभाव बन जाय तो आप उसके बिना जीवित नहीं रह सकते।

प्रार्थना पर्वतों को चलायमान कर सकती है। प्रार्थना चमत्कार कर सकती है। अपने हृदय के अन्तरतम से एक बार तो प्रार्थना कीजिये—"हे प्रभु मैं तेरा हूँ। तेरा ही होकर रहूँगा। मुझ पर करुणा कर। मैं तेरा सेवक हूँ। क्षमा कर। पथ प्रदर्शन कर। रक्षा कर। प्रकाश दे। त्राहि माम्। प्रचोदयात्।" मन को सरल एवं भावपूर्ण बनाइये। अपने हृदय में भाव लाइये। प्रार्थना तुरन्त ही सुन ली जाती है। अपने दैनिक जीवन संग्राम में प्रार्थना कीजिये तथा इसके प्रभाव का अनुभव कीजिये आपमें प्रबल आस्तिक्य बुद्धि होनी चाहिये।

स्वार्थमयी कामनाओं को लेकर ईश्वर से प्रार्थना न कीजिये। कभी न कहिये "हे प्रभु हम धनी बन जायें। हमें संतति, पशु तथा सम्पत्ति दें। मेरे शत्रु विनष्ट हो जाय। मैं बहुत काल तक स्वर्ग सुख का उपभोग करूँ।" इस तरह कभी भी प्रार्थना न कीजिये। ईश्वर से व्यापार न कीजिये। ईश्वर आपकी आवश्यकताओं को जानता है। वह तो अन्तर्यामी है। वह समस्त संसार को भोजन वस्त्र प्रदान करता है। क्या वह कभी भी आपको भूल सकता है?

ईश्वर से विविध उपहारों को प्राप्त करने के लिए ईसाई जन तरह-तरह की प्रार्थना करते हैं, मुसलमान तथा अन्य धर्मावलम्बी भी नित्य-प्रति सूर्योदय, दोपहर, सूर्यास्त, सोने से पूर्व तथा भोजन से पूर्व प्रार्थना किया करते हैं। प्रार्थना योग का प्रथम महत्वपूर्ण अंग है। प्रारम्भिक आध्यात्मिक साधना प्रार्थना ही है।

प्रार्थना के द्वारा मन तथा शरीर के ऊपर लाभकर प्रभाव होते हैं उन्हें योगी अपना अन्तर्चक्षु से देख सकता है। निष्काम होकर सच्चाई के साथ ईश्वर की प्रार्थना कीजिये। आप भक्ति, शुद्धता, ज्योति तथा दिव्य ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्रातः सवेरे उठ जाइये। कुछ प्रार्थना कर लीजिये। आप प्रार्थना किसी भी तरह कर सकते हैं। शिशुवत् सरल बनिये। अपने हृदय के प्रकोष्ठों को खोल दीजिये। धूर्तता तथा चालाकी से दूर रहिये। आप सब कुछ प्राप्त करेंगे। सच्चे भक्तों की भक्ति की महिमा मालूम है। नारद मुनि अब भी प्रार्थना करते हैं। नामदेव ने प्रार्थना की तथा विट्ठल मूर्ति से निकल कर भोजन करने के लिए बैठ गये। एकनाथ ने प्रार्थना की तथा भगवान हरि ने चतुर्भुज रूप में उन्हें अपना दर्शन दिया। मीरा ने प्रार्थना की, भगवान कृष्ण ने दास के समान उसकी सेवा की। सुदामा जी ने प्रार्थना की, भगवान कृष्ण उनके ऋण के भुगतान के लिए निम्न जाति के व्यक्ति बन गये। अब अधिक आप क्या चाहते हैं? आन्तरिक प्रार्थना कीजिये। इसी क्षण से हार्दिक प्रार्थना कीजिये।

हर प्रातःकालीन निष्काम तथा सच्ची प्रार्थना से आप सभी अमृतत्व प्राप्त करें। प्रार्थना आपके जीवन का अंग बन जाय। प्रार्थना के द्वारा आपके अन्तर्चक्षु उन्मुक्त हों।

समन्वय योग की साधना

विद्वत्तापूर्ण तर्क तथा शब्द जाल से आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सकते। समन्वय योग की साधना द्वारा आपको हाथ, सिर तथा हृदय का सर्वांगीण विकास करना होगा। तभी आप पूर्णता प्राप्त कर सकेंगे।

'अहं ब्रह्मास्मि' अथवा 'शिवोऽहम्' का जप करना आसान है परन्तु उसका अनुभव करना बड़ा ही कठिन है। सभी प्राणियों से एकता स्थापित करना बड़ा ही कठिन है। अथक निष्काम सेवा, जप, कीर्तन तथा उपासना के द्वारा जब तक मन के मल दूर न हो जाय, समाधि की सम्भावना नहीं है। जप तथा उपासना के द्वारा मन का विक्षेप दूर होगा। मन के विक्षिप्त रहने पर आप ब्रह्म भावना कैसे कर सकते हैं ?

दत्तात्रेय तथा याज्ञवल्क्य जैसे महापुरुष ही वास्तव में वेदान्त साधना के अधिकारी हैं। जो देह चेतना से ऊपर उठ गये हैं। वे लोग ही अधिकारपूर्वक ऐसा कह सकते हैं—"जगत मिथ्या है। जगत है हो नहीं। यह जगत मृत मरीचिका है अथवा स्वप्न ही है।" आप सभी रोटी तथा दाल ही हैं। आप चौबीसों घण्टे अन्नमय कोश में ही रहते हैं। यदि चाय में चीनी कम हो या बिल्कुल न हो, दाल में नमक कम हो अथवा न हो तो आप अशान्त हो जाते हैं, आप भोजन नहीं करते। फिर शिवोऽहम् अथवा अहं ब्रह्मास्मि अथवा सोऽहम् का जप करना तो व्यर्थ ही है।

यम नियम के अभ्यास द्वारा पहले दृढ़ नींव का निर्माण कीजिये। अथक निष्काम सेवा तथा उपासना के द्वारा हृदय के शुद्ध हो जाने पर ही वेदान्त की इमारत खड़ी की जा सकती है। ईश्वर की कृपा द्वारा ही मन में अवस्थित सूक्ष्म वृत्तियों का विनाश सम्भव है। वैयक्तिक साधना

द्वारा आप करोड़ों जन्म में भी मन के मल को दूर नहीं कर सकते जि
व्यक्ति को भगवान अपने चरणों में लाना चाहता है, वह उसे पूर्ण तथ
मुक्त बना डालता है। यह कठोपनिषद की भी घोषणा है।

मनुष्य अद्वैत दर्शन पर कई घण्टों तक भाषण दे सकता है। ए
ही श्लोक की सैकड़ों प्रकार से व्याख्या कर सकता है, गीता के एक
श्लोक पर वह एक हफ्ता भाषण दे सकता है फिर भी उसमें रंचमात्र
भक्ति तथा वेदान्त साक्षात्कार नहीं हो सकता। यह सब शुष्क बौद्धि
व्यायाम के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। वेदान्त तो जीवन अनुभ
है। वेदान्ती को इसका विज्ञापन करने की आश्यकता नहीं कि व
अद्वैती है। वेदान्तिक एकता की मधुर सुरभि सदा उससे संचरित हो
रहेगी, कोई भी व्यक्ति इसका अनुभव कर सकता है।

मन्दिर में किसी मूर्ति के समक्ष नमन करने से वेदान्ती लज्जा
अनुभव करता है। वह सोचता है कि साष्टांग प्रणाम करने से उसव
वेदान्तिक अनुभव वाष्पवत् विलीन हो जायगा। विख्यात तामिल सा
अप्पर, सुन्दरर, सम्बन्धर आदि के जीवन को पढ़िये। उन्हें परम अद्वै
साक्षात्कार प्राप्त था। वे सर्वत्र भगवान शिव के दर्शन करते थे।
सभी शिव मंदिरों में जाकर साष्टांग दण्डवत् करते थे। वे शिवजी क
स्तुति करते थे। उन स्तुतियों का संग्रह पुस्तकों में अब भी प्राप्त है
साठ नायनार संतों ने केवल चारिगाड़ तथा किरियाढ़ का अभ्यास कि
तथा साक्षात्कार प्राप्त कर लिया। वे मंदिर के फर्श को साफ कर
फूलों का संग्रह करते, प्रभु के लिए माला बनाते तथा मंदिर में प्रदी
जलाते थे। वे निरक्षर थे परन्तु उन्हें परम साक्षात्कार प्राप्त था।
व्यावहारिक योगी थे। उनके हृदय भक्ति से संतुष्ट थे। वे कर्मयोग
मूर्तिमान स्वरूप थे। उन सबों ने समन्वय योग का अभ्यास किया था
मादिर की मूर्ति उनके लिए चैतन्य स्वरूप थी, वह प्रस्तर खण्ड मा
न थी।

चाय की आदत को भी दूर करना कितना कठिन है। यह आदत त
कुछ ही वर्षों से पड़ी हुई है। यदि एक दिन भी आप चाय न लें तो कब्ज
तथा सिरदर्द की शिकायत करने लगते हैं। आप काम करने में सम
नहीं होते। कितने दुर्बल आप बन गये हैं। फिर तो मन में गहरी पड़ी

हुई बुरी वृत्तियों का उन्मूलन करना कितना कठिन होगा? उन वृत्तियों ने पुनरावृत्ति के द्वारा कितना बल प्राप्त कर लिया है।

वेदांत का वक्ता बनना आसान है। यदि आप कुछ वर्षों तक पुस्तकालय में बैठकर अपने शब्दकोष तथा मुहावरे के ज्ञान को बढ़ा लें तथा कुछ संदर्भों को याद कर लें तो आप सुन्दर भाषण दे सकेंगे। परन्तु किसी दुर्गुण को दूर करना उतना आसान नहीं है। सच्चा साधक ही इस कठिनाई को समझ सकता है।

आंखें बन्द कर लीजिये तथा विचारिये अपने जीवन में कितने सत्कर्म किये हैं जिन्हें ईश्वर के लिये अर्पित किया जा सके तथा जो वास्तव में ईश्वर को प्रसन्न कर सके। हो सकता है कि आपने कोई भी निष्काम कर्म न किये हों। कर्मयोग के अभ्यास के लिये अधिक धन की आवश्यकता नहीं है। मानव जाति की सेवा के लिये सहमति पूर्ण हृदय की आवश्यकता है। यदि आप सड़क के किनारे किसी गरीब को पीड़ित देखें तो उसे अपनी पीठ पर बैठाकर अस्पताल में भर्ती करा दें। अपने पडौस के गरीब एवं बीमार व्यक्तियों की सेवा सुश्रुषा करें। अस्पताल जाकर प्रेमपूर्ण हृदय से रोगी व्यक्तियों की सेवा करें। उनके स्वास्थ्य के लिये प्रार्थना करें। उनके सामने गीता का पाठ करें। इस प्रकार के कार्यों से आपका हृदय शुद्ध हो जायेगा तथा आप सभी भूतों में एकता का अनुभव करने लगेंगे। तब आप गुलाब के साथ मुस्करायेंगे, वृक्षों, सरिताओं तथा पर्वतों के साथ बातें करेंगे। यदि निष्काम भाव से आप एक भी शुभ काम करें तो इससे आपका हृदय शुद्ध होगा तथा मन ईश्वर की ओर मुड़ेगा आप ईश्वरीय ज्योति तथा कृपा की प्राप्ति के अधिकारी वन जायेंगे।

हृदय के मलों को दूर किये बिना बन्द गृह में आंख बन्द कर पद्मासन लगाकर ध्यान करने से आप समाधि नहीं प्राप्त कर सकते। आप हवाई किले (मनोराज्य) वनाने लगेंगे अथवा आप तन्द्रिल या तूष्णीभूत अवस्था में रहेंगे। अज्ञ साधक इन अवस्थाओं को ही भ्रमवश समाधि मान वैठता है। वह भारी भूल है। यदि कोई व्यक्ति आध घन्टे के लिये भी गम्भीरतापूर्वक ध्यान करलें तो वह महान योगी हो जाय। वह हजारों में शक्ति, आनन्द तथा शान्ति का संचार करने लगेंगे।

सच्चा वेदान्ती जो सभी के साथ एकता का भान करता है अपने लिये एक प्याला दूध भी नहीं रख सकता। जो कुछ भी उसके पास है उसमें वह दूसरों को भी हिस्सा देगा। पहले वह इसका पता लगा लेगा कि किसी बीमार आदमी को दूध की जरुरत तो नहीं है। वह दौडता हुआ वहाँ जायेगा तथा तुरन्त उसे दूध देगा और ऐसी सेवा में सुख का अनुभव करेगा। आजकल रिटायर्ड (अवकाश प्राप्त) लोग गंगा के तट पर निवास करता है। ये वेदान्त की कुछ पुस्तक पढ़ लेते हैं तथा सोचते हैं कि अब जीवन्मुक्ति अवस्था प्राप्त हो गई है। वे अपने लिये सारा धन व्यय करते हैं और बाकी बचे हुए को अपने पुत्रों के पास भेज देते हैं। उनके हृदय का विकास नहीं हुआ हैं। वे दूसरों के लिये सहानुभूति नहीं रखते। आध्यात्मिक मार्ग में उन्हें रंच मात्र भी उन्नति नहीं हुई है क्योंकि उनमें हृदय की विशालता या उदार वृत्ति नहीं है। वे उसी अवस्था में रहते हैं जिस अवस्था में वे पन्द्रह वर्ष पूर्व थे। यह खेद की बात है। उन्हें एक वर्ष तक भिक्षा पर ही रहना चाहिये और अपनी सारी पेंशन (अनुवृत्ति) से गरीबों की सेवा करनी चाहिये। वे एक वर्ष में ही आत्म साक्षात्कार कर लेंगे। शीतकाल में दो मास तक उन्हें निर्धन की भांति भ्रमण करना चाहिये। वे नम्र कारुणिक तथा अधिक उदार बन जायेंगे। उनमें इच्छा शक्ति तथा सहनशीलता का विकास होगा। अपने भ्रमण काल में वे ईश्वरीय कृपा के रहस्यों को समझ पायेंगे। ईश्वर में उनकी श्रद्धा दृढ़ हो जायगी। वे भूख की ज्वाला तथा कँपकँपाती ठण्ड का अनुभव करेंगे। अब वे समझ सकेंगे कि गरीब लोगों को कितना दुख होता है वे गरीबों को कम्बल बांटेंगे तथा भूखों को अन्न देंगे क्योंकि उन्हे उनके दुखों का ज्ञान रहेगा।

आप अपना समय गँवा रहे हैं। आप अन्तर्निरीक्षण का अभ्यास नहीं करते। आप प्रातः उठते, चाय पीते तथा अपने वस्त्रों को बदल कर कार्यालय को चले जाते हैं। आप क्लबों में जाते, सायंकाल को गप्पे लगाते, ताश खेलते, सिनेमा जाते और आठ बजे प्रातः तक खर्राटे लगाते रहते हैं। इस प्रकार आपके जीवन का अपव्यय होता है। आप अथवा ध्यान का अभ्यास नहीं कर रहे हैं। आप नहीं जानते कि कौनसी वृत्ति आपको कष्ट दे रही है? कौनसा गुण किसी विशेष समय में प्रधानता को प्राप्त है? आप मनोविज्ञान के विषय में कुछ भी नहीं

जानते। आप ब्रह्म विचार आत्म चिन्तन अथवा ब्रह्म निष्ठा के बिषय में कुछ भी नहीं जानते। आप महात्माओं का सत्संग नहीं करते। आपके जीवन का कुछ भी कार्यक्रम नहीं है। रिटायर्ड होने के बाद भी आप राज्य में नौकरी कर लेते हैं क्योंकि आध्यात्मिक साधना में समय लगाने की कला आपको मालूम ही नहीं है। आपको मनन एवं विचार का ज्ञान ही नहीं है क्योंकि अपनी युवावस्था में आपने आध्यात्मिक अनुशासनों का पालन किया नहीं। आपने व्यर्थ ही जीवन बिताया है, केवल जेब तथा पेट भरने के लिये।

वेदान्तियों के लिये भी सकीर्तन बड़ा सहायक है। मन के थक जाने पर संकीर्तन उसमें नई स्फूर्ति तथा प्रेरणा भरेगा। संकीर्तन मन को आराम पहुँचाता, उसे उन्नत करता तथा ध्यान के लिये तैयार करता है। जब मन ध्यान करने से उचट जाय तो संकीर्तन उसे पुनः लक्ष्य पर लगा देगा। जो ध्यान का अभ्यास करते हैं वहीं इसे समझ सकते हैं।

क्या आप चौबीसों घण्टे ध्यान करते हैं? निश्चय ही नहीं? तब आप चौबीसों घण्टे किस तरह बिताने जा रहे हैं? ध्यान के नाम पर तामसिक न बन जाइये। जब मन भटकने लगे जब एकाग्रता का अभ्यास कठिन हो जाय तो कमरे के बाहर निकल आइये तथा कुछ उपयोगी सेवा में निरन्तर हो जाइये। सेवा करते समय भी ध्यान में प्रवाह को बनाये रखिये अथवा कुछ मानसिक जप कर लीजिये। ध्यान आपको प्रसन्न अन्तर्मुखी, चिन्तनशील, बलवान शांत स्फूर्तिमान तथा प्रखर बनावेगा। यदि आपमें इन गुणों का अभाव है तो निश्चय ही आपके ध्यान में कुछ कमी है। सम्भवतः आप सतत ध्यान योग के अधिकारी नहीं है। आपको ध्यान के साथ साथ कर्म का समन्वय करना होगा। प्रभी आपकी प्रगति होगी।

पक्षी दो पंखों के विना उड़ नहीं सकता। दो पंख होने पर भी यदि पूंछ न हो तो वह उड़ नहीं सकता। पूंछ पक्षी को सन्तुलित रखती तथा उसकी ठीक दिशा को निर्धारित करती है। यह उसे गिरने से बचाती है। कर्म तथा ज्ञान को संतुलित रखने वाली यह पूंछ भक्ति है। दो पंख कर्म तथा ज्ञान है, परिपूर्णता की प्राप्ति के लिये कर्म, भक्ति तथा ज्ञान आवश्यक है। इनसे हृदय सिर तथा हाथ का विकास होगा। आप लक्ष्य को पहुँच सकेंगे।

क्या आपने शिव परिवार का चित्र देखा है ? केन्द्र में माँ पार्वती है, उनके अगल बगल गणेशजी तथा सुब्रह्मण्यम आसीन हैं गणेश ज्ञान के ईश्वर हैं। वे देवताओं के सेनाधीश है। माँ पार्वती भक्ति है। इस चित्र से आपको आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। यह चित्र यही शिक्षा देती है कि समन्वय योग के अभ्यास से ही आप पूर्णता की प्राप्ति कर सकते हैं।

भगवान कृष्ण समन्वय योग में पारंगत हैं। वे सारथी हैं। वे राजनीतिज्ञ हैं। वे संगीत सम्राट हैं। वे रासलीला के निपुण नर्तक हैं। वे महान् तीरदाज हैं। वे कहते हैं 'इन तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मेरा कर्तव्य हो। न तो कोई अप्राप्त वस्तु ही है जिसे मुझे प्राप्त करनी है, फिर भी मैं कर्म में संलग्न रहता हूँ। श्री शंकराचार्य, भगवान बुद्ध ये सभी समन्वय योग में निपुण थे। श्री अरविन्द, महात्मा गांधी, साधु वासवानी इत्यादि सभी समन्वय योग का अभ्यास करते रहे थे।

ज्ञान योग का मूल साधना चतुष्टय में है इसमें ब्रह्मज्ञान का फूल लगता है तथा मोक्ष या कैवल्य के फल की प्राप्ति होती है।

भक्ति की मूल श्रद्धा या आत्मार्पण में है। प्रेम का पुष्प खिलता है तथा ईश्वर प्राप्ति या भाव समाधि का फल लगता है।

राज योग का मूल यम तथा नियम में है। एकाग्रता का फूल लगता है तथा असंप्रज्ञात या निर्विकल्प समाधि का फल लगता है। आत्मत्याग, कर्मयोग का मूल है चित्तशुद्धि तथा चित्तविशालता उसके फूल हैं और ब्रह्म ज्ञान उसका फल है। सत्य तथा ब्रह्मचर्य कुण्डलिनी योग के मूल हैं। ईश्वरीय माता की कृपा फूल है तथा शिव योग की की प्राप्ति फल है।

आसन तथा प्राणायाम हठयोग के मूल हैं, विश्रान्ति फूल है, पूर्ण स्वास्थ्य, दीर्घायु तथा कुण्डलिनी जागृति के फल लगते हैं।

छोड़कर चले जाते हैं तथा कुछ नये विचार उनका स्थान तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं। मन आदतों का भी गट्ठर है। पुरानी आदतें यद्यपि गुप्त रहती हैं फिर भी अवसर पाकर वे बाहर आना चाहती हैं।

वेदान्त दर्शन के अनुसार मन का आकार शरीर के समान ही है। न्याय दर्शन के अनुसार यह अणु के समान है। राजयोग के अनुसार यह विभु या सर्वव्यापक है। बहुत से पाश्चात्य चिकित्सक जो कि अभी भी अंधकार में ही भटक रहे हैं, भ्रांतिपूर्वक यह मानते हैं कि मन मस्तिष्क का वैसे ही स्राव है जिस तरह यकृत से पित्त का स्राव होता है।

भगवान कृष्ण कहते हैं—'मन षष्ठानीन्द्रियाणि।' (गीता अध्याय 16-7) श्रोत्र, नेत्र, नासिका, जिह्वा तथा त्वक् ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं तथा मन छठी इन्द्रिय है. मन प्रधान ज्ञानेन्द्रिय है तथा पंचेन्द्रिय का समुच्चय भी है। मन में सभी पचेन्द्रिय सन्निहित हैं। अतः इन्द्रियों के बिना मन देख, सुन सूंघ, चख तथा छू सकता है।

जिस वस्तु का यह विचार करता है तत्क्षण ही यह उसके आकार को धारण कर लेता है। यदि यह आम का विचार करता है तो यह आम के आकार को धारण कर लेता है। तब इसे आम के साथ आसक्ति हो जाती है। अब उसे चखने के लिए मन में कामना उठती है। तब मन उसे खाने तथा अपने को तृप्त बनाने के लिए दृढ़ संकल्प कर लेता है। एक वृत्ति के अनन्तर दूसरी वृत्ति आती है। आम की वृत्ति तुरन्त ही आम बेचने वाले आम के वृक्ष आदि के विचार को आकृष्ट करती है। यह सारा जगत संकल्पों के विकास के सिवा और कुछ नहीं। विभिन्न विषयों की ओर संकल्पों का विकास ही बंधन कहा जाता है। वर्तमान काल में लोगों में यथार्थ समझ नहीं है। उनमें सत्यासत्य वस्तु का विवेक नहीं है। वे माया से पूर्णतः भ्रमित हो रहे हैं। माया मकर के चंगुल में फँसे हुए हैं। वे सांसारिक कामनाओं तथा भोगों का शिकार बन बैठे हैं। वे अपने दिव्य जन्माधिकार को भूलकर बंधन से ग्रस्त हो रहे हैं। जन्म मृत्यु की महान व्याधि से मुक्ति तथा अमृतत्व धाम की प्राप्ति ही दिव्य जन्माधिकार है।

मन बंदर के समान है जो एक स्थान से दूसरे स्थान को उछलता रहता है। यह वायु के समान है जो सदा चंचल है। शुभ्र रजतवत् यह

परायण होना चाहिये । ध्यान रखिये साधना का कितना महत्व है? साधना का मुख्य उद्देश्य मन का निग्रह ही है ।

मन दर्पण के सदृश्य है । जब दर्पण गंदा तथा धूमिल है तो आप अपने चेहरे को उसमें साफ नहीं देख सकते । उसी तरह जब मन मलिन है, कामनाओं के जाल में आबद्ध है तो आप आत्मा के दर्शन नहीं कर सकते । जिस तरह खुजली से पीड़ित अंग सदा खुजलाता रहता है उसी तरह काम वृत्ति के कारण मन भी सदा खुजलाता रहता है । अथक्, अदम्य तथा नियमित सात्विक आहार, जप, गीता का स्वाध्याय, सत्सग आसनादि के द्वारा इस खुजलाने वाले मन को शुद्ध बनाकर नियंत्रित कीजिये ।

अधिकांश लोगों ने मन को ढ़ीला छोड़ दिया है । यह उस बिगड़े हुए बच्चे के समान है जिसे उसके माता पिता ने अधिक लाड प्यार से बिगाड़ दिया है अथवा यह उस पालतू जानवर के सदृश है जिसे गलत ढंग से पाला गया है । इसमें से बहुतों का मन जंगली जानवरों के समान है । प्रत्येक व्यक्ति का मन अपने ही स्वभावानुसार प्रवृत्त होता रहता है । वायु में हलके पंख के समान तूफान में जलपोत के समान यह मन भी सदा राग द्वेष से आंदोलित होता रहता है । नगर की गलियों में फिरने वाले कुत्ते की तरह यह भी विषय वस्तुओं की ताक में दूर-दूर के चक्कर काटा करता है ।

यह मन उस नर कंकाल की ओर मंडराता रहता है जो कि थोड़े से मांस से आच्छादित तथा रेशमी वस्त्र से सुसज्जित है । यह धन से मदांध हो जाता है । यह वायु से भी अधिक वेग से एक ही पल में कलकत्ता से न्यूयार्क पहुँच सकता है । एक ही क्षण में पेरिस पहुँच कर अप टू डेट (दिनाप्त) फेशन का विचार करने लगता है । संक्षेप में इतना ही कहेंगे कि यह मन सदा चंचल है । यह उत्तेजित होकर भ्रमित बना रहता है । यह सदा विषयों पर विचरण किया करते हैं तथा कभी भी तृप्त नहीं होता । यह व्यर्थ ही खुशियाँ मनाता है, पश्चाताप से रोता है । एक क्षण में ही इसका अभिमान चूर्ण हो जाता है । यह तुरन्त ही अभिमान से फूल जाता है ।

कल्पना शक्ति के द्वारा मन बड़ा उपद्रव कर बैठता है। विभिन्न प्रकार के काल्पनिक भय, अत्युक्ति, गढी हुई बातें, मन का अभिनय, मनोराज्य—ये सभी कल्पना शक्ति से ही होते हैं। पूर्णतः स्वस्थ मनुष्य भी कल्पना शक्ति के द्वारा काल्पनिक रोगों का शिकार बना रहता है। काल्पनिक भय के कारण काफी शक्ति का अपव्यय हो जाता है।

मन जालसाजी करता है तथा चालें चलता है। यह सदा कुछ न कुछ करते रहना चाहता है। विषयों से आसक्त हो कर यह उनकी कामना करता तथा उनसे आनन्द मानता है। उदाहरणतः ताश में कुछ भी नहीं है। परन्तु आसक्ति तथा मनोयोग के द्वारा सुख की अनुभूति होती है। मनुष्य नहीं विचारता कि ये क्षणिक सुख वास्तव में सुखदायक हैं। लोग विषयों का सुखोपभोग करते हैं तथा बारम्बार उसी क्रिया को करते हैं ये दुष्कर्म समय पाकर बुरी आदतों में बदल जाते हैं। तब मन को बुरी आदतों से हटाना बहुत ही कठिन हो जाता है।

हरताल की शुद्ध कर भस्म बनाने में कितना अधिक समय लगता है? हरताल को सात दिन तक गौमूत्र में भिगो कर रखना होगा, दस दिन तक चूना-जल में तथा सात दिन तक दूध में रखना होता है। तब उसे एक सौ आठ बार जलाया जाता है। तभी उसका भस्म बनता है। ठीक उसी तरह मन को शुद्ध करने के लिए काफी समय लगता है। परन्तु इस प्रयास में सफलता निश्चित ही है।

हार्दिक कामना कीजिये। सावधान रहिये। बहुत साधानी पूर्वक अपने मन का निरीक्षण कीजिये। उफनते आवेगों तथा बुलबुलाते विचारों को रोकिये। चिड़चिड़ापन, द्वेष, क्रोध, काम तथा घृणा की वृत्ति को मन के तल पर उत्पन्न न होने दीजिये। बुरे विचार, बुरे भाव तथा पापपूर्ण वृत्ति को मन में प्रवेश न करने दीजिये।

मन साधारणतया चमकीली वस्तु, सौन्दर्य, विद्वत्ता, विविध रंग तथा सुखद ध्वनि से आकृष्ट होता है। इन क्षुद्र वस्तुओं से आकृष्ट न बनिये। विचार कीजिये, "इन सभी वस्तुओं का अधिष्ठान क्या है? इन सभी वस्तुओं की पृष्ठभूमि क्या है? तब आप पायेंगे कि इन सभी नाम रूपों के पीछे एक ही वास्तविक सत्ता है। यह सत्ता परिपूर्ण, सर्वव्यापक,

सर्वभूतांतरात्मा आत्मा ही है—उसी आत्मा से तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कीजिए। आप परब्रह्म को प्राप्त करेंगे।

धनात्मक सदा ऋणात्मक पर विजय प्राप्त करता हैं। यह प्रकृति का नियम है। सूर्य के उदय होते ही कोहरे का अवसान हो जाता है, यह नित्यप्रति की घटना है। प्रकाश के आते ही अन्धकार विदूर हो जाता है। यदि आप दिव्य गुणों को प्रश्रय देंगे तो बुरे गुण स्वयमेव दूर हो जायेंगे। यदि आप नये दिव्य विचार मन में लावेंगे तो पुराने आसुरी विचार स्वयमेव भग जायेंगे। साहस भय पर विजय पाता है। धैर्य क्रोध तथा चिड़चिड़ापन को दूर करता है। प्रेम घृणा पर विजय पाता है। शुद्धता काम को परास्त करती है। इस प्रतिपक्ष भावना का अभ्यास कीजिये। प्रात: ब्रह्ममुहूर्त के समय किसी सद्गुण का ध्यान कीजिये। उस सद्गुण के विभिन्न लाभ, उससे सम्बन्धित कुछ नैतिक कहानियों तथा विशेषताओं का चिंतन कीजिये। दिनानुदिन यह भावना कीजिये कि आप उस सद्गुण में वृद्धि ला रहे हैं। शनै:-शनै: उस सद्गुण का विकास होगा। पाप विनष्ट हो जायगा। बुरे गुण एक-एक करके नष्ट हो जायेंगे। आपको दुर्गुणों को भगाने की शक्ति प्राप्त होगी। वे सारे दुर्गुण जिन्हें आप अनादि काल से प्रश्रय देते चले आ रहे हैं, सब के सब दूर हो जायेंगे। आप में महान परिवर्तन हो जायगा। आपका मन एकाग्र हो जायगा।

अपने अन्तर्वासी प्रभु का चिंतन कीजिये। उसकी लीला का हर क्षण स्मरण कीजिये। असत्य तथा सत्य के बीच विवेक कीजिये। ब्रह्म चिंतन करने का संकल्प कीजिये। जिस तरह पानी को नमक या चीनी से संतृप्त बनाया जाता है उसी तरह मन को भी ईश्वर अथवा ब्रह्म के चिंतन से संतृप्त बनाइये। तभी एकाग्र मन सदा दिव्य चैतन्य में संस्थित रहेगा।

अन्तर्निरीक्षण के द्वारा इन्द्रियों का दमन करना, इन्द्रियों को नियंत्रित करने के लिए वैराग्य को विकसित करना तथा किसी विशेष इन्द्रिय की प्रिय वस्तु का परित्याग करना, विषय तथा विषयभोगों की तृष्णा को विनष्ट करना—यह परम कल्याण का मार्ग है। यही आपके जीवन का लक्ष्य होना चाहिये।

वासनात्मक नृत्य तथा बुरे संगीत का परित्याग करना, सिनेमा को त्यागना, कामुक दृष्टि से स्त्रियों की ओर न देखना, इत्र का इस्तेमाल न करना, प्रत्येक स्थिति में सत्य बोलना, सरल सात्विक आहार करना, एकादशी के दिन उपवास करना, मित भाषण तथा मौन पालन करना—ये सब परम कल्याण के साधन हैं। यही आपकी दैनिक साधना होनी चाहिये।

2—दसों इन्द्रियों के दमन के लिए साधना

दबाव से इन्द्रियाँ उपद्रवी तथा प्रतिक्रियात्मक बन जाती हैं। इन्द्रियों के दबाव की आवश्यकता नहीं, उनके रूपान्तरण की आवश्यकता है। उनके सदुपयोग के द्वारा ही यह रूपान्तरण सम्भव है। प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा पहले इन्द्रियों को कमजोर बना डालना चाहिये। वैराग्य त्याग, ध्यान, आवश्यकताओं की कमी, कामनाओं का निग्रह—इन सबों से इन्द्रिय दमन में सहायता मिलती है।

इन्द्रियां बहुत ही सबल तथा प्रबल हैं। उन्हें विचार तथा विवेक के साथ बुद्धिमानी पूर्वक शनैः-शनैः वशीभूत करना चाहिये। उग्र तामसिक रूप से उनके निग्रह में अधिक सहायता नहीं मिलेगी। यह एक दिन या एक महीने का कार्य नहीं है। यह तो धैर्य युक्त सतत् संग्राम है। धैर्य तथा संलग्नता पूर्वक आगे बढ़ते जाइये। सत्संग से बल मिलता है तथा उनके दमन में सहायता मिलती है। इन सबके अतिरिक्त ईश्वर की कृपा अनिवार्य है। आत्मार्पण, श्रद्धा तथा भक्ति के द्वारा ईश्वर कृपा प्राप्त कीजिये।

1. ज्ञानेन्द्रिय—1. ईश्वर की महिमा, लीला तथा उसके कीर्तन के श्रवण तथा योनि मुद्रा के अभ्यास से अनाहत नाद श्रवण के द्वारा श्रोत्रों को नियंत्रित कीजिये।

2. ब्रह्मचर्य पालन, त्राटक का अभ्यास कर भ्रमणशील आंखों का दमन कीजिये रूखी चटाई पर शयन मोटे एवं रूखे वस्त्र, कम्बल तथा कमीज को धारण कर त्वगेन्द्रिय का दमन कीजिये।

3. नित्य प्रति त्राटक का अभ्यास कर भ्रमणशील आंखों का दमन कीजिए। अनुभव कीजिए कि हर मूर्ति ईश्वर का ही रूप है।

हर रूप में ईश्वर के दर्शन कीजिये। इष्टदेव पर त्राटक कीजियें त
आंखें बन्द कर चित्र का मानसिक दर्शन कीजिये।

4. उन वस्तुओं को एक सप्ताह या एक महिने के लिये त्या
दीजिये, जिन्हें मन अधिक पसन्द करता है। रविवार के दिन नमक व
त्याग कीजिये चीनी रहित दूध पीजिये। चटनी का त्याग कीजिये। दा
अतिरिक्त नमक तथा चाय अथवा दूध के लिये अतिरिक्त चीनी की मां
न कीजिये तीन वस्तुवें ही आहार के लिये रखिये। एकादशी, अमावस्या
पूर्णिमा, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, वैकुण्ठ एकादशी तथा दशहरा क
उपवास कीजिये।

5. इत्र का इस्तेमाल न कीजिये।

2. **कर्मेन्द्रिय**—नित्य दो घन्टे तथा इतवार को चौबीस घन्टे का
मौन रखिये। परिमित शब्द बोलिये। मधुर बोलिये। सत्य बोलिये।
आप वाक् इन्द्रिय को दमन कर सकेगें।

2. गरीब तथा बीमारों की सेवा कीजिये। अपने माता पिता की
सेवा कीजिये। साधुओं की सेवा कीजिये। मन, वचन तथा कर्म से
अहिंसा का अभ्यास कीजिये। अर्चना कीजिये या ईश्वर को फूल
चढाइये। मन्दिर में दीप जलाइये। मन्दिर की फर्श को बुहारिये।
अभिषेक के लिये जल लाइये। मन्दिर में अन्य प्रकार की सेवा कीजिये।
दान दीजिये। आप अपने हाथ पर वश पा लेंगे।

3. मन्दिर जाइये। तीर्थ स्थानों के दर्शन कीजिये। मन्दिर की
परिक्रमा कीजिये। एक ही आसन पर दो तीन घन्टे तक वैठिये। आप
पांव का दमन कर लेगें।

4. ब्रह्मचर्य का पालन कीजिये। आप उपस्थ इन्द्रिय का दमन कर
लेगें।

5. मिताहार कीजिये। उपवास कीजिये। आप गुदा इन्द्रिय का
दमन करेंगे।

3—वैराग्य के विकास के लिये साधना (1)

1. विषय सुख क्षणिक, भ्रामक, मोहक तथा काल्पनिक है।
2 एक राई भर सुख पर्वत भर दुखों से मिश्रित है।
3. भोग के द्वारा इच्छा की तृप्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत् यह तृष्णा के द्वारा मन को अधिक अशांत बना देता है।
4. विषय ब्रह्मज्ञान का शत्रु है।
5. विषय सुख जन्म तथा मृत्यु का कारण है।
6. यह शरीर माँस, मज्जा तथा सभी प्रकार के मलों से पूर्ण है।
7. अपने मन के समक्ष आत्मिक जीवन, अमृतत्व, नित्य शान्ति परम सुख, असीम ज्ञान आदि आत्मसाक्षात्कार के फलों को रखिये। यदि आप इन सात बातों की सदा याद बनाये रखेगें तो मन विषय सुखों की तृष्णा से उपरत हो जायगा तथा विवेक वैराग्य एवं मुमुक्षुत्व का उद्भव होगा। आपको इन्द्रिय जीवन के दोषों पर विचार रखना चाहिये (दोषदृष्टि) तथा सांसारिक जीवन के मिथ्या स्वभाव (मिथ्या दृष्टि) पर भी चिंतन करना चाहिये।

बिछावन से उठते ही नित्यप्रति एक बार इसका अध्ययन कर लीजिये।

4—वैराग्य के विकास के लिये साधना (2)

सन्देह के इन समयों में ही सत्संग विशेष रूप से लाभकर होता है। महात्माओं की सतत संगति से आपको वैराग्य के विकास में सहायता मिलती है। भर्तृहरि की पुस्तकों को बारम्बार पढ़िये। वैराग्य में विभिन्न कारणों से कमी भी आसकती है अतः जब कभी आपका मन भ्रमित हो तो आपको अपने को अधिक सबल बनाना होगा। आत्मसाक्षात्कार प्राप्त महात्माओं से धार्मिक विषय पर चर्चा कीजिये तथा वैराग्य शिक्षा को बनाये रखिये। आपमें परा वैराग्य होना चाहिये। विवेक को भी

सभी परिस्थितियों में बढाना होगा। जब आप का शरीर व्याधिमुक्त हो जाता है अथवा परिस्थितियां अनुकूल हो जाती हैं तो आप भगवान या आत्मा को बिलकुल ही भुला देते हैं। माया अथवा अविद्या के प्रभाव से आप विश्वास करते है कि इस संसार से परे अन्य कुछ भी नहीं है तथा आपकी सम्पत्ति ही आपको सभी आकांक्षित सुख प्रदान कर सकती हैं। आप यह भी विश्वास करते हैं कि आपका सुख भौतिक पदार्थों में ही निहित है। अतः महात्माओं के सत्संग द्वारा माया की भ्रांति से ऊपर उठिये। महात्माओं की सेवा कर उनकी कृपा प्राप्त करने का प्रयास कीजिये।

जो महात्माओं के सन्निकर्ष में नहीं रह सकते उन्हें ऐसे महात्माओं द्वारा रचित पुस्तकें बहुत ही सहायक होंगी जो आत्म साक्षात्कार प्राप्त हो, जो स्वयं इस मार्ग में चले हों, जिन्होंने उग्र तपस्या की हो तथा जो वेदान्त का ज्ञान रखते हों। इस प्रकार के महात्माओं की महान कृतियों के परिशीलन से ऐसे साधक में, जिसे साक्षात्कार प्राप्त गुरु का पथ प्रदर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं उपलब्ध हो सका, ऐसे उत्तम संस्कारों का सृजन होता है जिनसे वह अन्ततः ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है और आत्मकाम बन जाता है। वहां वह वह कैवल्य के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करता है और लोक संग्रहार्थ इस भूलोक में ऋषि के रूप में पुनः अवतरित होता है। यदि कोई आवरण अवशिष्ट भी रहा तो वह उसे दूर करने में समर्थ होता है और परमात्मा के साथ ऐक्य का अनुभव करता है।

5—अहंकार को दूर करने के लिये साधना

(1)

अहंकार मन की एक वृत्ति है। पंतजलि महर्षि कहते हैं—मनुष्य-जब आत्माभिमान करने लगता है तो वही मन अहंकार में बदल जाता है। सर्व प्रथम अहंकार उत्पन्न होता है और तब ममता आती है।

यह अहंकार कर्म, कामना तथा दुखों का जनक है। यह सभी बुराईयों का मूल है। यह मिथ्या है। यह लोगों को भ्रम में डाल देता है। यद्यपि यह कुछ भी नहीं है फिर भी सांसारिक व्यक्तियों के लिये यह सब कुछ है। यह ममता से सम्बन्ध रखता है। यह अविद्या से उत्पन्न

है। मिथ्या अभिमान से इसका जन्म होता है। मद इसे प्रदीप्त करता है। यह शान्ति का सबसे बडा शत्रु है। इस दृष्टि अहंकार का परित्याग कर दिया जाय तो मनुष्य सदा सुखी रहेगा। अहंकार का सन्यास ही सन्यास का रहस्य है।

अहकार का वास स्थल मन में है। मनुष्य अहंकार के वशीभूत होकर पाप तथा दुष्कर्म करता है। यह गहरा गडा हुआ है। अहंकार से चिंता तथा क्लेश की उत्पत्ति होती है। अभिमान, काम, द्वेष राग तथा घृणा अहंकार के सेवक हैं। अहंकार सद्‌गुण तथा मन की शान्ति को नष्ट कर डालता है। यह ममता के जाल को फैलाकर मनुष्य को उसमें फंसा लेता है। जो अहंकार से मुक्त है वह सदा सुखी और शांत है। अहकार के कारण ही कामनायें बढती तथा विकसित होती है। मनुष्य के महान वैरी अहंकार ने उसके लिये पुत्र, स्त्री, मित्र तथा सम्बन्धियों का मोह पाश तैयार किया है। जिसको तोडना बडा ही कठिन है। अहंकार से बढकर और कोई वैरी नहीं।

जो न तो किसी वस्तु से राग करता है और न द्वेष जो सदा अपने मन की शान्ति बनाये रखता है वह अहकार की भावना से प्रभावित नहीं होता।

अहंकार तीन प्रकार के हैं। उनमें दो लाभदायक तथा महान हैं। परंतु तीसरा निम्न तथा त्याज्य है। प्रथम है वह परम तथा अविभक्त अहम्, कुछ है ही नहीं इस महावाक्य पर ध्यान कीजिये—'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूं। ब्रह्म के साथ एकता स्थापित कीजिये। यह सात्विक अहंकार है। जिस ज्ञान के द्वारा हम अपनी आत्मा को धान के अग्रभाग से भी सूक्ष्मतर वेश के शतांश से भी सूक्ष्मतर रूप में देखते हैं वह द्वितीय प्रकार का अहंकार है। ये दो प्रकार के अहंकार जीवन मुक्तों में पाये जाते हैं। इनसे मनुष्य को मुक्ति मिलती है। इनसे बंधननहीं होता। अतः वे लाभदायक तथा श्रेष्ठ हैं।

तीसरे प्रकार का अहंकार वह ज्ञान है जिससे मनुष्य पंचतत्वों से निर्मित शरीर के साथ तादात्म्य सम्बंध स्थापित कर उसे ही आत्मा समझने लगता है। यह निकृष्ट अहंकार है। यह सभी सांसारिक मनुष्यों में पाया जाता है। यह पुनर्जन्म के विष वृक्षकी वृद्धि का कारण

है। जिनमें इस प्रकार का अहंकार है वे कभी भी सद्‌बुद्धि प्राप्त नहीं करते। इस अहंकार से अनेकानेक व्यक्ति भ्रम में पडे हुए हैं। वे अपनी विवेक बुद्धि तथा विचार शक्ति को खो बैठे हैं। इस प्रकार के अहंकार से विनाशकारी परिणाम प्राप्त होते हैं। लोग जीवन की सभी बुराईयों के शिकार बन जाते हैं। इस अहंकार स पीडित व्यक्ति अनेकानेक कामनायें करता है, जिनके वशीभूत हो वह पापकर्म करने के लिये बाध्य होता है। इससे मनुष्य पशु की अवस्था तक उतर जाता है। इस अहंकार को पहले के दो प्रकार के अहंकार से विनष्ट करना चाहिये। जितना ही अधिक आप इस अहंकार को क्षीण बनावेगें उतना ही अधिक आप ब्रह्मज्ञान प्राप्त करेंगे।

पुनः अहंकार के तीन गौण रूप हैं—सात्विक अहंकार, राजसिक अहंकार तथा तामसिक अहकार। सात्विक अहंकार से मनुष्य संसार में नहीं बंधता। इससे साधक मुक्ति प्राप्त करने में सहायता पाता है। यदि आप इस तरह निश्चय करें मैं भगवान का सेवक हूं वह मुझमें प्रगट है तथा सबों की सेवा के लिये ही मुझे यह जन्म मिला है। जीवन मुक्त में भो सात्विक अहंकार का अल्प अंश पाया जाता है। वह सात्विक अहंकार से ही कर्मों को करता है। मै राजा हूं ये राजसिक अहंकार के रूप हैं। मैं मूर्ख हूं। कुछ नहीं जानता—इस प्रकार का भाव रखकर भी जो व्यक्ति उद्धत तथा हठी है तो उसे तामसिक अहंकार कहते हैं।

अहं पद का वाक्यार्थ अहं वृत्ति है जो मन से उत्पन्न होकर शरीर के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करती है। अहं पद का लक्ष्यार्थ है ब्रह्म या असीम मैं। माया ही अहंकार का कारण है। विषय ज्ञान अहंकार का कारण है। शरीर, वृक्ष, नदी, पर्वत, जानवर जैसे भ्रामक वस्तुओं से ज्ञान मिलता है। यदि विषय पदार्थ नहीं रहते तो हम न तो विचार करते और न कुछ जानते ही। यदि विषय पदार्थ नहीं है तो हमें विषय ज्ञान होगा ही नहीं। तब मन का बीज अहकार विलीन हो जायगा।

अहंकार की भावना वह नीड है जिसमें सभी दुर्बलताओं का आवास है। यह मन रूपी वृक्ष का बीज है। अहंकार रूपी बीज से बुद्धि अंकुरित होती है। इस अंकुर से संकल्प—रूपी शाखायें फैलती हैं। मन

चित्त और बुद्धि अहंकार के भी विभिन्न नाम हैं। वासनाओं की शाखायें अनेकानेक कर्मों की फसल उत्पन्न करेंगी। परन्तु यदि ज्ञान खड्ग द्वारा आप उन्हें अपने हृदय में ही काट डालेंगे तो उनका विनाश हो जायगा। मन रूपी वृक्ष की शाखाओं का काट डालिये तथा अन्ततः इसके मूल को भी विनष्ट कर डालिये। शाखाओं को काटना तो गौण है। मूल को ही काटना प्रधान है। यदि आप सत्कर्मों द्वारा अहंकार को नष्ट कर देंगे, जो मन की जड है, तो फिर मन उत्पन्न नहीं हो सकेगा। आत्मज्ञान वह अग्नि है जो अहंकार-बीज को ही विनष्ट कर डालता है।

अहंकार का दूसरा विभाजन भी है, स्थूल तथा सूक्ष्म अहंकार। स्थूल शरीर से सम्बन्ध स्थापित्त करने पर स्थूल अहंकार रहता है। मन तथा कारण शरीर से सम्बन्ध स्थापित करने पर सूक्ष्म अहंकार रहता है। यदि आप मद, स्वार्थ, कामना तथा देहाध्यास नष्ट कर दें तो स्थूल अहंकार नहीं रहेगा, सूक्ष्म अहंकार का उन्मूलन भी आवश्यक है। सूक्ष्म अहंकार अधिक हानिकारक है तथा अधिक कठिनाई से दूर होने वाला है। "मैं धनी हूँ, मैं राजा हूँ मैं ब्राह्मण हूं"—यही स्थूल अहंकार है। "मैं योगी हूं, मैं अच्छा साधक हूँ, मैं ज्ञानी हूं, मैं अच्छा कर्मयोगी हूं, मैं सदाचारी हूं अथवा साधु हूं।"—यही सूक्ष्म अहंकार का दूसरा विभाजन भी है—सामान्य अहंकार तथा विशेष अहंकार। सामान्य अहंकार पशुओं में हैं विशेष अहंकार मनुष्यों में।

आप कहते हैं, "यह शरीर मेरा है। गृद्ध, शृगाल तथा मछली भी कहते हैं, "यह शरीर मेरा है।" प्याज के छिलके को एक-एक कर हटा देने से कुछ भी नहीं बचता। उसी प्रकार "मैं" भी है। यह शरीर, मन, इन्द्रिय आदि पंच तन्मात्राओं के मेल से ही बने हैं। ये सभी प्रकृति के विकार मात्र हैं। फिर "मैं" कहां है? मन रूपी जादूगर का जादू ही मैं है। जो वस्तु कारण से उत्पन्न नहीं उसका अस्तित्व ही नहीं माना जा सकता। यह शरीर कर्मों से उत्पन्न है, स्वयं कारण नहीं। इस शरीर का ज्ञान भी मिथ्या ही है। अतः ज्ञान संमोह से उत्पन्न अहंकारादि भी असत्य है। वास्तविक "मैं" तो सत् चित्-आनन्द है।

जिस तरह ट्रेन अथवा नौका की गति को वृक्ष आदि पर आरोपित करते हैं उसी तरह मन के जादू द्वारा अहं को शरीर, मन, प्राण तथा

इन्द्रियों पर आरोपित करते हैं। जब आप कहते हैं, "मैं मोटा हूं, मैं पतला हूं" तो मैं का स्थानान्तरण इन्द्रियों में होता है। जब आप कहते हैं। "मैं भूखा हूं, मैं प्यासा हूं" तो मैं अध्यस्त है। जब आप कहते हैं "मैं कामी हूं, मैं क्रोधी हूं" तो "मैं" का अध्यास मन से होता है। यदि आप परमात्मा से तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करेंगे तो सारे मिथ्यारोप विनष्ट हो जायेंगे।

यदि आप सेनापति को मार डालें तो सैनिकों का दमन करना सुगम हो जायगा। उसी प्रकार आध्यात्मिक संग्राम में यदि आप सेनापति अहंकार को विनष्ट कर दें तो आप सुगमता पूर्वक काम, क्रोध, मद, लोभ, द्वेष, मोह, दम्भ आदि सैनिकों को, जो अहंकार के लिये ही युद्ध करते हैं, पराजित कर सकते हैं।

प्रथम दो प्रकार के उच्च अहकारों के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील बनिये। अक्षय-परमधाम की संस्थिति में ये दो अहंकार भी एक एक परित्यक्त हो जाते हैं। मैं को स्थूल शरीर से अध्यस्त न कीजिये। परब्रह्म से तादात्म्य स्थपित कीजिये।

भले ही आपने अहंकार को बहुत ही तनु अथवा क्षीण बना दिया हो। परन्तु यदि आप अभी भी मानापमान से प्रभावित होते हैं तो जान लीजिये कि आप में अभी भी सूक्ष्म अभिमान बना हुआ हैं।

भक्तिमार्ग का साधक आत्मनिवेदन अथवा ईश्वर के प्रति आत्मापर्ण के द्वारा अहंकार को विनष्ट करता है। वह कहता है, "मैं तेरा हूं, सब तेरा ही है, तेरा होगा हे प्रभु।" वह अपने को ईश्वर के साथ का यंत्र समझता है। वह अपने सारे कर्म तथा उनके फल को ईश्वर पर अर्पित कर डालता है, वह अनुभव करता है कि ईश्वर के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। सभी वस्तुऐं ईश्वर द्वारा ही निर्मित है तथा एक भी परमाणु उसकी अनुमति के बिना गतिशील नहीं हो सकता, सारे प्राणी उसी में जीवित रहते, गतिशील होते तथा अपने अस्तित्व को रखते हैं।

कर्मयोगी अपने अहंकार को आत्मत्याग के द्वारा विनष्ट करता है। ज्ञानयोगी विचार नेति-नेति के अभ्यास द्वारा अहंकार को विनष्ट करता

है। "मै शरीर नहीं हूं, मैं प्राण नही हूं, मैं मन अथवा इन्द्रिय नहीं हूं, मैं सर्वव्यापक ब्रह्म हूं।" इस तरह ध्यान के द्वारा वह अहंकार विनष्ट करता है।

(2)

अहंकार लौह-भित्ति के समान है जो मनुष्य को अमर आत्मा से पृथक् करता है। यह दुर्गन्धित पदार्थ है जिसने मनुष्य को ईश्वरत्व के पद से पतित कर उसे वृत्तियों का शिकार बना दिया है। यह मायावी रासायनिक वस्तु है जिसे माया ने स्वयं प्रयोगशाला में निर्मित किया है। इसके कारण मनुष्य अपने स्वाभाविक वास्तविक दिव्य स्वरूप का विस्मरण कर भौतिक नश्वर पदार्थों की ओर—अलकोहल, शराब आदि पदार्थों की ओर दौडता है। यह रहस्यमयी गैस है जो विचारशील के लिये वाष्प बन कर उड जाती है, परन्तु अविवेकी तथा सांसारिक व्यक्ति के लिये इस्पात की चट्टान के समान प्रबल बनी रहती है, जिसे शक्तिशाली तोप तथा बम के द्वारा भी ध्वस्त करना संभव नहीं है।

यह बड़ा ही शक्तिशाली है। इसका स्वभाव अनोखा है। इसका कार्य व्यापार बुद्धि की समझ के परे हैं। यह बड़ी ही निर्ममता पूर्वक आक्रमण कर बैठता है। यह उच्च पद प्राप्त योगी को पल मात्र में ही निम्न स्तर में घसीट लाता है। इसके विविध रूप हैं तथा यह विभिन्न प्रकार से मनुष्य को भ्रमित करता है।

यह सारा संसार ही अहंकार का खेल है। अहंकार, लिंग तथा जगत अविभाज्य है। यदि आप अहंकार का स्वभाव जानते हैं तो आपने सारी सृष्टि के रहस्य को समझ लिया है। अतः आत्म विश्लेषण कीजिये। अहंकार का अध्ययन परमावश्यक है इसके द्वारा आप परम सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

अहंकार प्रकृति अथवा माया का विकार है। यह अहंकार तत्व है। यह अविद्या से उत्पन्न है। इसके तीन रूप हैं—सात्विक अहंकार, राजसिक अहंकार तथा तामसिक अहंकार। सात्विक अहंकार मोक्ष की ओर ले जाता है। राजसिक तथा तामसिक अहकार आपको जन्म मृत्यु के चक्र में बद्ध बनाते हैं।

अहंकार इन स्थानों को पसन्द करता है—धनी मनुष्य का मन, शुष्क पण्डित, उच्च पदाधिकारी, मंत्री, वैज्ञानिक. चिकित्सक, नास्तिक बुद्धिवादी, अज्ञेयवादी, साम्यवादी तथा उन व्यक्तियों के मन जो धर्म एवं सत्य को खोज से पराङ्मुख हैं।

आप अनुभव करते हैं, अहमस्मि 'मैं हूँ'—यह सात्विक अहंकार है। विभीषण तथा तुलसीदास ने कहा है—"मैं अपने सिर को भगवान राम के अतिरिक्त किसी अन्य देवता के समक्ष नहीं झुकाऊँगा।" यह सात्विक अहंकार है। अपनी आत्मा को जानने, मोक्षप्राप्ति तथा धार्मिक जीवनयापन करने की कामना सात्विक अहंकार से उत्पन्न है। आलस्य, प्रमाद, असावधानी, हठ आदि तामसिक अहंकार से उत्पन्न हैं।

अहंकार मन की वृत्ति है। सर्व प्रथम अहं वृत्ति प्रकट होती है और तब अन्य वृत्तियाँ इस अहं वृत्ति से चिपट जाती हैं। अहंकार से मन की उत्पत्ति होती है। अहंकार से सम्बन्धित चैतन्य का प्रतिबिम्ब ही बीज है। इसके कारण बीज भौतिक शरीर से तादात्म्य सम्बन्ध कर बैठता है। तब शरीर में 'मैं' की वृत्ति उत्पन्न होती है। यह मानवी क्लेशों तथा सतापों का कारण है।

धन, सौन्दर्य, शारीरिक बल, सद्गुणों की प्राप्ति, पांडित्य राजसिक आहार—ये अहंकार को स्थूल बनाते हैं। सत्संग, जप ध्यान, धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, सात्विक आहार तथा कीर्तन—ये अहंकार को तनु बनाते हैं।

यदि अहंकार को ब्रह्म चिंतन अथवा 'मैं कौन हूँ ?' के विचार से नष्ट कर दिया जाय तो इसके सारे विकार स्वतः ही नष्ट हो जायेंगे। उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। काम, क्रोध आदि के विनाश से अहंकार क्षीण हो जाता है।

राजसिक कार्यों की पुनरावृत्ति करते रहने से काम, क्रोध तथा अभिमान अधिकाधिक प्रबल होते हैं। इन बुरी वृत्तियों के उन्मूलनार्थ आपको धैर्य तथा अडिग उत्साह से कार्य करना होगा।

अभिमान अहंकार का चिर संगी है। संन्यासी तथा योगी जन भी इससे नहीं बचते। यदि उन्हें समुचित सम्मान न दिया जाय तो वे रुष्ट

हो जाते हैं। हाँ, हो सकता है कि वे अपना क्रोध प्रकट न करें। इसका कारण क्या है? अभिमान पर आघात पहुँचा है। अभी भी अहंकार है। वह अपनी तृप्ति के लिए आदर तथा सम्मान चाहता है।

यदि आप उन्नत पद को प्राप्त करके भी सेवा भाव रखते हैं तो अभिमान आपको प्रभावित नहीं करेगा। आप सदा ऐसा विचार बनाये रखें कि वह पद किसी भी क्षण आपके हाथ से जा सकता है।

यदि संन्यासी, योगी या किसी महापुरुष को उनके भक्तजन बहुत सम्मान देते हैं, माला पहनाते तथा नमस्कार करते हैं और यदि वे ऊँचे पद पर बैठे होते हैं तो वे अपने भक्तों के नमस्कार का प्रत्युत्तर देने में भी कठिनाई का अनुभव करते हैं। वे अपने शरीर को मोड़ते भी नहीं अथवा जमीन पर नहीं बैठते। कालान्तर में उनके मन में अहंकार प्रवेश कर लेता है तथा वे मान एवं प्रतिष्ठा के गुलाम बन जाते हैं।

राजसिक व्यक्ति कभी-कभी कहता है, "चाहे मेरी मौत ही क्यों न हो जाय मैं अपने कथन को कदाचित लौटा नहीं सकता। मैं कभी अपनी हार नहीं मान सकता। मैं उनको पहले नमस्कार कदापि नहीं करूँगा। मैं कदापि क्षमा याचना नहीं करूँगा। मुझे तो प्रथम सीट मिलनी ही चाहिये।" ये अभिमानी व्यक्ति के कथन हैं। यदि उसके अभिमान पर चोट पहुँचाया जाय तो वह यथाशक्ति उन पर आक्रमण करने तथा उनकी हत्या करने के लिए आतुर रहेगा। यदि मनुष्य अपनी प्रकृति में थोड़ा सुधार लाये, वह थोड़ी नम्रता तथा यथा व्यवस्था का गुण लावे, यदि वह थोड़ा झुकना जाने तथा मधुर शब्द बोले तो वह सभी हृदयों को जीत सकता है तथा समस्त जगत का वास्तविक सम्राट बन सकता है। अभिमान पर चोट लगने के कारण मनुष्य बड़ा ही क्लेश भोगता है। एक स्थान में अथवा एक गुरु के अधीन वह टिक नहीं सकता। वह झगड़े, संग्राम आदि रचता है, उसको सुविधायें नहीं मिल पाती तथा वह निरुद्देश्य इधर-उधर भटकता रहता है। यह सब अभिमान के कारण ही है।

माया बड़ी ही शक्तिशाली है। वह उसे मोहित कर देती है। अन्तर्निरीक्षण के द्वारा उसे अपने दोषों को जानने का समय नहीं रहता।

यदि उसके शुभेच्छुक उसके दोषों को बतलाते हैं तो वह रुष्ट हो जाता है। उसमें उन दोषों को दूर करने की सामर्थ्य नहीं। ये दोष जन्म जन्मान्तर तक बने रहते हैं। वह बारम्बार एक ही प्रकार की गलतियों को करता है तथा दुखमय जीवन बिताता है। एम० ए०, पी० एच० डी० बनना आसान है, ओजस्वी वक्तृता देना आसान है, परन्तु अभिमान को दूर करना, जो मानव क्लेशों का मूल है बड़ा ही कठिन है।

योगी तथा वेदान्ती भी अहंकार से नहीं बच पाते। स्त्री को शारीरिक सौन्दर्य का अभिमान है, राजा को अपने राज्य का, वेदान्तियों को अपने पांडित्य का, योगी को अपनी समाधि एवं सिद्धियों का तथा ब्रह्मचारी को अपनी शुद्धता का अभिमान है। सच्चा भक्त ही ईश्वर की कृपा से इस महान शत्रु से मुक्त है।

हे मनुष्य ! स्पष्टतः जान लीजिये कि यह अहंकार है क्या ? बड़ी सावधानी पूर्वक इसका अध्ययन कीजिये। कुछ क्षण के लिए नित्य प्रति आंखें बन्द कर शान्त बैठ जाइये। अन्तर्निरीक्षण के द्वारा अपने दोषों का पता लगा लीजिये। अपने ध्यान में नियमित बनिये। सदा सत्संग कीजिये। अभिमान त्यागिये। इस अहंकार को विनष्ट कर अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द में विश्राम कीजिये।

(3)

अहंकार के कार्य बहुत ही रहस्यमय हैं। इसके विभिन्न कार्य व्यापारों का पहचानना बड़ा ही कठिन है। इसके लिए सूक्ष्म तथा तीक्ष्ण बुद्धि की आवश्यकता है। यदि आप नित्य प्रति आत्म विश्लेषण तथा विवेक का अभ्यास करेंगे तो आप इसके रहस्य को समझ सकते हैं।

जहाँ कहीं भी अहंकार है वहाँ राग द्वेष, अभिमान, दर्प, हठ वासना, तृष्णा वृत्ति, संकल्प पाखण्ड, आसक्ति तथा कर्त्तापन का अभिमान आदि भी हैं। यदि आप अहंकार को नष्ट करना चाहते हैं तो आपको इसका स्पष्ट ज्ञान होना चाहिये। धैर्य पूर्वक सलग्न प्रयास से ही आपको सफलता मिलेगी।

यह अहंकार अपना जन्म स्थान, अपना प्रान्त, अपने प्रान्तीय जन, अपनी मातृ भाषा, अपने सगे सम्बन्धी तथा भोजन वस्त्रादि के अपने तरीके को ही पसन्द करता है।

वह अहंकार दूसरों के ऊपर प्रभाव जमाना चाहता है। वह पद, सम्मान, राज्य, आदर, सम्पत्ति, घर, स्त्री तथा बच्चे चाहता है। वह आत्म प्रशंसा चाहता है। वह दूसरों पर शासन करता है। यदि कोई व्यक्ति दुर्बलताओं की ओर संकेत करता हैं तो अभिमान को चोट पहुँचती है। यदि कोई प्रशंसा करता है तो वह फूल उठता है। वह इस प्रकार अहंकार करता है—'मैं सब कुछ जानता हूँ। वह तो कुछ भी नहीं जानता। जो मैं कहता हूँ वह बिल्कुल ठीक है। वह जो कहता है बिलकुल गलत है। वह मुझ से नीचे स्तर में है। मैं उससे बड़ा हूँ।" वह दूसरों को अपने मत एवं विचार पर चलने के लिये बाध्य करता है। यह अहकार के सामान्य विकार हैं।

आत्म विश्लेषण तथा अन्तर्निरीक्षण का प्रारम्भ करने पर यह अहंकार चोर की भांति जा छुपेगा। वह आपकी समझ से बाहर रहेगा। आपको बड़ा ही सावधान तथा सतर्क रहना चाहिये। यदि आप जप, कीर्तन, प्रार्थना तथा भक्ति के द्वारा ईश्वर की कृपा प्राप्त कर लें तो आप अहकार को सुगमतया नष्ट कर सकते हैं। ईश्वर की कृपा से ही आपका आत्मार्पण पूर्ण हो सकता है। जब यह अहंकार विश्वात्म अहंकार में विलीन हो जायगा तो आप आत्म साक्षात्कार के द्वारा परमात्मा से एक बन जायेंगे।

इस अहंकार के रहस्य को समझने का प्रयास कीजिये। यह आत्म प्रशंसा, आत्मोन्नति, अधिकार, विषय तथा भोग की प्राप्ति के पीछे लालायित रहता है। इस अहकार को नष्ट कीजिये। उदासीन रहिये। सद्‌गुणों में अपनी श्रद्धा ग्रथित कीजिये। सेवा तथा त्याग की भावना को जीवन का आदर्श बनाइये। शीघ्र ही आप सम्पन्न आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करेंगे।

तितिक्षा को प्रदीप्त कीजिये। मानव सेवा तथा शुद्ध प्रेम के आदर्श को बनाये रखिये। वासनाओं की निम्नगामी शक्तियों को रोकने के लिये सात्विक शक्ति का निर्माण कीजिये। बुरे विचारों को भले विचारों द्वारा नष्ट कीजिये। मलिनता, अशक्तता तथा हृदय दौर्बल्य से ऊपर उठिये। वीर बनिये। सदा प्रसन्न रहिये। करुणा, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता

आदि देवीसंपद् का विकास कीजिये। आप निश्चय ही परम सुख तथा नित्य ज्ञान प्राप्त करेंगे।

वीर साधक, अपनी अमर आत्मा में ही शहर लीजिये। अपने संकल्प के पक्के बनिये। सत्य तथा धर्म के मार्ग का अनुगमन कीजिये। सावधाना पूर्वक अपने मन का निरीक्षण कीजिये। सावधान तथा सलग्न बनिये। उपद्रवी इन्द्रियों को अनुशासित कीजिये। जिह्वा तथा मलिन कामनाओं को रोकिये। आप संसार सागर को पार कर अमृतत्व, शाश्वत शान्ति आनन्द प्राप्त करेंगे!

6—ईर्ष्या को दूर करने के लिए छः साधन

ईर्ष्या को दूर करने के छः तरीके—

(1) राजयोग की साधना
(2) वेदान्तिक साधना
(3) भक्तियोग की साधना
(4) कर्मयोग की साधना
(5) विचार साधना
(6) अध्यात्म साधना

(1) राजयोग की साधना—योगश्चित्तवृत्तिनिरोध के अनुसार राजयोगी वृत्ति को ही विनष्ट करता है। वह ईर्ष्या के सभी संकल्पों का अन्तर्निरीक्षण तथा ध्यान के द्वारा नष्ट कर डालता है। वह प्रतिपक्ष भावना की विधि को प्रयोग में लाता है। प्रतिपक्ष गुण 'उदारता' के अभ्यास से ईर्ष्या स्वतः दूर हो जायगी। 'संकीर्ण बुद्धि' के कारण ही ईर्ष्या की उत्पत्ति होती है। यदि उदारता का अभ्यास किया गया तो ईर्ष्या स्वतः विनष्ट हो जायगी।

ध्यान गृह रखिये। प्रातःकाल पद्म सिद्ध तथा सुखासन पर आध घण्टा बैठिये। 'उदारता' गुण पर ध्यान कीजिये। इस सद्गुण के लाभों पर विचार कीजिये तथा साथ ही ईर्ष्या की हानियों पर भी विचार कीजिये। उन महापुरुषों का चिंतन कीजिये जो इस सद्गुण से सम्पन्न हैं। समाज में मिलते जुलते समय कल्पना कीजिये कि आपको यह

(6) **थियोसोफी की साधना**—यह विश्वबन्धुत्व के ऊपर आधारित है। सभी समान हैं। सभी ईश्वर की सन्तान हैं। बन्धुत्व भावना के सतत् स्मरण से आप ईर्ष्या से मुक्त हो जायेंगे।

मात्सर्य तथा असूया ईर्ष्या के पर्यायवाची शब्द हैं। उनमें सूक्ष्म अन्तर है। ईर्ष्या राजसिक मन में उत्पन्न होने वाली एक विशेष वृत्ति है। मनुष्य दूसरों की सम्पत्ति, सफलता तथा सद्गुणों के प्रति ईर्ष्या करता है। अपने से अधिक सम्पन्न व्यक्ति को देखते ही उसका हृदय जलने लगता है। द्वेष तथा क्रोध ईर्ष्या के ही रूपान्तर है। ईर्ष्यालु आदमी उन व्यक्तियों से द्वेष करने लग जाता है जो उससे ऊँची अवस्था में है। वह दूसरों की सफलता देखकर शोकाकुल हो जाता है। वह उस आदमी को नीचे गिराने के लिए निन्दा चुगली आदि विभिन्न पाप पूर्ण उपायों का सहारा लेता है। वह उस पर आघात पहुँचाना चाहता है। वह उसे नष्ट करने का प्रयास करता है। वह उसके मित्रों के मध्य में झगड़ा, दलबन्दी आदि का निर्माण करता है। ईर्ष्यालु आदमी के ये बाह्य भौतिक लक्षण है।

ईर्ष्यालु आदमी सोचता है कि वह स्वयं किसी प्रकार का शोक अथवा दुख न प्राप्त करें, परन्तु जिससे वह ईर्ष्या करता हैं वह आदमी कष्ट सहे या पीड़ित रहे। ईर्ष्या से बढ़कर मनुष्य की अन्य कोई पाप प्रकृति नहीं हो सकती है। यह निन्द्य, निकृष्ट तथा पाशविक है। अज्ञ, मोहित, जीव, जिनका मन बहुत ही संकीर्ण है, इस महाव्याधि के शिकार बने रहते हैं। किसी दूसरे व्यक्ति को उसकी अपनी सम्पत्ति का उपभोग करते देख चित्त से उद्वेग का होना असूया है। मात्सर्य स्वभाव वाला व्यक्ति अपने से अधिक सम्पन्न तथा शुभ गुणों वाले व्यक्ति को नहीं देख सकता, ईर्ष्या, असूया तथा मात्सर्य में यही सूक्ष्म अन्तर है।

ईर्ष्या सारी बुराइयों की जड़ है। वह सभी साधकों के मार्ग की महान बाधा है। यह साधुओं में भी प्रचलित है। यही उनके पतन का मुख्य कारण है। बहुत से विद्वान तथा पण्डित जन भी इसका शिकार बने रहते हैं। उनके संकीर्ण मन तथा अशुद्ध हृदय ही इसके कारण है। यदि किसी व्यक्ति का मन ईर्ष्या से भरा हुआ है तो वह सच्चे सुख का लेश मात्र भी अनुभव नहीं कर सकता। हृदय ईर्ष्या से विदग्ध हो रहा

हो तब भला मन में शान्ति कैसे मिल सकती है। इससे तो मन और भी अशान्त होता जायगा।

हर साधक को सदा सावधान रहना चाहिये। उन्हें नाम, यश, शारीरिक आराम तथा जिह्वा का शिकार नहीं बनना चाहिये। यदि ईर्ष्या है तो मनुष्य ईश्वर से बहुत दूर है। दूसरों के सुख में मनुष्य को सुखी होना चाहिये। दूसरों की भलाई के लिए पूर्णात्मार्पण के द्वारा उसे पहले अपने हृदय को शुद्ध बनाना चाहिये। ईर्ष्या से मुक्त होने के लिये वास्तविक संन्यास ही सर्वोत्तम साधक है। विवेक तथा वैराग्य ही ईर्ष्या को दूर करने के सुनिश्चित साधन हैं। आपको अपने जीवन के प्रति क्षण बुराई तथा भलाई सत्य एवं असत्य के बीच विवेक करना चाहिये तभी आप इस भयंकर अभिशाप से मुक्त हो सकेंगे। इसे भली भांति याद रखिये कि सभी एक ही ईश्वर की सन्तान है तथा अपने-अपने कर्मों के अनुसार भला या बुरा फल उपभोग कर रहे हैं। यदि आप भी प्रयत्न करेंगे तो उन्नति प्राप्त कर सकते हैं। सारी कामनायें तथा योग्यतायें आप में प्रसुप्त हैं। आप में सब कुछ है। प्रयास तथा संलग्नता के द्वारा ही आप अपनी क्षमताओं को प्रकट कर सकते। दूसरों से ईर्ष्या करना, दुर्बल, कायर तथा डरपोक व्यक्ति का निकृष्टतम स्वभाव है।

अन्तर्निरीक्षण, मन पर सतर्क दृष्टि, विवेक तथा ध्यान के द्वारा आपको ईर्ष्या के सभी रूपों को विनष्ट करना चाहिये। आपको उदारता के अभ्यास से ईर्ष्या को विनष्ट करना चाहिये। ईर्ष्या संकीर्ण बुद्धि की परिचायक है। उदारता द्वारा वह स्वयं विनष्ट हो जायगी।

दर्प को दूर करने की साधना

अपने को उचित से अधिक महत्वपूर्ण समझ बैठना दर्प है। अभिमान पूर्वक तथा अनुचित रूप से अपना महत्व जमाना दर्प है। यह राजसिक तथा तामसिक अहंकार, हठ, रुक्षता, धूर्तता तथा धृष्टता का सम्मिश्रण है। यह अहकार का ही विकार है। यह स्वतः अहंकार है। यह अज्ञान से उत्पन्न है। भ्रमित जीवों के दर्प के द्वारा ही माया अपनी लीला रचा करती है।

मनुष्य अपने से बड़े व्यक्ति के सथ धृष्टता पूर्वक व्यवहार करता है, उससे घृणा पूर्वक पेश आता है, उसे धिक्कारता है तथा अपमान पूर्ण शब्द बोलता है। यही दर्प है।

दूसरा व्यक्ति क्रोध में किसी व्यक्ति के सामने किताब पटकता है तथा बुरे शब्द बोलता है। यह दर्प है।

दूसरा व्यक्ति क्रोध में किसी व्यक्ति से इस तरह कहता है, "क्या जानता नहीं है कि मैं कौन हूँ? मैं तेरा मुंह बिगाड़ दूंगा। मैं तेरे दांत तोड़ डालूंगा। मैं तेरा खून पीऊंगा।" यह दर्प है।

दूसरा व्यक्ति कहता है, "मैं किसी के शासन में नहीं रहने का। मैं अपनी इच्छानुसार ही चलूंगा। कोई भी इसके विषय में न पूछे। मैं उसके सामने नहीं नाचता। मैं उसके पास क्यों जाऊं? क्या वह मुझसे अधिक शिक्षित है? आखिर यह है क्या? तुम मेरे ऊपर आज्ञा चलाने वाले कौन होते हो? यह दर्प है।

साधारणत: विचारहीन व्यक्ति जो आत्म विश्लेषण नहीं करता, कहता है—"मुझ में दर्प जरा भी नहीं है। मैं नम्र, विनीत तथा दयालु हूँ।" परन्तु जब जांच (परीक्षा) का समय आता है तो वह सैकड़ों बार बुरी तरह असफलता प्राप्त करता है।

साधक बहुत अच्छा है। वह बड़ा बुद्धिमान भी है। वह विद्वान व्यक्ति है। वह भाषण देता है। वह एकान्त कमरे में घण्टों तक ध्यान भी करता है। फिर भी वह दर्प से मुक्त नहीं है। जब कोई व्यक्ति उसकी इच्छा के प्रतिकूल काम करता है, जब कोई व्यक्ति उसकी निन्दा करता है अथवा उसकी समालोचना करता है, जब उसका आदर नहीं किया जाता तो वह दर्पयुक्त बन जाता है तथा रूक्षता पूर्वक व्यवहार करता है।

दर्प के विविध रूप हैं। मनुष्य अपने भौतिक बल के कारण दर्प रख सकता है। वह कह सकता है, "मैं अभी धक्के देकर तुझे निकाल सकता हूँ। जा भाग जा यहाँ से।" दूसरा व्यक्ति अपने धन, पद तथा अधिकार के कारण दर्पवान हो सकता है। अन्य व्यक्ति सिद्धि, नैतिक गुण, आध्यात्मिक उन्नति, संन्यास, महन्ती आदि का दर्प रख सकता है।

मनुष्य अपने बच्चे, स्त्री, धन सम्पत्ति तथा पद का संन्यास कर सकता है। वह संसार का संन्यास कर हिमालय की गुहा में कई वर्षों तक योगाभ्यास कर सकता है फिर भी उसे दर्प को त्यागने में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। आवेश में आने पर वह दर्प में भर जाता है। वह नहीं जानता कि वास्तव में वह क्या कर रहा है? वह बाद में पश्चाताप करता है। किसी भी व्यक्ति को दर्पीला बनाने में आवेश बहुत काम करता है।

अपने विचारों, शब्दों तथा कार्यों का सावधानी पूर्वक निरीक्षण कीजिये। शब्दों की शक्ति को समझिये तथा सावधानी पूर्वक उनका प्रयोग कीजिये। सबों का आदर कीजिये। मधुर तथा परिमित शब्द बोलिये। दयालु बनिये। धैर्य, प्रेम तथा नम्रता का अर्जन कीजिये। विचार कीजिये। मौन व्रत रखिये। बारम्बार विचारिए। 'यह जगत मिथ्या है। दर्प रखने से मुझे क्या लाभ होगा?' इसके विपरीत गुण नम्रता के महान लाभों का चिंतन कीजिये।

आप सैकड़ों बार विफल हो सकते हैं। परन्तु पुनः उठ जाइये। तथा अपने संकल्पों को मजबूत बना लीजिये। "कल मुझे विफलता मिली। आज मैं नम्र, दयालु तथा धैर्यवान बनूंगा।" शनैः-शनैः आपकी इच्छा शक्ति बढेगी और आप अपने शान्ति, भक्ति तथा ज्ञान के शत्रु दर्प पर विजय प्राप्त कर लेंगे।

बहुत सावधानी तथा सतर्क रहने पर भी दर्प अपना फन उठाकर फुफकारता रहेगा। विवेक का दण्ड उठाइये। नम्रता की खड्ग धारण कीजिये तथा इसके सिर को काट डालिये। दर्प अनेक सिरों वाला राक्षस है। यह रक्तबीज के समान असुर है जिसने देवी के साथ संग्राम किया था। उसके पुनः बहुत सिर निकल आयेंगे। अधिकाधिक बल, शक्ति तथा प्रयत्न के द्वारा संग्राम को जारी रखिये। प्रार्थना, ध्यान, अभ्यास, विचार, आत्म संयम, जप, कीर्तन, प्राणायाम—इन सबों का संयुक्त अभ्यास कीजिये। समन्वय योग का आश्रय लीजिये। यह पूर्णतः भस्मीभूत हो जायगा।

यदि दर्पी व्यक्ति गुहा में अथवा अपने कमरे में रहे तो उसे इस वृत्ति के उन्मूलन के लिए क्षेत्र ही नहीं है। यह उसके मन में पड़ी रहेगी

तथा उसे संतप्त करेगी। साधक को विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों से मिलकर अपने विचारों का निरीक्षण करना चाहिये। कोई आपके साथ दुर्व्यवहार करे, आपका अनादर तथा अपमान करे उस समय अपने विचारों का निरीक्षण कीजिये। यदि जांच की विषय परिस्थितियों में भी आप शान्त, नम्र तथा समत्व बुद्धि रखते हैं तो आपने इस भयंकर शत्रु पर विजय पा ली है।

जितना अधिक विद्वता होगी उतना ही अधिक दर्प भी होगा। जितना उच्च पद प्राप्त होगा उतना ही अधिक दर्प भी होगा। जितना अधिक धन होगा उतना ही अधिक दर्प भी होगा।

आप सभी इस दुर्गुण से मुक्त बनें। आप सभी नम्रता, धैर्य, दया तथा प्रेम के द्वारा इस राक्षस को मार कर नित्य सुख तथा अमृतत्व को प्राप्त करें।

द्वेष के दमन के लिये साधना

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुणा एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।

ईश्वर साक्षात्कार व्यक्ति अथवा भागवत को किसी के प्रति द्वेष नहीं रहता। वह मित्रवत् तथा कारूणिक होता है। उसमें ममता तथा अहंकार नहीं होते। वह दुख सुख में सम रहता है तथा क्षमाशील होता है। (गीता अध्याय 12–13)

मित्रता, करुणा क्षमा, निरभिमानता तथा ममता के त्याग के अभ्यास से द्वेष को दूर किया जा सकता है।

अहंकार व्यक्ति छोटी बातों से ही आसानी मे अशान्त बन जाता है। हृदय अहंकार से भरा हुआ है अतः थोड़ा सा अनादर, कटु शब्द तथा अपमान ही उसे आवेश में डाल देते हैं। अभिमान में धक्का लगने के कारण वह दूसरों से घृणा करने लगता है। अतः अभिमान तथा अहंकार को दूर करने से ही द्वेष का उन्मूलन हो सकेगा।

यदि आप किसी वस्तु से आसक्त हैं तो आप उस व्यक्ति से द्वेष करने लगेंगे जो उस वस्तु को आपसे ले लेना चाहता है। यदि आप

अधिकार तथा ममता की भावना को दूर कर निर्ममता की अवस्था प्राप्त कर लें तो द्वेष दर हो जायगा।

यदि आप में क्षमा है तो उस मनुष्य के प्रति आप द्वेष भाव नहीं रखेंगे जो आपको क्षति पहुंचाने का प्रयास करता हो।

करुणा, प्रेम, क्षमा आदि के अर्जन से द्वेष का क्षय होगा। ईश्वर साक्षात्कार ही द्वेष को पूर्णतः विनष्ट कर सकता है।

क्रोध के दमन के लिये साधना

क्रोध सारे आध्यात्मिक पुण्यों को एक ही क्षण में विनष्ट कर डालता है। यह सर्वभक्षी तथा विनाशकारी है। यह शान्ति का महान शत्रु है तो नरक का राजपथ है। यदि साधक आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति कर सुख प्राप्त करना चाहता है तो उसे इस क्रोध पर विजय पाना चाहिये। जिसने क्रोध पर विजय पाई है वह निश्चय ही योगी है। भगवान कृष्ण भी गीता में कहते हैं जो इस लोक में रहते हुए भी शरीर त्याग से पहले काम तथा क्रोध से उत्पन्न आवेगों को सहन करने में समर्थ है वही योगी है। वह सुखी मनुष्य है। (गीता अध्याय 5–23)

धैर्य का पर्याप्त विकास कीजिये। अधीर होने से ही लोग क्रोध के वशीभूत हो जाते हैं। मन को सदा क्रोध के विपरीत सद्‌गुण धैर्य के चिन्तन में लगाये रखिये। यह राजयोगियों की प्रतिपक्ष भावना है

सर्व प्रथम चित्त में उठते वाली चिड़चिड़ेपन की लघु ऊर्मियों को वशीभूत करने का प्रयास कीजिये। उसे प्रारम्भ में ही कुचल डालिये। उसे वडी तरंग में न परिवर्तित होने दीजिये। यदि आप क्रोध को वश करने में समर्थ न हों तो तुरन्त उस जगह को छोड़ दीजिये तथा ॐ का जप करते हुए टहलने के लिये निकल जाइये। कुछ ठंडा जल पीजिये। एक, दो तीन, चार से वीस तक गिनिये। ॐ शान्ति, ॐ, शान्ति का जप कीजिये। अधिक वहस न कीजिये। मधुर बोलिये। नपे तुले शब्द व्यवहार कीजिये। यदि कोई गाली देता है अथवा अपमानित करता है तो शान्त वने रहिये। आत्मा से एक बनिये। आत्मा सवों में एक है। आत्मा को न तो हानि पहुंच सकती है और न उसे कोई अपमानित ही

कर सकता है । क्रोध न कीजिये । जप ध्यान तथा कीर्तन में नियमित रहिये । उससे आपको अत्यधिक आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति मिलेगी ।

भोजन का स्वभाव पर अधिक प्रभाव पडता है । दूध, दही, मट्ठा, फूल, पालक, गेहूं, पिस्ता आदि सात्विक आहार कीजिये । प्याज, लहसुन, मांस, शराब आदि उत्तेजक पदार्थों का त्याग कीजिये ।

नित्य दो घन्टे मौन पालन कीजिये तथा रविवार को छः घन्टे के लिये मौन व्रत कीजिये । इससे आपकी वाणी का संयम होगा । उत्तेजना में मनुष्य बिना नियत्रण सब कुछ बोल जाता है । जीभ पर शासन नहीं रहता । अतः उत्तेजक आवेगों को वशीभूत करने के लिये मौन बडा ही आवश्यक है ।

प्राण मन को लता के समान आवेष्टित किये रहता है । प्राण मन का ओवर कोट है । प्राण को वशीभूत करने से मन वश मैं हो जाता है । प्राणायाम के अभ्यास करने से वाणी पर नियंत्रण हो जायगा । इससे क्रोध पर नियंत्रण करने के लिये आपको पर्याप्त शक्ति प्राप्त होगी ।

वेदान्ती शरीर तथा मन को मिथ्या कोष समझते हुए उनका निषेध करता है । वह विचार करता है 'मै कौन हूं ?' तथा 'नेतिनेति' का अध्यास करता है । मै शरीर नहीं हूं न तो मन ही हूं सच्चिदानन्द रूपः शिवोऽहम—मैं सुखमय शिव अथवा आत्मा हूं वह ब्रह्म अथवा आत्मा में एकता स्थापित करता है । उसके लिये जगत मिथ्या है । वह ॐ का कीर्तन करता है, ॐ का जप करता है, ॐ का गायन करता है, ॐ पर ध्यान करता है तथा ॐ के शाश्वत उद्गम स्थल से आत्म बल प्राप्त करता है । यदि आप सदा मिथ्या दृष्टि अथवा दोष दृष्टि को प्रश्रय देंगे, यदि आप क्रोध के दोष तथा धैर्य के लाभ पर विचार करेंगे तो आप कभी भी क्रोधी नहीं बन सकते ।

इन विधियों के सम्मिलित अभ्यास से आप क्रोध का दमन कर सकेंगे तथा आध्यात्मिक बल, शान्ति एवं सुख प्राप्त करेंगे ।

भय पर विजय पाने के लिये साधना

साधना पथ में भय बहुत बडी बाधा है। कायर साधक आध्यात्मिक मार्ग के लिये पूर्णतः अनधिकारी है। यदि अमृततत्व को प्राप्त करना है तो अपने जीवन की भी तिलांजलि देनी होगी। आत्म संयम तथा आत्म त्याग के बिना आध्यात्मिक सम्पत्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

भय तो काल्पनिक असत् वस्तु है। यह हर व्यक्ति की नैसर्गिक वृत्ति है। यहां तक कि प्रकृति के तत्व, प्राणी, कीडे तथा पृथ्वी के सभी भूत भय के वशीभूत है। यदि आप भौतिक आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति करना चाहते हैं तो मन की इस व्याधि को अवश्य दूर भगाना होगा। भय पर विजय पा लेने पर मनुष्य सफलता के प्रशस्त मार्ग को प्राप्त करता है। भय की वस्तुओं से मुक्त होने पर ही भय से मुक्ति मिल सकती है। मन को अनुशासित करना, अन्तरात्मा की शक्ति को व्यक्त करना, व्यावहारिक मामलो को हाथ में लेना, अपने ज्ञान को व्यवहार में लाने का प्रयत्न करना—ये सभी भय पर विजय प्राप्ति के साधन हैं। ऐसा अनुभव करना चाहिये कि इस जगत में कोई भी वस्तु नहीं है जिससे मनुष्य भय करे। आपको वीर, साहसी तथा शौर्य सम्पन्न होना चाहिये।

साधारणतः भय ही दुख, क्षति तथा अशान्ति का कारण है। भय की वृत्ति माता-पिता तथा कुल पर भी निर्भर करती है। यही इसकी व्यापकता का कारण है। वातावरण तथा शिक्षा का भी इसमें महत्वपूर्ण हाथ रहता है। अपने से अतिरिक्त किसी महती शक्ति का विचार ही भय का मुख्य कारण है भयभीत होने पर मन का दृष्टिकोण ही सापेक्षतः वदल जाता है, मनुष्य की बुद्धि मारी जाती है, मन असंतुलित हो जाता है, विचार तथा कार्यों में विषमता आ जाती है। हिस्टीरिया तथा स्नायु दौर्बल्य जनित रोग भय से ही होते हैं। भयावह परिस्थिति से भागने की प्रवृत्ति तथा कामना भय के सद्यः परिणाम हैं।

परन्तु भय पर विजय पाई कैसे जाय? जब कभी वच्चा भयभीत होता है तो आप कहते हैं, "कुछ भी डरने की वस्तु नहीं है।" इस तरह आप भय की वस्तु का ही निषेध करते हैं। इस विधि में भी निषेध पहला

कदम है। तदनतर आप बच्चे की सभी बात बतला देते हैं। इस तरह आप उसे समझा देते हैं कि उसका कल्पना ने ही भय की भावना उत्पन्न की थी। आपको सत्य का निश्चय करना चाहिये। आपको सतत इस ज्ञान का विकास करना चाहिये कि इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो भय पैदा करे। असाधारण दृश्य अथवा विचित्र वाणी को सुनते ही मन अचम्भित हो उठता है। अतः इस तरह की धारणा जमानी चाहिये कि ये सब वस्तुयें मिथ्या ही हैं तथा उनके परे के तत्त्व को जानना चाहिये। भय के पूर्णतः हट जाने पर कुछ भी आपको क्षति नह पहुंचा सकता।

केवल मन को शिक्षित करने से साहस नहीं बढेगा। इस अवसर पर व्यवहार में आने पर ही साहस की वृद्धि होगी। अभ्यास से युक्त सुविकसित ज्ञान ही मनुष्य को भय से मुक्त कर सकता है।

भय के निषेध से मनुष्य भय की वस्तु पर ही विजय पा लेता है। आपको अभी मन में द्वैत को नहीं रखना चाहिये। आपको सदा शिव प्रेम तथा विश्व बन्धुत्व का विकास करना चाहिये। शक्ति की गुरुता अथवा लघुता नहीं है। सुख दुख कहीं नहीं है। कहीं भी भय नहीं है। यह प्रारम्भिक अवस्था है। सभी ब्रह्म के ही रूप है। सभी ब्रह्म में ही विलीन हो जाते हैं। इस नश्वर शरीर के साथ सारी आसक्ति का त्याग कर तथा अन्तर्वासी परमात्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर कर आप इस भावना का विकास कर सकते हैं। यह प्रक्रिया भय को पूर्णतः दूर कर देती है तथा नित्य उत्पत्ति नहीं होती। आत्म ज्ञान ही पूर्णतः भय को विनष्ट करता है।

भक्ति प्रधान साधक को ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये। उसे ईश्वर की शरण में सर्व भाव से जाना चाहिये। पूर्ण विश्वास रहे कि ईश्वर ही एकमेव आश्रय तथा अवलम्ब है। आपको बहुत ही व्यावहारिक बनना चाहिये। जिनसे आप भयभीत हैं, वीरता पूर्वक पहले उनका सामना कीजिये।

आपको ग्रन्थों में वर्णित सत्य के ऊपर विभिन्न व्याख्याओं पर ध्यान करना चाहिये, तभी आपका ज्ञान नेत्र उन्मीलित होगा, आपको

सन्मति प्राप्त होगी तथा आप सत्य को जान लेंगे। यही ईश्वर की पूजा है। यही आपको सभी बुराईयों से मुक्त करता है।

मन से चिन्तन करते हुए, शरीर से अभ्यास करते हुए, सदा आध्यात्मिक विचारों पर मनन करते हुए तथा मन के उच्च स्तर में निवास करते हुए आप भय को तो दूर भगायेंगे ही, साथ ही ब्रह्म को भी प्राप्त कर लेंगे।

अहंकार–जन्म मृत्यु का बीज

1. अहंकार मनुष्य की सबसे अधिक खतरनाक दुर्बलता है। यह पतन को ले जाता है।
2. अहंकार के कारण मनुष्य समझता है कि वही सब कुछ कर रहा है तथा वह बन्धन में पड जाता है।
3. जिस क्षण अहंकार आ जाता है उसी क्षण ईश्वरी शक्ति का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है।
4. अहंकार के वशीभूत हो कर ही मनुष्य बुरे कर्म करता है।
5. अहंकार रहस्यमय गैस है जो विचारशील व्यक्ति के लिये विलीन हो जाता है, परन्तु अविवेकी सांसारिक व्यक्ति के लिये यह चट्टान की तरह प्रतीत होता है, जिसे बारुद तथा तथा बम से भी ध्वस्त नहीं कर सकते।
6. अहंकार को विनष्ट कर, राग द्वेष को नष्ट कर, ब्रह्म से तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर साधक जीवन मुक्त बन सकता है।
7. नम्रता वह प्रबल बम है जिससे अहंकार का प्रासाद ध्वस्त हो सकता है।
8. अहंकार को नष्ट करने की साधना ही अहिंसा है।

9. जो किसी भी वस्तु की कामना नहीं करता, जो हर समय म की शान्ति बनाये रखता है वह अहंकार भावना से प्रभावि नहीं होता।

10. जो अहंकार से मुक्त है उन्हें भला कर्म करके भी कुछ प्राप नहीं करना है और न बुरा कर्म करके ही कुछ क्षा उठानी है।

11. अपनी आत्मा को जानने की इच्छा, मुक्ति की कामना सदाचारी, जीवन बिताने की प्रेरणा—ये सब सात्विक अहंकार से ही उत्पन्न हैं।

कामना—सभी दुःखों का मूल कारण

1. कामना शान्ति का शत्रु है। काम भक्ति का शत्रु है। काम ज्ञान का वैरी है। लैंगिक कामना सबसे प्रबल कामना है। विवेक, वैराग्य, 'मैं कौन हूं?' के विचार तथा नियमित ध्यान के द्वारा इस कामना को नष्ट कर डालिये।

2. कामना ही पुनर्जन्म तथा सभी प्रकार के दुखः शोक आदि का कारण है। कामना से ही विभिन्न प्रकार के संकल्प उत्पन्न होते हैं।

3. कामनायें अनेक हैं। वे अजेय तथा अतृप्त हैं। भोग से उनकी तृप्त नहीं होती, वरन् इससे उनमें अधिक दृढता ही आती है।

4. तृष्णा से अहंकार बढता है, अहंकार से नाम रूप, मन तथा शरीर की उत्पत्ति होती है। नाम रूप से इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। इन्द्रियों से स्पर्श, स्पर्श से संवेदन, संवेदन से ग्रहण, ग्रहण से जन्म से वृद्धता मृत्यु शोक तथा दुख की उत्पत्ति होती है। यह तृष्णा घनीभूत दुख ही है। वैराग्य, सन्यास, आत्म-संयम तथा ध्यान के द्वारा तृष्णाओं की ज्वाला को बुझा दीजिये।

5. कामनाओं के नष्ट होने पर ईश्वर की प्राप्ति होती है। कामना से आसक्ति होती है। कामना ही पुनर्जन्म लाती है। कामनाओं के जाल को नष्ट कर डालिये तथा मन को शुद्ध बनाइये। शुद्ध मन को परमात्मा में लगा दीजिये तथा नित्य सुख के अमर धाम को प्राप्त कर लीजिये।

6. मन अपनी कामनाओं के द्वारा इस जगत से आबद्ध है। जब वह सांसारिक कामनाओं से मुक्त हो जाता है तब उसे मोक्ष प्राप्त होती है। मन की कामना के कारण हा विषयों में आकर्षण होता है।

7. जो कामनाओं से मुक्त है वही सम्राट है चाहे वह राजा हो या रंक जिसमें बहुत सी कामनायें हैं वह दरिद्र ही है।

8. जहां इच्छा है वहां जगत है। इच्छाओं का नाश ही आनन्द है। निष्काम्य मनुष्य प्रकृति के तत्वों पर भी अपना साम्राज्य स्थापित कर लेता है।

9. ब्रह्म को जानने की इच्छा ही सभी इच्छाओं की परिपूर्ति है।

10. शक्ति की कामना हवा के झौंके का काम करती है जिससे योग दीप बुझ जाता है।

11. कुण्डलिनी के जग जाने पर भी आपको अधिक लाभ न होगा, यदि आपके चित्त में अभी भी साँसारिक वासनायें तथा इच्छायें बनी हुई हैं।

12. कामनाओं के उन्मूलन से ही शम की प्राप्ति होती है।

13. मन सदा स्पन्दनशील है स्पन्दन कभी कभी तीव्र तो कभी-कभी मन्द हो जाता है। मन का संवेदन ही शीतोष्ण, सुख, दुख, उत्पन्न करता है।

14. जन्म मृत्युका चक्र दुःखमय है। विवेक, वैराग्य, त्याग तथा ईश्वर पर ध्यान के द्वारा कामाग्नि को बुझा डालिये। आप नित्य सुख के धाम को प्राप्त कर लेंगे।

स्वार्थ–महापातक

1. स्वार्थ सारे पाप का मूल है। यह अज्ञान से उत्पन्न है। स्वार्थी मनुष्य लोभी पापी होता है। यह ईश्वर से दूर है। वह अपने स्थार्थ के लिये कुछ भी कर सकता है। उससे चरित्र नहीं है। उसे मन की शान्ति का जरा भी अनुभव नहीं है।

2. यदि मनुष्य स्वार्थी तथा कृपण है तो वह व्यर्थ जीवित रहताहै। यदि उसमें उदार हृदय नहीं, दया और सहानुभूति नहीं, यदि वह गर्म, तप तथा ध्यान मय जीवन नही बिताता यदि वह धार्मिक संस्थाओं गुरु तथा सन्तों की सेवा नहीं करता तो उसका जीवन व्यर्थ ही है।

3. स्वार्थ भावना से आध्यात्मिक उन्नति में बाधा पहुंचती है। यदि कोई अपनी स्वार्थ भावना को नष्ट कर दे तो उसकी आधी साधना समाप्त हो गई। इस स्वार्थ भाव के उन्मूलन के बिना समाधि संभव नहीं है इस महारोग को दूर करने के लिये साधक को अपनी सारी शक्ति लगा डालनी चाहिये। दीर्घ काल तक निष्काम्य सेवा द्वारा इसे विनष्ट किया जाता है।

4. स्वार्थी मनुष्य अधार्मिक है। उसमें आसक्ति तथा भेद भाव का बाहुल्य है। वह दिव्य गुणों का विकास नहीं कर सकता है। जो स्वार्थ रहित है, जिसमें धार्मिक वृत्ति है उसी में योगी बनने की कामना उत्पन्न होगी।

5. स्वार्थ हृदय को संकीर्ण बनाता है तथा मनुष्य को हिंसा कार्य तथा सम्पत्ति के अपहरण के लिये बाध्य करता है। स्वार्थ द्वारा ही मनुष्य बुरे कर्मों में प्रवृत्त होता है।

6. स्वार्थ के कारण ही आप परिवार के सदस्यों तक ही सीमित हो चले हैं। आप सदा यही सोचते हैं 'मेरा परिवार उन्नत करें। केवल हम लोग ही सुखी रहें। हमें दूसरों के सुख से क्या काम ?'

7. किसी भी व्यक्ति से अधिक घना सम्पर्क न रखिये और न मित्रता का अभाव ही हो। किसी भी चीज में अति होना बुरा है। अतः सदा मध्यम मार्ग को अपनाइये।

विभिन्न सिद्धियों के लिए साधना

(1) ईश्वर साक्षात्कार के लिए चार साधनायें

अपने हृदय में सतत् प्रेम तरंगों को उठाइये। ईश्वरीय प्रेम की मा का अनुभव कीजिये। दिव्य प्रेम की विभा में स्नान कीजिये। ठनाइयों, बाधाओं, विपत्तियों तथा शोकों का सामना करते हुए विकल बनिये। मन की शान्ति बनाये रखिये। अपनी इच्छा शक्ति को ुशासित कीजिये। आप प्रबल आन्तरिक शक्ति प्राप्त करेंगे। आप घ्र ही आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करेंगे।

उग्र कार्य में संलग्न जीवन बिताइये। मन को सदा शान्त रखिये। ा ही मन मंत्र का जप कीजिये। सबों से मिलिये। इस भावना से ों की सेवा कीजिये कि सभी ईश्वर के ही रूप हैं। सभी में ईश्वर ो देखिये।

दूसरों के विचारों से प्रभावित न बनिये। सत्य के मार्ग पर अपने न्तःकरण की सम्मति से, आत्मा की मधुर एवं धीमी वाणी को सुनते ए वीरता एवं प्रसन्नता पूर्वक आगे बढ़ते जाइये। सात्विक व्यक्तियों का ाथ कीजिये।

ईश्वर का चिंतन करते समय शुद्धता, असीमता तथा अमृतत्व के विचारों को संयोजित कीजिये। मानसिक पूजा भी कीजिये। यदि आपका ईश्वरार्पण अशेष तथा पूर्ण है तो ईश्वरीय कृपा अबाध रूप से प्रभावित होगी। अपने विचारों तथा कामनाओं को वशीभूत कीजिये। अपने विचारों पर सावधानीपूर्वक निरीक्षण रखिये। मानसिक कारखाने में किसी भी बुरे विचार को न घुसने दीजिये। ईश्वर साक्षात्कार के लिए महान प्रेम रखिये। आप जीवन लक्ष्य को प्राप्त करेंगे।

(2) आत्म बल के लिए साधना

अवधान, तितिक्षा, राग द्वेष, पर जय तप (जैसे एक पांव पर खड़े रहना, तपती धूप में बैठना, पंचाग्नि तप, तीव्र शीतकाल में ठण्डे जल में खड़ा होना, हाथों को ऊपर उठाकर एक घन्टे तक एक ही स्थिति में रखना, उपवास, धैर्य, क्रोध पर नियंत्रण, सहन शीलता, नम्रता, मनोनिग्रह, सत्याग्रह, दैनन्दिनी का नित्य पालन—इन सबों से आत्म बल का विकास होता है। दूसरों की बात को शुष्क, होने पर भी, धैर्य पूर्वक सुनिये। बकबक न कीजिये। धैर्य पूर्वक सुनने से आत्मबल बढ़ता है तथा दूसरे के हृदय पर विजय की प्राप्ति होती है। ऐसे कार्यों को करना चाहिये जो मन को पसन्द न हों। इससे भी इच्छाशक्ति विकसित होगी। जो अरुचिकर कार्य हैं वे कुछ समय के पश्चात् रुचिकर हो जायेंगे।

बुरी परिस्थितियों के विरुद्ध शिकायतें न कीजिये। जहां भी आप हों तथा जहां भी आप जायें अपना मानसिक जगत तैयार रखिये। जहां भी आप जायेंगे वहां कुछ न कुछ कठिनाइयां तथा असुविधायें आपको मिलेंगी ही। यदि हर क्षण तथा हर कदम पर आपका मन आपको मोहित करता है तो उपयुक्त साधनों से बाधाओं के जीतने की कोशिश कीजिये। बुरे प्रतिकूल वातावरण से भागने की कोशिश न कीजिये। ईश्वर ने आपको वहां इसलिए रखा है कि आप शीघ्र उन्नति करें।

यदि आपको सभी प्रकार की सुविधायें प्राप्त हों तो आप सबल नहीं बन सकेंगे। नये स्थान पर जाने से आपका मन भ्रमित हो जायगा क्योंकि आपको वे सभी सुविधायें वहां प्राप्त नहीं हो सकती। सभी स्थानों से अधिकाधिक लाभ उठाइये। परिस्थितियों तथा वातावरण के विरुद्ध शिकायत न कीजिये। अपने मानसिक जगत में रहिये। आपके मन को कुछ भी अशान्त नहीं बना सकता। आप गंगोत्री के निकट भी राग द्वेष पायेंगे। आप इस जगत के किसी भी स्थान में आदर्श स्थान तथा वातावरण नहीं पा सकते। काश्मीर बहुत ठण्डा है, दृश्य भी बहुत मनोरम हैं, परन्तु रात्रि में मच्छरों का उत्पात रहता है। आप सो नहीं सकते। वाराणसी संस्कृत विद्या का केन्द्र है, परन्तु गर्मियों में वहां लू चलती है। हिमालय का उत्तरकाशी बहुत ही सुन्दर है, परन्तु आप वहां फल या सब्जी नहीं प्राप्त कर सकते, जाड़े में कड़ाके की सर्दी पड़ती है।

यह जगत अच्छाई और बुराई का सापेक्ष लोक है। इस बात को सदा याद रखिये। किसी भी स्थान में किसी भी अवस्था में सुख पूर्वक रहिये। आप सबल बनेंगे तथा आध्यात्मिक धाम के साम्राज्य को प्राप्त करेंगे। आप किसी भी कार्य में आशातीत सफलता प्राप्त करेंगे। आप किसी भी कठिनाई को प्राप्त कर मकेंगे।

संकल्प शक्ति के विकास के लिए धारणा का अभ्यास बड़ा ही सहायक है। आपको मन की आदतों का पूरा ज्ञान होना चाहिये। आपको मन के विक्षेप को दूर करने के लिए उपयुक्त साधनों का ज्ञान होना चाहिये। विचार, स्मृति तथा धारणा के विकास एवं संयम एक ही विषय के अन्तर्गत है। आप यह नहीं बतला सकते कि कहां धारणा अथवा स्मृति का अभ्यास बन्द होता है तथा संकल्प शक्ति का प्रारम्भ होता है। कोई कठिन नियम लागू नहीं है। धारणा सम्बन्धी रहस्यों के विशेष ज्ञान के लिए कृपया मेरी पुस्तक 'ध्यान योग रहस्य' पढ़िये।

श्री ग्लैडस्टन तथा श्री बेलफर शैया पर जाते ही संकल्प मात्र से गम्भोर मुद्रा में चले जाते थे। महात्मा गांधी को भी इसका अभ्यास था। वे जब चाहते प्रातः उठ जाते थे। चित्त उनका आज्ञाकारी सेवक था। आप में से हर व्यक्ति को गांधी तथा ग्लैडस्टन की तरह संकल्प के द्वारा इस आदत का विकास करना चाहिये। अधिकांश लोग शैया पर घन्टों करवटे बदलते रहते हैं, परन्तु आधे घन्टे के लिए भी गम्भीर निद्रा का सुख नहीं ले पाते। निद्रा की गम्भीरता ही मनुष्य में ताजगी लाती है, निद्रा का परिमाण नहीं है। एक घन्टा की गहन सुषुप्ति शरीर तथा मन को स्फूर्ति प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। जैसे ही सोने जायें मन को ढीला छोड़ दें तथा संकेत दें, "मुझे अच्छी नींद आयेगी।" कुछ भी न सोचिये। नेपोलियन को यह आदत थी। जिस समय रणभेरी बजती थीं तथा संग्राम का श्रीगणेश होता था उस समय भी वह खर्राटे लेता था। जिस क्षण वह चाहता उसी क्षण उसका चित्त उसे उठा देता था। शांत मन नेपोलियन संग्राम में शेर की तरह प्रतीत होता था। चलती कार, ट्रेन या वायुयान में वैठे-वैठे ही सो जाने की आदत डालिये। डाक्टर, वैद्य, वकील तथा व्यापारियों के लिए यह वहुत ही लाभदायक है। आजकल जीवन वड़ा जटिल वन गया है। व्यस्त लोग सोने के लिए भी

पर्याप्त समय नहीं पाते। जब कभी उन्हें अवकाश मिले, आंखें बन्द कर किसी भी स्थान में थोड़ा सो लेना चाहिये। इससे बहुत विश्राम मिलेगा। वे भावी कार्यों को अच्छीं तरह कर सकेंगे। व्यस्त लोगों के लिए यह आदत वरदान स्वरूप ही है। उनकी स्नायु में बहुत तनाव तथा दवाव रहता है। यदा कदा शिथिल होकर सो लेने से वे आगे के कार्यों के लिए सदा शक्तिमान रहेंगे। डाक्टर एनीबेसेन्ट गाड़ी में यात्रा करते समय भी सम्पादकीय लेख लिख लिया करती थी। हावड़ा अथवा बम्बई के स्टेशन पर भी, जहां सदा ट्रेने चला करती हैं, मनुष्य को सो लेने की आदत रहनी चाहिये। कुछ व्यस्त डाक्टर शौचालय में ही अखबार पढ़ लिया करते हैं। वे अपने मन को सदा व्यस्त रखते हैं। मन को सदा व्यस्त रखना शारीरिक तथा मानसिक ब्रह्मचर्य के लिए सर्वोत्तम साधन है। जो लोग प्रखर व्यक्तित्व को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें हर क्षण का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिये तथा मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करनी चाहिये। गप शप का पूर्णत: त्याग कर देना चाहिये। हम में से हर व्यक्ति को समय के मूल्य का ज्ञान रखना चाहिये। यदि आप अपना समय उपयोगी कार्यों में बिताते हैं तो निश्चय ही आपका आत्मवल बढ़ेगा। संलग्नता तथा स्थिरता, दिलचस्पी तथा अवधान, धैर्य तथा अध्यवसाय, श्रद्धा तथा आत्म निर्भरता इनसे मनुष्य विश्व विख्यात व्यक्ति बन सकता है।

(3) इन्द्रिय दमन के लिए साधना (1)

सारी इन्द्रियों में त्वगिन्द्रिय (स्पर्श इन्द्रिय) का दमन करना बड़ा ही कठिन है। आप सदा कोमल वस्तुओं को पसन्द करते हैं। आप रुखे बिछावन को नहीं चाहते। आप कोमल बिछावन, गलीचा, रेशमी तकिया, कोमल चादर पसन्द करते हैं। आप गर्म तथा वहुत ठण्डी वस्तुओं को छूना नहीं चाहते। आप नंगे पाव नहीं चलना चाहते। पत्थर तथा कांटों से बचने के लिए जूता चाहिये। आप खुरदरी खादी पहनना पसन्द न कर 1901 ग्लासको मलमल या डाका मसलिन पसन्द करते हैं। आप सीमेन्ट के चिकने फर्श पर गद्दे के ऊपर बैठना पसन्द करते हैं। आप पीठ के लिए भी तोशक चाहते हैं। आप भूमि पर अथवा नीचे बैठकर अपना काम जारी नहीं रख सकते।

आप कड़ी रोटी या अधपके आल नहीं चाहते । आप इडली, दोसा तथा मालपूआ पसन्द करते हैं ।

आप शीतकाल में पर्वतीय स्थान में नहीं रहना चाहते । ग्रीष्म ऋतु में आप मैदानी भाग में नहीं रहना चाहते । जाड़ों में आप गर्म जल से स्नान करते हैं तथा गर्मियों में ठंडे जल से । आप जाड़े में ठंडे जल से स्नान नहीं करते और न तो गर्मियों में गर्म जल से ।

आप कठोर शब्द सुनना पसन्द नहीं करते । आप मधुर संगीत चाहते हैं । आप अस्तव्यस्तता पसन्द नहीं करते । आप चाहते हैं कि सभी वस्तुयें सुव्यवस्थित हों ।

स्पर्श से ही सुख का अनुभव होता है । हर प्रकार के सुख के लिए स्पर्श की आवश्यकता है । स्पर्श ही सभी इन्द्रियों की कुन्जी है । यदि आप स्पर्श इन्द्रिय पूर्णतः नियंत्रित कर लें तो आप जितेन्द्रिय बन जायें । स्पर्श ही सभी इन्द्रियों का सार है । यह सभी इन्द्रियों में प्रधान है । अतः स्पर्श इन्द्रिय तथा इसके सारे विभिन्न विकारों को नियन्त्रित कीजिये ।

वायु स्पर्श इन्द्रिय का अधिष्ठाता देव है । वायुदेव तथा उनके पुत्र हनुमान जी की आराधना कीजिये । आप सुगमता पूर्वक त्वगिन्द्रिय को वशीभूत कर लेंगे । वह मन से निकट सम्बन्ध रखता है । यह वायु के समान चंचल भी है ।

(4) इन्द्रिय दमन के लिये साधना (2)

किसी भी एक इन्द्रिय की अशान्ति के कारण बहुत से साधक समाधि में प्रवेश नहीं कर पाते । आध्यात्मिक साधना के लिए इन्द्रिय दमन अत्यावश्यक है ।

वैराग्य का विकास कीजिये । वैराग्य तथा इन्द्रिय दमन के बिना ध्यान तथा समाधि सम्भव नहीं है । वैराग्य की कमी होने पर शक्ति वह निकलेगी । विषय पदार्थों से अनाशक्ति ही वैराग्य है । मानसिक अवस्था है ।

इन्द्रियों का दमन कीजिये। अन्तर्निरीक्षण द्वारा पता लगा लीजिये कि कौन सी इन्द्रिय आपको तंग कर रही है। उन विषयों का परित्याग कीजिये जिन्हें वह इन्द्रिय पसन्द करती है। विषय भोग की तृष्णा को ही नष्ट कर डालिये। तभी आप परम शान्ति या समाधि में स्थित होंगे।

इन्द्रियों को अनुशासित कीजिये। सत्य बोलिये। अल्प बोलिये। नित्य प्रति दो घन्टे मौन रहिये। मधुर बोलिये। प्रिय बोलिये। कटु शब्द न बोलिये। किसी को गाली न दीजिये। यही जिह्वा का संयम है।

सिनेमा न जाइये। गली से गुजरते समय अपने पैर के अंगूठे की ओर देखिये। कामुक निगाह से महिलाओं की ओर न देखिये। इधर उधर न देखिये। यही नेत्र का संयम है।

नृत्य मण्डली में न जाइये तथा अश्लील संगीत न सुनिये। विषय संगीत का त्याग कीजिये। सांसारिक वार्ता न सुनिये। यही कान का संयम है।

सुगन्धित इत्र आदि का प्रयोग न कीजिये। यही घ्राणेन्द्रिय का संयम है।

खटाई, चटनी, इमली, चाय, काफी, प्याज, मिष्ठान्न आदि का त्याग कीजिये। एक सप्ताह तक नमक और चीनी का परित्याग कीजिये। सरल आहार पर जीवन व्यतीत कीजिये। एकादशी के दिन उपवास कीजिये या दूध पर रहिये। यही जिह्वा का संयम है। ब्रह्मचर्य का पालन कीजिये। यही जननेन्द्रिय का संयम है।

कठोर चटाई पर सोइये। नंगे पैर चलिये। छाते का प्रयोग न कीजिये। यही स्पर्श इन्द्रिय का संयम है। मन को इष्ट देवता पर स्थिर कीजिये। इसके भटकने पर बारम्बार मूर्ति पर ही लौटा लाइये। मन के विक्षेप को दूर करने तथा एकाग्रता के विकास के लिए यही साधना है। नियमित तथा सतत् अभ्यास के द्वारा आप मन को स्थिरता पूर्वक ईश्वर पर लगा सकते हैं।

आप ऐसा सोच सकते हैं अथवा कल्पना कर सकते हैं कि इन्द्रियां आपके वशीभूत हो गई है। अचानक ही आप उनका शिकार बन जायेंगे। आपको एक ही इन्द्रिय पर नियंत्रण नहीं, वरन् सभी इन्द्रियों पर नियंत्रण होना चाहिये। इन्द्रियां किसी भी समय उपद्रवी वन सकती हैं। प्रतिक्रिया हो सकती है। सावधान रहिये।

(5) रागद्वेष पर विजय प्राप्ति के लिए साधना (1)

आकर्षण अथवा आसक्ति को राग कहते हैं। विकर्षण अथवा घृणा को द्वेष कहते हैं। राग तथा द्वेष मन की दो वृत्तियां हैं। ये दोनों ही अविद्या से उत्पन्न हैं। यह रहस्यमय संसार रागद्वेष से ही चालित है। रागद्वेष माया के दो प्रबल अस्त्र हैं। जीव इस रागद्वेष के सबल पाश से ही बधा हुआ है।

रागद्वेष की चार अवस्थायें हैं—उदारावस्था, विच्छिन्नावस्था, तनु अवस्था तथा दग्ध अवस्था। सांसारिक व्यक्तियों में उदार तथा विच्छिन्न (सुप्त) अवस्था पाई जाती है। यह बहुत ही हानि पहुँचाता है। उदारावस्था में यह मनुष्य को पूर्णतः वशीभूत कर डालता है। मनुष्य रागद्वेष का शिकार बन जाता है। उसे रागद्वेष के ऊपर अल्प मात्र भी नियंत्रण नहीं रहता। विच्छिन्न अवस्था में रागद्वेष छिपा रहता है। जब आप अपनी स्त्री से झगड़ते हैं तो राग कुछ समय के लिए छिपा रहता है। वह मुस्कुराती तथा हंसती है तब राग पुनः प्रगट हो जाता है। साधक साधना करते हैं। वे शनैः-शनैः राग तथा विश्वप्रेम का विकास करते हैं। उनमें रागद्वेष क्षीण हो जाता है। वे अधिक उपद्रव नहीं करते। हां, सुखद वस्तुओं के सम्पर्क में वे धीरे-धीरे सिर उठा सकते हैं, परन्तु विवेक तथा विचार के दारा उन्हें नष्ट कर दिया जाता है। जीवन्मुक्त में ज्ञान अथवा समाधि के दारा रागद्वेष पूर्णतः विनष्ट हो जाते हैं।

चाहे कहीं भी जाइये आप रागद्वेष पायेंगे। यहां तक कि चिरंतन हिम प्रदेश में भी, माउन्ट एवरेस्ट तथा गंगोत्तरी में भी आप रागद्वेष पायेंगे। मनुष्य जहां भी जाता है अपने साथ वासना भी लेते जाते हैं। मानवी प्रकृति सर्वत्र समान ही है। यदि आप आध्यात्मिक मार्ग में

उन्नति करना चाहते हैं तो आपको इनकी उपेक्षा करनी होगी तथा अपने चतुर्दिक अपना वातावरण तैयार करना होगा।

रागद्वेष वासना तथा गुण में पारस्परिक सम्बन्ध है। रागद्वेष स्वतः ही मलिन वासना है जो रजोगुण एवं तमोगुण के संस्कार से उत्पन्न है। वासना, संस्कार, गुण तथा रागद्वेष माया के जादू हैं। एक ही वस्तु कई रूपों को धारण कर लेती है। एक ही वस्तु छिपकली की तरह रंग बदलती रहती है। एक ही वस्तु भूत की तरह अपना आकार बदलती रहती है। राग वासना बन जायगा, वासना संस्कार बन जायगी, संस्कार गुण बन जायगा। यह खेल बड़ा ही रहस्यमय है। माया के कार्यों को समझना बड़ा ही कठिन है। भगवान ही माया की चालों को समझते हैं क्योंकि माया उन्हीं की अनिवर्चनीया शक्ति है। यदि आप अज्ञान को नष्ट कर देंगे तो अविद्या की शृंखला नष्ट हो जायगी।

सांसारिक मनुष्य इन्द्रिय विषयों का चिंतन करता है तथा उनके साथ राग रखता है। राग से कामना की उत्पत्ति होती है, काम से क्रोध, क्रोध से सम्मोह, सम्मोह से स्मृति भ्रम, स्मृति भ्रम से बुद्धिनाश तथा बुद्धिनाश से मनुष्य विनाश को ही प्राप्त कर लेता है। परन्तु संयतात्मा ज्ञानी इन्द्रियों को रागद्वेष से मुक्त रख कर विषयों में रमते हुए भी, आत्म प्रभुत्व के कारण शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है।

जहां कहीं भी द्वेष है वहां क्रोध भी है। क्रोध द्वेष का ही चिर साथी है। भय भी राग का दूसरा मित्र है। जहां कहीं राग है वहां भय है। मनुष्य अपनी वस्तुओं के खोने का भय रखता है। जहां सुख है वहां राग है। जहां दुख है वहां द्वेष है। आप अपनी स्त्री से प्रेम करते हैं क्योंकि उससे आपको सुख मिलता है। यही कारण है कि उसके साथ अन्ध आसक्ति है। आप मिठाई अथवा आम से राग रखते हैं क्योंकि उनसे आपको सुख मिलता है। बिच्छू से द्वेष रखते हैं क्योंकि वह आपको दु.ख देता है।

आप तत्वों, पौधों तथा ग्रहों में भी रागद्वेष को पायेंगे। सूर्य तथा शनि, सूर्य तथा यूरेनस (वारुणी ग्रह) में द्वेष है। सूर्य तथा मंगल ग्रह में काफी राग है। शनि तथा शुक्र में घनी आसक्ति है। शनि तथा शुक्र अपने स्वामी सूर्य के शत्रु हैं।

समान वस्तु समान को आकृष्ट करती है। गायक दूसरे गायकों से जा मिलता है। कवि दूसरे कवियों से जा मिलता है। चिकित्सक दूसरे चिकित्सक से, दुष्ट दूसरे दुष्ट से तथा साधु दूसरे साधु से जा मिलता है। रागद्वेष ही वास्तविक कर्म है। वृक्ष, नदी तथा अन्य वस्तुओं को संसार नहीं कहते। रागद्वेष ही सच्चा संसार है। रागद्वेष रहित ज्ञानी के लिए संसार नहीं है। रागद्वेष के द्वारा मन चित्त की एक ही प्रणाली से काम करता है। बिछावन से उठते ही रागद्वेष का काम प्रारम्भ हो जाता है। आप चाय पीते हैं, वस्त्र पहनते हैं तथा एक ही प्रकार के कार्यों को बारम्बार करते हैं। आप रागद्वेष के हाथ के खिलौना मात्र हैं, परन्तु जो लोग आत्म विश्लेषण, अन्तर्निरीक्षण तथा ध्यान करते हैं वे रागद्वेष से ऊपर उठ जाते हैं तथा नित्य सुख एवं अमृतत्व को प्राप्त करते हैं। राग के कारण आप किसी पुरुष या स्त्री से प्रेम करते हैं, आप किसी का पक्ष करते हैं। द्वेष के कारण आप किसी पुरुष या स्त्री से घृणा करते हैं तथा दूसरों को नुकसान पहुँचाते हैं। अब संसार प्रारम्भ हो जाता है। रागद्वेष के द्वारा आप पुण्य एवं पाप कर्म करते हैं। आप शुभ कर्मों द्वारा सुख की फसल काटते हैं तथा अशुभ कर्मों द्वारा दुख की। आप जन्म मृत्यु के चक्र में पड़े हैं। वह चक्र छः आरों का है—राग द्वेष, पुण्य पाप, धर्म अधर्म। योगी ज्ञानी या भागवत ही उस चक्र को रोकता है।

रागद्वेष के वृक्ष की जड़ें गहरी गड़ी हुई हैं। इसकी शाखायें सभी ओर फैली हुई हैं। मन विषयों से हठपूर्वक आसक्त बन जाता है। देखिये, बन्दरी अपने शिशु से कितनी आसक्त है। वह अपने मृत बच्चे को भी एक महिने तक अपने शरीर से चिपकाये रहती है। यदि आप बन्दर के बच्चे के निकट जायें तो सभी बन्दर आप पर हमला कर बैठेंगे। कर्मों की पुनरावृत्ति से रागद्वेष घनीभूत हो जाते हैं। यदि आपको किसी व्यक्ति से राग है तो आपका सारा परिवार ही उस व्यक्ति को पसन्द करने लगेगा। यदि आप किसी कारणवश उससे द्वेष करते हैं तो सारा परिवार भी द्वेष करने लगेगा। परिवार में, जाति में, राष्ट्र में, विभिन्न दर्शन के अनुयायियों में द्वेष रहता है। आप किसी पुरुष या स्त्री से, किसी बिल्ली या कुत्ते से, छड़ी या वस्त्र से, घर या शहर से आसक्त हो सकते हैं।

राग द्वेष इन्द्रियों में वास करता है। इन दोनों के वशीभूत न बनिये। राजयोगियों की प्रतिपक्ष भावना के द्वारा उन्हें चूर्ण कर डालिये। वैराग्य तथा विश्वप्रेम का अर्जन कीजिये। वैराग्य राग को तथा विश्वप्रेम द्वेष को नष्ट कर डालेगा। ब्रह्मज्ञान के द्वारा आप उनका उन्मूलन कर डालेंगे।

अहंकार सेनापति है। रागद्वेष, अभिमान, क्रोध, पाखण्ड—ये सैनिक तथा अधिकारी हैं। यदि अहंकार को मार डालें तो सैनिक भी पूर्ण आत्मार्पण कर देंगे।

अविद्या से अविवेक उत्पन्न हुआ है। अविवेक से अहंकार, अहंकार से रागद्वेष, रागद्वेष से कर्म, कर्म से शरीर तथा शरीर से दुख तथा मृत्यु। यदि आत्मज्ञान द्वारा अविद्या नष्ट कर दें तो अहंकार तथा रागद्वेष स्वतः विनष्ट हो जायेंगे। अहंकार के क्षीण होने से रागद्वेष भी क्षय को प्राप्त करेंगे।

आप सभी रागद्वेष के फंदों से मुक्त बनें। वे आपके वास्तविक शत्रु हैं। वे शान्ति, भक्ति तथा ज्ञान के शत्रु हैं। आप ज्ञान खड्ग से इन सबों को विनष्ट करें। आप सभी जीवन्मुक्त के रूप में विभाजित हों।

(6) रागद्वेष पर विजय प्राप्ति के लिए साधना (2)

रागद्वेष ही संसार है। ब्रह्मज्ञान से ही इसका पूर्णतः उन्मूलन हो सकता है।

रागद्वेष वासना है। इसकी चार अवस्थायें हैं—रागद्वेष, वासना, संस्कार तथा गुण एक दूसरे से सम्बद्ध। उनका सह अस्तित्व है। मन तथा इन्द्रिय ही रागद्वेष के वास स्थान है। किसी एक के विनाश से दूसरा भी विनष्ट हो जायगा, परन्तु ब्रह्मज्ञान के द्वारा ही संसार बीज का विनाश होगा।

मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा जैसे सद्गुणों के अर्जन से राग द्वेष क्षीण हो जायगा। यह राजयोगियों की प्रतिपक्ष भावना है।

अविद्या के विनाश से रागद्वेष का भी विनाश हो जायगा। राग द्वेष अविद्या के ही विकार हैं।

भक्ति, अग्नि रागद्वेष को पूर्णतः जला सकती है। निष्काम्य कर्म के अभ्यास से भी रागद्वेष बहुत सीमा तक क्षीण हो सकता है।

वैराग्य के खड्ग से रागद्वेष को मार डालिये तथा विश्वप्रेम के द्वारा द्वेष को नष्ट कर डालिये।

रागद्वेष के बहुत से रूप हैं। आप विशेष प्रकार का आहार पसन्द करते हैं, कुछ आहार को पसन्द नहीं करते। आप विशेष वस्त्र से राग रखते हैं तथा कुछ विशेष वस्त्र से द्वेष। कुछ ध्वनि आपके लिए आकर्षक है, कुछ अन्य ध्वनि आपके लिए अरुचिकर है। इस तरह आपका मन अशान्त रहता है। रागद्वेष की तरंग उठती है और कुछ समय में शान्त हो जाती है। पुनः दूसरी तरंग उठती है और कुछ समय में शान्त हो जाती है। पुनः दूसरी तरंग उठती है और इसी भांति यह काम जारी रहता है। मन में समत्व नहीं रहता। जिसने रागद्वेष को विनष्ट किया है वह सदा सुखी, शान्त, सानन्द, सबल तथा स्वस्थ रहेगा। जो रागद्वेष से मुक्त है वही चिरायु प्राप्त करेगा। रागद्वेष ही सभी बीमारियों का वास्तविक कारण है।

जहां सुख है वहां राग है। जहां दुख है वहां द्वेष है। मनुष्य उन वस्तुओं से निकट सम्पर्क रखना चाहता है जो उसे सुख पहुँचाती है। परन्तु उन वस्तुओं से दूर रहना चाहता है जो उसके लिए दःखद है।

यद्यपि दुःखद वस्तुएँ आपसे दूर हैं फिर भी उनकी स्मृति मात्र से आपको कष्ट पहुँचता है। द्वेष को दूर करने पर ही आप सुख प्राप्त करते हैं। द्वेष वृत्ति ही दुख पहुँचाती है, विषय पदार्थ दुख नहीं पहुँचाते। अतः विश्वप्रेम, ब्रह्म भावना अथवा सभी वस्तुओं में ईश्वर भाव के द्वारा द्वेष वृत्ति को नष्ट करने के लिये प्रयत्नशील बनिये। तब यह सारा जगत् आपको ईश्वर सा ही प्रतीत होगा। जगत् तथा जगत के पदार्थ न तो भले हैं और न बुरे। आपका निम्न मन ही उसे भला या बुरा बना

डालता है। सदा इस बात को याद रखिये। जगत तथा इसकी वस्तुओं में दोष न ढूंढ़िये। अपने मन में दोष का अन्वेषण कीजिये।

राग द्वेष के विनाश का अर्थ है अज्ञान अथवा मन तथा जगत-भावना का विनाश।

राग द्वेष के विनष्ट किये विना, जो शान्ति, ज्ञान तथा भक्ति के शत्रु हैं, आप ध्यान, समाधि अथवा शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते। जो ऐसा कहता है, "मैं गम्भीर समाधि में प्रवेश करता हूँ। मैंने आत्म-साक्षात्कार तथा समाधि प्राप्त की है। मै आपको भी समाधि दिला सकता हूँ।" वह पक्का पाखण्डी है। यदि आप उसमें राग द्वेष, आसक्ति, घृणा, मन की संकीर्णता, असहिष्णुता, क्रोध आदि पावें तो समझ लीजिये वह मिथ्याचारी है। उसके संग का परित्याग कीजिये। उससे दूर रहिये, अन्यथा आप भी उसी संक्रामक रोग के शिकार बन जायेंगे सावधान! सावधान! मित्रों, खबरदार!

(7) दुर्घटनाओं से मुक्ति के लिये साधना

महामृत्युँजय मंत्र : ॐ त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुखीयमामृतात् ॥

अर्थ : हम उस त्रिनेत्र (भगवान शिव) की पूजा करते हैं जो सुगन्धि पूर्ण है तथा जो सभी भूतों की पुष्टि प्रदान करते हैं। वे अमृतत्व के लिये हमें मृत्यु से उसी प्रकार मुक्त करें जिस प्रकार उर्वारुक (ककड़ी के समान फल) अपने बन्धन (लता जाल) से मुक्त हो जाता है।

लाभ : यह महामृत्यु जय मंत्र संजीवन मंत्र है। साम्प्रतिक काल में, जबकि जीवन बड़ा ही जटिल हो चला है तथा दुर्घटनायें नित्यप्रति की बात हो चली है, इस मंत्र के जप से मनुष्य सर्पदंश, विद्युत्, मोटर दुर्घटना, अग्नि दुर्घटना, साइकिल दुर्घटना, जल दुर्घटना, वायु दुर्घटना सभी प्रकार की दुर्घटनाओं से मुक्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त इस मंत्र में रोग निवारण का महान गुण है। जिन रोगों को डाक्टरों ने असाध्य बतला दिया है इस मंत्र के श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक जप करने से वे भी दूर हो जाते हैं। यह सारे रोगों के लिये रामबाण है। यह मृत्यु पर विजय प्राप्ति के लिये मंत्र है।

(2) यह मोक्ष मंत्र भी है। यह भगवान शिव का मन्त्र है। यह दीर्घायु, शान्ति ऐश्वर्य, पुष्टि, तुष्टि तथा मोक्ष प्रदान करता है।

(3) अपने जन्म दिवस पर इस मंत्र का कम से कम पचास हजार जप कीजिये, हवन कीजिये तथा गरीबों को भोजन खिलाइये। इससे आपको दीर्घायु, शान्ति तथा सम्पत्ति की प्राप्ति होगी।

(8) सफलता, सम्पत्ति तथा ज्ञान के लिये साधना

(क) सफलता के लिये मन्त्र :

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् भक्ता नामभयंकर।
गोविन्द परमानन्द सर्वं मे वशमानय ।।

हे कृष्ण, हे कृष्ण, आप महा योगी हैं। आप भक्तों को अभय प्रदान करते हैं। हे गोविन्द ! आप परमानन्द प्रदान करने वाले हैं। सब कुछ मेरे अनुकूल बनाइये।

(ख) सम्पत्ति के लिये मन्त्र :

आयुर्देहि धनं देहि विद्यां देहि महेश्वरि ।
समस्तमखिलां देहि देहि मे परमेश्वरि ।।

हे शिव प्रिया महेश्वरि ! मुझे दीर्घायु दीजिये, मुझे सम्पत्ति दीजिये तथा मुझे ज्ञान दीजिये। हे परमेश्वरी, मुझे अन्य सभी वांछित पदार्थ दीजिये।

(ग) ज्ञान के लिये मन्त्र :

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धी महि
धियो यो नः प्रचोदयात्।

हम ईश्वर तथा उसकी महिमा का ध्यान करते हैं, जिसने इस जगत् की सृष्टि की है, जो पूजनीय है, जो सारे पाप तथा अज्ञान को दूर करने वाला है। वह हमारी बुद्धि को प्रकाशित करे।

(9) शान्ति के लिये उन्नीस बातें

शान्ति के सहायक हैं : (1) एकान्त स्थान, (2) अकेले रहिये, मिलिये कम, (3) चार वस्त्र रखिये, एक कम्बल तथा एक लोटा (4) दो या तीन वस्तुयें आहार के लिये रखिये दाल रोटी या दाल भात तथा सब्जी (5) मौन व्रत का पालन (6) आसन प्राणायाम (7) जप तथा ध्यान (8) योग वाशिष्ठ, गीता उपनिषद् तथा विवेक चूड़ामणि का स्वाध्याय (9) सत्संग (10) सन्तोष (11) योजना न बनाइये (12) आशा न रखिये (13) कामनाओं को नष्ट कीजिये–निष्काम्य अवस्था, (14) क्रोध नष्ट कीजिये–अक्रोध अवस्था (15) वैर को नष्ट कीजिये–निर्वैर अवस्था (16) समता या समदृष्टि (17) सतत विचार (18) प्रबल धैर्य (19) क्षमा, तितिक्षा, करुणा, उदारता एवं विश्वप्रेम का विकास।

मौन, एकान्तवास तथा दूसरों से न मिलना–ये शान्ति प्राप्ति के लिये बड़े सहायक हैं। दया प्रेम तथा करुणा के विकास से हृदय का कठोर स्वभाव दूर हो जाता है। प्राणायाम, ध्यान तथा विचार से चंचल प्रकृति पर नियंत्रण होता है तथा आवेग एवं राग नष्ट होते हैं। इससे आप शान्ति में निवास करेंगे। स्थिर अभ्यास की आवश्यकता है। आपको जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। शान्ति धीरे धीरे क्रमशः प्राप्त होती है। धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा कीजिये।

"वह मनुष्य शान्ति को प्राप्त करता है जो सारी कामनाओं का परित्याग कर निष्पृह विचरण करता है, जिसमें ममता तथा अहंकार नहीं है।" (गीता अध्याय 2-76)

"जो श्रद्धावान है, जो ईश्वरपरायण है, जिसने इन्द्रियों को संयमित कर लिया है, वही ज्ञान प्राप्त करता है तथा ज्ञान प्राप्त कर शीघ्र ही परम शान्ति को प्राप्त करता है।" (गीता अध्याय 4-39)

"योगी सदा आत्मा के साथ युक्त होकर मन को वशीभूत कर मुझमें निवास करने वाली शान्ति को, परमानन्द को प्राप्त करता है।"
(गीता अध्याय 6-15)

सन्तोष वास्तविक धन है। सन्तोष स्वभाविक धन है क्योंकि यह मन को शान्ति प्रदान करता है। सन्तोष मोक्ष के राज्य का द्वारपाल

है। यदि आपके पास सन्तोष है तो आप अन्य द्वारपाल—सत्संग आत्म विचार तथा शान्ति को भी प्राप्त करेंगे। तब आप बड़ी आसानी से मोक्ष धाम में प्रवेश कर लेंगे।

यदि आपको प्रति माह सौ रुपया मिलता है तो आप उस मनुष्य से अपनी तुलना न कीजिये जिसे पांच सौ मासिक वेतन मिलता हो। आपमें असन्तोष उत्पन्न होगा। इससे मन अशान्त हो जायगा। उस व्यक्ति से अपनी तुलना कीजिये जो प्रतिमास पच्चीस रुपये ही पाता है। अपनी इस वर्तमान स्थिति के लिये ईश्वर को धन्यवाद दीजिये। कामनाओं का अन्त नहीं। सन्तोष ही आपके चंचल मन को शान्त कर सकता है। सन्तोष से बढ़ कर अन्य धन नहीं। सांसारिक कामनायें व्यर्थ हैं। लक्ष्य ऊँचा रखिये ब्रह्म प्राप्ति का लक्ष्य रखिये। सांसारिक उद्देश्य आपको दुःख, शोक निराशा के गर्त में डाल देंगे।

यदि आप पसीने बहाकर रुपये कमायें तो आप कभी धनी नहीं हो सकते। पाप के बिना धन नहीं कमाया जा सकता। मृत्यु के बाद आपको धन से कुछ भी लाभ नहीं होगा। अर्थ तो अनर्थ ही है। रुपये कमाना दुखद है। रुपये की कमी होना भी दुखद ही है रुपये की रक्षा करना भी दुखद है। उसे खो बैठना तो अति दुखद है। धन तो सारे अनर्थों का मूल है।

ईश्वर के साथ अपने जीवन को सुरक्षित रखिये। यह पक्का सम्बन्ध है। इसके लिये केवल ईश्वर से प्रेम करना होगा, आपको हृदय प्रदान करना होगा।

यह शरीर आता है, रहता है और चला जाता है। यह पंचतत्वों का संयोग है। यह जड़ है। इसका आदि तथा अन्त है। यह शुद्ध आत्मा न तो कहीं आता है और न कहीं जाता ही है। फिर आप शोक क्यों करते हैं? मेरे तात्! आप शुद्ध चैतन्य ही हैं।

आत्मा का कर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा कार्य नहीं है। आत्मा कोई विषय पदार्थ नहीं है जिसे प्राप्त किया जाय। वह न तो कर्ता है न भोक्ता। वह सदा मूक साक्षी है।

आत्म साक्षात्कार से अविद्या दूर हो जायगी। अविद्या ही क्लेशों को जननी है।

कर्तापन, ममता तथा मैं, तू और वह के भेद का परित्याग कीजि आप शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। अविवेक से ही कामना उत्पन्न ह है। विवेक के उदय होते ही कामनाओं का विनाश हो जायगा। र तथा असत्य के बीच विवेक करना सीखिये। आप नित्य सुख के धाम ओर शीघ्र ही यात्रा करें।

सत्य की चट्टान पर अविचल डट रहिये। अपने स्वरूप अ आत्मा को पकड़े रहिये। इस जगत को अपना ही स्वरूप देखिये। इ के द्वारा ही आप पुनर्जन्म से मुक्त होकर परमात्मा से एक बन सकते साधन चतुष्टय से सम्पन्न बन जाइये। श्रुतियों का श्रवण, मनन त निदिध्यासन कर साक्षात्कार प्राप्त कीजिये। आप ज्ञानी बनें।

आपके अन्दर शक्ति का विशाल स्रोत है। आपके अन्दर आनन्द निर्झर है। आन्तरिक पुरुष तो अमर आत्मा ही है। आप परमात्मा एक हैं। इसका साक्षात्कार कर मुक्त बन जाइये। मूल से शक्ति पाइये अन्दर ही गोता लगाइये। तथा आत्म मुक्ता को निकाल लाइये। वी बनिये। प्रसन्न रहिये।

कर्मकाण्ड द्वारा अविद्या दूर नहीं होगी, परन्तु निष्काम्य भाव कर्म करने पर आपका हृदय शुद्ध होगा। आत्म ज्ञान ही अज्ञान को नष्ट करने का एकमेव साधन है।

गुरुकृपा से ही आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है। गुरू शिष्य परम्पर के द्वारा ज्ञान एक से दूसरे को प्राप्त होता है।

ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो सकता है। जीवित अवस्था में ही वह मृत्यु चक्र से मुक्त हो जाता है। ब्रह्म ज्ञान मोक्ष का साधन है।

वासना क्षय से मन का क्षय होता है। मन के विनष्ट होने से सारे संस्कार भी विनष्ट हो जाते हैं। तब मनुष्य जीवन्मुक्ति अथवा कैवल्य को प्राप्त करता है।

प्राचीन काल के महर्षि उद्दालक, याज्ञवल्क्य आदि ने गम्भीर निदिध्यासन के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त किया। अतः बहुत सी पुस्तकों के

पढ़ने तथा तर्क करने से आत्म साक्षात्कार नहीं मिलता। शान्त होकर बैठ जाइये तथा अन्तर्निरीक्षण कीजिये। आप अत्म साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

भक्ति का अन्त ज्ञान में होता है। परा भक्ति तथा ज्ञान एक ही है। भक्ति दो से प्रारम्भ होती है तथा एक में परिसमाप्त होती है। अधिकांश जनता के लिये भक्तियोग ही अनुकूल है। जप, कीर्तन, सत्संग तथा भक्तों की सेवा द्वारा इस भक्ति का विकास कीजिये। राम नाम से बढ़ कर कोई नाम नहीं है। इस नाम की शरण में जाइये, राम की कृपा पाइये तथा नित्य सुख प्राप्त कीजिये।

जन्म मृत्यु से मुक्ति ही मोक्ष हैं। यह नित्य सुख की प्राप्ति है। इसमें न तो देश हे और न काल। इसमें अन्तर्वाह्य भेद भी नहीं है। आपको मोक्ष प्राप्त करना ही है। मोक्ष ही आपका लक्ष्य है। "मैं कौन हूं ?' के विचार से इस छोटे "मैं को मार डालिये। आप मोक्ष प्राप्त कर सम्राटों के सम्राट बन जायेंगे।

(10) छः महिने में समाधि प्राप्ति के लिये साधन

ईश्वर अथवा ब्रह्म के साथ योग प्राप्त करना समाधि कहलाता है। यदि आप साधन चतुष्टय से सम्पन्न हैं और आप में तीव्र वैराग्य तथा ममुक्षुत्व है और यदि आपको सहायता देने के लिये श्री शंकर अथवा भगवान कृष्ण जैसे ब्रह्म श्रौत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु हैं तो निमेष मात्र में ही आप साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे। एक फूल तोड़ने में जितना समय लगता है उतने ही समय में आप साक्षात्कार कर सकते हैं। चने के एक दाने को किसी बर्तन के बाहरी सतह पर से फिसलने में जितना समय लगता है उतने ही समय में आप आत्म दर्शन कर सकते हैं। इसमें कोई भी कठिनाई नहीं है। साधक को श्री शंकर के हस्तामलक या पद्मपाद अथवा भगवान कृष्ण के अर्जुन के समान बनना चाहिये। गुरू के प्रति आपकी उग्र भक्ति होनी चाहिये। ज्ञान योग के मार्ग में श्रद्धा एक महान गुण है। यहाँ पर विवेकपूर्ण श्रद्धा की आवश्यकता है। यदि अन्तकरण का क्षेत्र तैयार नहीं है, यदि चित्त की शुद्धि नहीं है तो ईश्वर अथवा सहस्रों शंकर या कृष्ण भी इस मामले में कुछ नहीं कर सकते।

यह निश्चय जानिये अष्टावक्र के द्वारा राजा जनक ने क्षण मात्र में ही साक्षात्कार किया। डेढ़ घण्टे के अन्दर ही अर्जुन ने संग्राम क्षेत्र के अन्दर ही साक्षात्कार किया।

महाराष्ट्र के मुकुन्दराय ने घोड़े पर बैठे हुए एक बादशाह को क्षण मात्र में ही समाधि दिला दी। इसके अनेक उदाहरण हैं।

इस कलियुग में प्राचीन काल की भांति आपको अधिक तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है। पहले युग में लोग एक ही पैर पर कई वर्षों तक खड़े रह जाते थे। वे कई प्रकार की तपस्या किया करते थे। इसका वर्णन आपको महाभारत तथा अन्यान्य पुस्तकों में मिलेगा। इस युग के मानव की दुर्बलता तथा अल्पायु के कारण भगवान ने विशेष करुणा दिखाई है। इस युग में कोई भी मनुष्य यदि सीधा एव सच्चा है तो वह शीघ्र ही साक्षात्कार कर लेगा। आप रात को सुबह के नाश्ते के लिये मिठाई आदि बनाते हैं, आप घड़ी में तीन बजे प्रातः को घण्टी लगाते हैं। इसी तरह आप बहुत कुछ करते हैं। यदि इसका दशांश समय भी सतर्कता एवं सच्चाई के साथ आध्यात्मिक मार्ग में लगायें तो आप छः महिने अन्दर ही समाधि को पा सकते हैं। इसके प्राप्त करने में पृथ्वी अथवा स्वर्ग का कोई भी प्राणी आपको बाधा नहीं पहुँचा सकता है।

(11) कुण्डलिनी जागरण के लिये साधना

कुण्डलिनी वह सर्पाकार शक्ति अथवा आध्यात्मिक अग्नि है जो मूलाधार चक्र में प्रसुप्त रहती है। यह आध्यात्मिक विद्युत अथवा गतिमान शक्ति है जो सभी जड़चेतन जगत की पोषिका है। चक्र आध्यात्मिक शक्ति के केन्द्र हैं जो सूक्ष्म शरीर में स्थित हैं। स्थूल शरीर में भी उन चक्रों के अनुरूप केन्द्र हैं जैसे बुद्धि जो सूक्ष्म शरीर में है स्थूल शरीर में मस्तिष्क उसका स्थान है।

राजयोगियों की धारणा तथा वृत्ति निरोध के द्वारा भक्तों की गुरु कृपा तथा भक्ति के द्वारा, ज्ञानयोगियों की सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा तथा मंत्र योगियों की मंत्र द्वारा कुण्डलिनी को जगाया जा सकता है।

जगते ही कुण्डलिनी मूलाधार चक्र का भेदन करती है। इसे विभिन्न चक्रों से सहस्रार में ले जाना चाहिये। कुण्डलिनी के जगते ही

योगी स्वर्णिम ज्योति के विशाल पिंड को देखता है, जो उसके शरीर को अच्छादित कर लेता है। मानों उसे जला डालेगा। उसे भय नहीं करना चाहिये। योगी विभिन्न चक्रों पर क्रमिक आनन्द का अनुभव करता है। परभ् अभय, सूक्ष्म दर्शन, मानसिक दर्शन, विज्ञान-दर्शन, सिद्धियाँ तथा आध्यात्मिक आनन्द कुण्डलिनी जागरण के लक्षण हैं। कुण्डलिनी योग की साधना सावधानी पूर्वक करनी चाहिये।

(12) एकता साक्षात्कार के लिये साधना

व्यक्त तथा अव्यक्त सभी अवस्थाओं में एकता का साक्षात्कार करना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। यह एकता पहले से ही है। अज्ञानवश उसे भूल गये हैं। अविद्या के इस आवरण को, इस धारणा को कि हम शरीर तथा मन से आबद्ध हैं दूर करना ही हमारी साधना का मुख्य प्रयास है। एकता के साक्षात्कार के लिये हमें अनेकता का त्याग करना होगा। हमें सदा यह भाव बनाये रखना चहिये कि हम सर्वव्यापक तथा सर्व शक्तिमान हैं। कामना के लिये यहाँ कोई स्थान नहीं, प्रत्युत् स्थिर, अनवरत, शांत नित्य आनन्द है। मुक्ति का अर्थ है असीम आस्था की प्राप्ति। यह पहले से ही है। यह तो हमारा स्वरूप है। जो अपना ही स्वरूप है उसके लिये कामना क्यों ? धन, सन्तति, इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख तथा अन्तत: मोक्ष की कामना को भी पूर्णत: विनष्ट कर देना चाहिये। सारे कर्म शुद्ध अनासक्त संकल्प से लक्ष्य की ओर परिचालित होने चाहिये।

यह साधना, सतत् प्रयास कि आप सब हैं—उग्र कर्म में संलग्न रहते हुए भी की जा सकती है। यही गीता की केन्द्रीय शिक्षा है। यह बुद्धि संगत भी है। ईश्वर सगुण तथा निर्गुण दोनों ही है। मन तथा शरीर को कार्य करने चाहिये। अनुभव कीजिये कि आप उनसे परे हैं तथा उनके अनुशासक एवं साक्षी हैं। काम पर लगे रहने पर भी शरीर तथा मन के तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित न कीजिये। प्रारम्भ में ध्यान का अभ्यास करना होगा। असाधारण संकल्प शक्तिवाला मनुष्य ही ध्यान की आवश्यकता नहीं रखता। साधारण मनुष्यों के लिये यह अनिवार्य है। ध्यान में मन स्थिर रहता है अत: एकता अनुभव करना सरलतर है। कार्यों में संलग्न रह कर ऐसा प्रयास कठिन है। कर्मयोग शुद्ध ज्ञान

योग से भी अधिक कठिन है। हमें सदा इसका अभ्यास बनाये रखना चाहिये। यह परमावश्यक है, अन्यथा उन्नति मन्द गति से होती है क्योंकि कुछ समय इस तरह ध्यान कि "मैं सब कुछ हूँ" तथा दिन के अधिक समय तक शरीर तथा मन के साथ तादात्म्य सम्बन्ध रखने से शीघ्र उन्नति नहीं होती।

भावना के साथ-साथ किसी शब्द प्रतीक जैसे "ॐ" को संयुक्त करना अच्छा है। अनादि काल से इस प्रतीक को एकतावाची माना गया है। अत: ॐ का अर्थ एवं भाव के साथ जप करना सर्वोत्तम विधि है। हमें कछ घण्टे ध्यान के लिए प्रात: सायं छोड़ रखने चाहिए।

साधकों के लिए आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन

विश्वात्म भावना आत्म साक्षात्कार के लिये प्रथम कदम है। यह जीव की वैयक्तिक स्वतन्त्रता में बाधक नहीं है। इसका अभिप्राय है स्वार्थपरक कामनाओं तथा आवेगों का अतिक्रमण करना। इसका अर्थ है व्यक्तिगत के हानिकर प्रभावों का निषेध करना।

भौतिक पदार्थ उन व्यक्तियों को प्रदान कीजिये जिन्हें उनकी आवश्यकता है। इस प्रकार ही उन्हें ईश्वरार्पित किया जा सकता है। हम भौतिक पदार्थों को ईश्वर के प्रति इसलिये नहीं अर्पित करते हैं कि ईश्वर को उनकी आवश्यकता है, वरन् इसलिये कि हम अपने अहंभाव का निषेध कर पूर्ण आत्मार्पण की स्थिति प्राप्त कर लें।

आध्यात्मिक चैतन्य का विस्मरण अविद्या है। अपने प्रति स्वार्थपूर्ण प्रेम में ही अविद्या की जड़ छिपी हुई है। आत्मार्पण, सेवा, विचारशीलता, करुणा, सदाचार तथा भक्ति के द्वारा अहंकार प्रधान स्वार्थ का निषेध करना ही ज्ञान है।

लोगों का मन घृणा तथा प्रतिकार की भावना से संतप्त है। परन्तु यह भी बीत जायगा। घृणा का प्रतिकार घृणा से नहीं किया जा सकता है। यदि घृणा को घृणा से नष्ट करने का प्रयास किया जाय तो यह अनन्त रूप से जारी रहेगा। यदि हृदय में इतनी शुद्धता नहीं है कि क्षमा कर दिया जाय तो एकमात्र विवेक पूर्ण तरीका है असहयोग

करना। समय क्षमा का सन्देशवाहक है। समय पाकर घृणा दूर हो जायगी।

अभिमानी न बनिये। दयालु, सच्चा तथा कारुणिक बनिये। मनन कीजिये तथा दमन कीजिये। अनुकूल बनिये। यथा व्यवस्था का गुण रखिये। आप में आध्यात्मिक चैतन्य दिनानुदिन विकसित होगा।

योगाभ्यास के द्वारा आपको अपनी अन्तस्थिति प्रसुप्त शक्तियों तथा क्षमताओं को जाग्रत करना चाहिये। आपके अन्दर प्रचुर शक्तियां छिपी हुई हैं। साधारणतः नब्बे प्रतिशत शक्तियां सुप्त ही रह जाती हैं। इन्द्रिय वृत्तियों का दमन कर इच्छा शक्ति को विकसित कीजिये। धारणा का अभ्यास कीजिये। दिव्य गुणों पर ध्यान कीजिये जो आपके स्वरूप के ही अंग हैं। निम्न स्तर से चैतन्य को उच्च स्तर की ओर उन्नत कीजिये। ज्यों-ज्यों आपकी प्रगति होगी त्यों-त्यों आप में नई शक्ति, नई क्षमता तथा नये गुणों का विकास होगा। आत्मदमन के द्वारा सारे भय का उन्मूलन हो जाता है तब आप साहस तथा बल की प्रतिमूर्ति बन जायेंगे, तब आप अपनी परिस्थिति को परिवर्तित कर डालेंगे, दूसरों के जीवन में परिणति ला देंगे तथा रोगियों को स्वस्थ बना डालेंगे।

अन्तर्निरीक्षण तथा आत्म विश्लेषण का अभ्यास कीजिये। दूसरों के भावों से यह समझ लीजिये कि आप में कौन से दुर्गुण हैं तथा उन्हें दूर कीजिये। यह सत्य है कि आप हर व्यक्ति के इच्छानुसार नहीं बन सकते, परन्तु फिर भी बुद्धिमानी इसी में है कि आप सामान्य जनता की राय का सम्मान करें।

विना पूछे अपनी सम्मति न दीजिये। दूसरों की समालोचना करने से बचिये। आत्मदमन कीजिये। अपने मित्र के दुर्गुणों को सीधे न कहिये।

काम, क्रोध, मद, लोभ तथा अहंकार से रहित जीवन ही दिव्य जीवन है। आत्मार्पण भाव से युक्त होकर शुद्धता तथा आध्यात्मिक ध्यानमय जीवन व्यतीत कीजिये। जांच के समय, निराशपूर्ण परिस्थिति में ईश्वर में अविचल श्रद्धा बनाये रखिये।

अन्तर्मुखी तथा ध्यानशील होना, एकान्तप्रियता बाह्य वातावरणों से अलग रहना—ये आध्यात्मिक मार्ग के लिए आवश्यक आदर्श हैं। परन्तु इनके अपने दोष भी हैं। मनुष्य को सावधानी पूर्वक उन दोषों से बचना चाहिये। बहुत से लोग बाह्यतः अन्तर्मुखी हैं, परन्तु वे वास्तव में बहुत ही स्वार्थी, हठी तथा अभिमानी हैं। उनमें दानशीलता तथा निष्कामता का लेशमात्र भी नहीं पाया जाता। उनकी आध्यात्मिक प्राप्ति सन्देहास्पद ही है। उनका बाह्य धार्मिक प्रदर्शन स्नायु दौर्बल्य के कारण हो सकता है। अतः मनुष्य को नम्रता, सेवा, अन्तर्निरीक्षण आत्म सुधार तथा शुभ दर्शन के द्वारा दुर्गुणों का दमन करना चाहिये।

साधक को सदा निराशा के विरुद्ध संग्राम करना चाहिये। निराशापूर्ण विचार को तो स्थान ही नहीं मिलना चाहिये। हर वस्तु का उद्देश्य है। कठिनाइयां तथा विफलतायें इसीलिये आती हैं कि मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य के प्रति जागरूक रहे। जो दूसरों के उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करता है वह स्वयं अधिक कष्ट नहीं उठाता। भूलें स्वीकार कर लेनी चाहिये। उन्हें बनाये रखना स्वतः भारी भूल है। भूल से मनुष्य को और अधिक बुद्धिमान बनना चाहिये तथा अधिकाधिक निश्चय पूर्वक इस भूल का दमन करना चाहिये।

भ्रामक विषय सुखों के लिए ही इन्द्रियों का तात्पर्य नहीं है, न नो मन का निर्माण भेद भावना से सृजन के लिए ही हुआ है। मन इन्द्रिय साक्षात्कार के लिए यदि इनका दुरुपयोग किया गया है तो भुगतना पड़ता है।

आध्यात्मिक चैतन्य के विकास में तीन बाधायें हैं—पहली है म दूसरी है विक्षेप तथा तीसरी आवरण। स्वाध्याय, नाम जप त निष्काम्य सेवा द्वारा मल को दूर करना चाहिये। धारणा, आसन त प्राणायाम के द्वारा विक्षेप को दूर करना चाहिये। आत्मा पर गम्भ ध्यान के द्वारा आवरण को ध्वस्त करना चाहिये।

सम्यक् पुरुषार्थ के बिना इस संसार में कुछ भी प्राप्त नहीं कि सकता। बिना सम्यक् संकल्प के किसी भी साधना का श्रीगणेश नहीं सकता। अतः सत्य, शुद्धता तथा करुणा के मार्ग पर चलने के लि

संकल्प कीजिये। अपने विचार तथा कर्म में प्रगतिशील बनिये। सद्गुण, सदाचार तथा शुद्धता में प्रतिक्षण अग्रसर होते जाइये।

साधना तथा समाधि

आध्यात्मिक मार्ग में पदार्पण कीजिये। डरिये नहीं। आगे बढ़ते जाइये। आध्यात्मिक मार्ग में निराशा के लिए कोई भी स्थान नहीं। उन्नति धीमी हो सकती है। परन्तु आप निश्चय ही लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे। आपका जन्म इसीलिए हुआ है। सफलता निश्चित है। एक मिनट का प्रयास भी व्यर्थ नहीं जाता। भगवान की प्रतिज्ञा को याद कीजिये "कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।" पुनश्च " न हि कल्याण कृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।"

शान्तिपूर्वक अभ्यास करते जाइये। अभ्यास तथा वैराग्य में नियमित रहिये। उनसे आप प्रकाश तथा आत्म साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे। अपने अन्तर्वासी परमात्मा में दृढ़ विश्वास रखिये।

किसी भी वस्तु में बुराई न देखिये। इस जगत में सर्वत्र ही अपूर्णता है। इस विश्व के कौने-कौने में दोष भरा हुआ है। परन्तु इसके अन्तस्थल में ईश्वर ही ईश्वर है। वह एकमात्र सत्य है। दूसरों के दोषों को न देखिये। पहले अपने दोषों को सुधारिये। सदा विचार कीजिये—"हाँ, यह भला आदमी है। मैं उसके कर्म को पसन्द भले ही न करूँ। परन्तु वास्तव में वह भला ही कर रहा है। मुझे निश्चय है कि उसकी भावना अच्छी है।" इस तरह दूसरों के कर्म में सदा सद्भावना को ही देखिये।

आप अपने दोष को भले ही याद न करें, परन्तु अपने दोष को स्वीकार कर लेना आपका कर्त्तव्य है। आप स्वयं अपने चित्त की शैतानी को नहीं जान पाते। यह सभी प्रकार की गलतियों को कर बैठता है, परन्तु करता है चालाकी के साथ। आप इसके विषय में कुछ नहीं जानते। यदि आप जानते भी हैं तो यह आपको इस तरह चक्कर में डाल देता है कि आप समझने लगते हैं कि मानों आप मन के मालिक ही

हैं। इस तरह कदापि न सोचिये। यदि कोई आदमी आपकी भूल की ओर इंगित करे तो कदापि क्रोधित न बनिये। इस अहंकार को विनष्ट करने का प्रयास कीजिये।

सभी प्राणियों के आदर करने के गुण का विकास कीजिये। पाप से घृणा कीजिये, पापी से नहीं। दूसरों का आदर करने से आप में गम्भीरता आयेगी। इससे आपको महान लाभ प्राप्त होगा। यदि आप इसका अभ्यास करें तो इसके फल का आप साक्षात्कार करेंगे।

आप कितने भी व्यस्त क्यों न हों स्वाध्याय के लिए कुछ समय अवश्य निकाल लीजिये। यदि आप विशेष अवकाश की प्रतीक्षा करेंगे तो आप कदापि स्वाध्याय न कर पायेंगे। समुद्र में स्नान करने वाले को लहरों के स्तब्ध होने की कदापि प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये।

योगासन तथा प्राणायाम के अभ्यास में नियमित बनिये। शरीर को अधिक कष्ट कदापि न दीजिये, अन्यथा यह शरीर जो आपका सहायक है, कमजोर तथा क्षीण हो जायगा। यह शरीर असाध्य बीमारियों का घर बन जायगा। इसको समझ लीजिये कि वैराग्य आन्तरिक स्थिति है, बाह्य प्रदर्शन नहीं। ऐसा न सोचिये कि शारीरिक आराम पर ध्यान देने से आप देहाध्यास को दूर नहीं कर सकेंगे। विषयों की तृष्णा ही बन्धन का कारण बनती है, आवश्यक वस्तुओं का सेवन बन्धन का कारण नहीं है।

साधना द्वारा आप में अधिक प्रसन्नता, सुख, समत्व, शान्ति, विवेक, सन्तोष, आनन्द, वैराग्य, निर्भयता, करुणा, विवेक, मनन, साहस, असंगता, अक्रोध, निरहकारिता, निष्कामता, अनासक्ति आदि का विकास होना चाहिये। साधना से आपको सम्पन्न आन्तरिक जीवन, एकाग्र मन तथा शम की प्राप्ति होनी चाहिये। ये ही आध्यात्मिक उन्नति के लक्षण हैं। ज्योति, दर्शन, अनाहद नाद, दिव्य गंध आदि आध्यात्मिक उन्नति के परिलक्षक नहीं हैं। इनका उतना महत्व नहीं है, यद्यपि इनसे यह परिलक्षित होता है कि एकाग्रता की प्रथम भूमिका प्राप्त हो गई है।

साधक कुछ ज्योति दर्शन, अनाहद ध्वनि श्रवण तथा दिव्य गंध के अनुभव कर लेने पर ऐसा सोच बैठते हैं कि वे सविकल्प समाधि प्राप्त

कर चुके हैं तथा अब निर्विकल्प समाधि ही बाकी रह गई है। यह भारी भूल है। समाधि सरल वस्तु नहीं है। समाधि के लिये आधार का पूर्ण संशोधन होना चाहिये। कुछ समाधि प्राप्त का ढोंग करते हैं। परन्तु वे भारी ठग हैं। लाखों में कोई एक ही समधि प्राप्त कर सकता है। यदि आपमें सदाचार, नैतिक गुण, विवेक तथा वैराग्य है तो आप भी समस्त ससार को शुद्ध बना सकते हैं।

प्रिय सौम्य, ईश्वर कृपा प्राप्त करने के अधिकारी वनिये। सदा सुखी रहिये। ईश्वर आपको परम सुख प्रदान करे। आपको आत्मज्ञान की प्राप्ति हो। आपको आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त हो। आप समाधि तथा आध्यात्मिक सुख में संस्थित बनें।

दिव्य जीवन की साधना

(1) यदि मन दृढ़ हो चला हो तो कीर्तन द्वारा उसे जाग्रत कीजिये, दि विक्षिप्त हो तो प्राणायाम, उपासना तथा ध्यान के द्वारा उसे ान्त बनाइये यदि आसक्त हो तो विवेक तथा वैराग्य द्वारा उसे विरक्त नाइये।

(2) अनुभव से संस्कार होते हैं, संस्कार से वासना तथा वासना से त्ति होती है। तदन्तर कल्पना के द्वारा वृत्तियां इच्छा में वदल जाती हैं ौर तब अहंकार इच्छा से युक्त हो जाता है, फलस्वरूप वह इच्छा तृष्णा न जाती है तब आप चेष्टा के लिये प्रवृत्त होते हैं। मन की यह प्रक्रिया लती रहती है।

(3) आप नये संस्कारों के निर्माण को रोक सकते हैं तथा भूत के ंस्कारों को वन्द कर सकते हैं। वृत्ति के उठने पर उसके विषय में न सोचिये, अपने ध्यान को फेर लीजिये, उस वृत्ति को विलीन हो जाने दीजिये। अपनी कल्पना की उडान को रोकिये। कल्पना ही वृत्ति को वलवती वनाती है।

(4) अत्यधिक कामनाओं के भार का परित्याग कीजिये। यदि कामनाओं को बढ़ने दिया तो वे संकल्पाग्नि के लिये जलावन का काम

करती है। कामनाओं के जलावन को हटा देने पर संकल्पाग्नि बुझ जायगी।

(5) यद्यपि वृत्ति तथा संस्कार अनन्त है तथा उनकी जड़ गहरी जमी हुई है, फिर भी विवेक, विचार, सत्संग तथा स्वाध्याय के द्वारा उनको विनष्ट किया जा सकता है।

(6) सांसारिक बातों में न पड़िये। विषय पदार्थों की बातों से मन विषय सुखी बन जाता है। सदा परमात्मा सम्बन्धी तथा आध्यात्मिक बातें कीजिये। मूल धाम को लौट जाइये। आप अमृतत्व तथा नित्य सुख को प्राप्त करेंगे। वह मूल परब्रह्म है।

स्वामी शिवानन्द जी का साधकों को प्रसाद

प्रिय अमर आत्मा !

आप दिव्य हैं। इसके अनुसार जीवन यापन कीजिये। अपने दि स्वरूप का अनुभव तथा साक्षात्कार कीजिये। आप अपने भाग्य-विधा हैं। जीवन संग्राम में आने वाले शोकों, कठिनाइयों तथा कष्टों हतोत्साह न बनिये। अन्दर से आध्यात्मिक बल एवं साहस प्रा कीजिये। अन्दर शक्ति तथा ज्ञान का अथाह भण्डार है उससे उ निकालने का तरीका सीखिये। अन्दर गोता लगाइये। भीतर डूबिये आन्तरिक त्रिवेणी, अमृत धारा में डुबकी लगाइये। आप स्फूर्ति, शक्ति तथा नव चेतना से सम्पन्न हो जायेंगे। मैं ही अमर आत्मा हूँ आ इसका साक्षात्कार करेंगे।

जगत के नियमों को समझिये। इस संसार में कुशलतापूर्वक रहिये। प्रकृति के गुप्त रहस्यों को समझ लीजिये। मन को वशीभूत करने के सर्वोत्तम साधनों को जान लीजिये। मन पर विजय पाइये। मन पर विजय ही प्रकृति तथा जगत पर विजय है। मनोजय के द्वारा आप आत्मा को प्राप्त करेंगे, "मैं ही अमर आत्मा हूँ।"

कष्ट तथा शोक आने पर शिकायत न कीजिये। हर कठिनाई संकल्प शक्ति के विकासार्थ सुयोग है। इससे आप सबल बनेंगे। इसका स्वागत कीजिये। आपकी सहन शक्ति बढ़ेगी तथा आपका मन ईश्वर की ओर मुड़ेगा। मुस्कान के साथ उनका स्वागत कीजिये। आपकी दुर्बलता में ही आपकी सच्ची शक्ति छिपी हुई है। आप अज्ञेय हैं। आपको कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकता। एक-एक कर कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कीजिये। यही नव जीवन का समारम्भ है—यह है व्यापकता, महिमा तथा दिव्य ज्योति का जीवन। महत् कामना कीजिये तथा शक्ति प्राप्त कीजिये। बढिये। विकास कीजिये। सारे सद्गुणों का अर्जन कीजिये। दैवी सम्पत्ति जैसे—धैर्य, क्षमता तथा साहस आपमें सुप्त हैं। नये जीवन का आरम्भ कीजिये। आध्यात्मिक मार्ग का अनुकरण कीजिये तथा साक्षात्कार कीजिये—"मैं ही अमर आत्मा हूं।"

नये दृष्टिकोण को रखिये। विवेक, विचार, प्रसन्नता तथा बुद्धि से सम्पन्न हो जाइये : आपके लिए स्वर्णिम भविष्य प्रतीक्षा कर रहा है। भूत को गड़े रहने दीजिये। आप चमत्कार कर सकते हैं। आप आश्चर्य कर सकते हैं। आशा न छोड़िये। आप अपने संकल्प बल से ग्रहों के प्रभाव को दूर कर सकते हैं। आप अपने विरुद्ध काम करने वाली शक्तियों को निष्क्रिय बना सकते हैं। आप विपरीत परिस्थितियों को भी अनुकूल बना सकते हैं। आप भाग्य को बदल सकते हैं। बहुतों ने ऐसा किया है। आप भी ऐसा कर सकते हैं। निश्चय कीजिये। अपने जन्म सिद्ध अधिकार का साक्षात्कार कीजिये। आप वही अमरात्मा है।

आत्म साक्षात्कार में सफलता के लिये निश्चय तथा आत्म निर्भरता बडे ही आवश्यक है। मुण्डकोपनिषद में आप पायेंगे—"यह आत्मा उसके द्वारा प्राप्त नहीं है जो बल से रहित है अथवा जिसमें सच्चाई नहीं है अथवा जो सन्यास रहित तपस्या करता है। परन्तु यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति उपर्युक्त साधनों से सम्पन्न होकर प्रयास करता है तो उसकी आत्मा ब्रह्म में प्रवेश पा जायगी।" साधक के लिये अभय मुख्य गुण है। मनुष्य को इस जीवन का भी परित्याग करने के लिये हर क्षण तैयार रहना चाहिये। इस विषय जीवन के संन्यास बिना नित्य आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति नहीं हो सकती। गीता के सोहलवें अध्याय के पहले

श्लोक में देवी संपद् का वर्णन है जिसमें अभय का नाम सर्व प्रथम दिया गया है। भीरु व्यक्ति मृत्यु से पहले ही कई बार मर चुकता है। आध्यात्मिक साधना के लिये एक बार निश्चय कर बैठने पर हर हालत में उसे करते जाइये। जीवन की बाजी लगाकर भी साधना से च्युत न होइये। उठिये, सत्य का साक्षात्कार कीजिये। सर्वत्र घोषणा कीजिये, 'तू अमर आत्मा है।'

भाग्य आपकी ही सृष्टि है। अपने विचारों तथा कार्यों के द्वारा आपने अपने भाग्य का निर्माण किया है। सद्विचार तथा सत्कार्यों के द्वारा आप अपने भाग्य को बदल सकते हैं। यदि कोई बुरी शक्ति आप पर आघात करे तो आप दृढतापूर्वक उसका निषेध कर, अपने मन को उससे हटा कर उसके बल को कम कर सकते हैं। इस प्रकार आप भाग्य से लोहा ले सकते हैं। यह एक विचार ही—मैं अमर आत्मा हूं सारी बुरी शक्तियों को विनष्ट कर सकता है तथा आपमें साहस एवं आन्तरिक आध्यात्मिक बल को भर सकता है। बुरे विचार मानव कष्ट के मूल कारण हैं। सद्विचार एवं सत्कार्य का अर्जन कीजिये। आत्म भाव के साथ एकता पूर्वक निस्वार्थ काम कीजिये। यही सद्कार्य और सद्विच है 'मैं अमर आत्मा हूं।'

आप कोई वस्तु नहीं। पाप भ्रांति है। पाप मानसिक कल्पना है प्रगति के मार्ग में बाल-आत्मायें भूलें करेंगी ही। गलतियां ही आप सर्वोत्तम गुरु हैं। आपके विचार विनष्ट हो जायंगे यदि आप ऐसे विचार विचार करें—'मैं अमर आत्मा हूं।'

ऐसा न कहिये-कर्म, कर्म। मेरे कर्म ने ऐसी अवस्था ला दी हैं प्रयास कीजिये। पुरुषार्थ कीजिये, तप कीजिये। धारणा कीजिये। शुद्ध बनिये। ध्यान कीजिये। भाग्यवादी न बनिये। तामसिक न बनिये। मेमने की तरह 'मै मैं' न कीजिये। वेदान्त केशरी की तरह 'ॐ ॐ' का गर्जन कीजिये किस तरह मार्कंडेय जिनके भाग्य में सोलह साल की अवस्था में मृत्यु होने वाली थी अपने तपोबल द्वारा चिरंजीवी बन गये और यह भी विचार कीजिये किस तरह सावित्री ने अपने मृत पति को जीवित कर लिया। किस तरह बेंजामिन फ़्रेंकलिन तथा मद्रास के स्वर्गीय सर टी० मत्तूस्वामी अय्यर ने अपने को उन्नत बनाया। हे प्रिय निरंजन!

याद रखिये । मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता है विश्वामित्र जो क्षत्रिय राजा थे। वशिष्ठ के समान ही ब्रह्मर्षि बन गये तथा अपने तपोबल से त्रिशकु के लिये एक लोक का ही निर्माण कर दिया। रत्नाकर डाकू तपस्या के द्वारा बाल्मीकि महर्षि बन गये । बंगाल के दुष्ट स्वभाव वाले जगाई और मधाई महात्मा बन गये। वे गौरांग महाप्रभु के शिष्य बन गये । जैसा दूसरों ने किया है वैसा आप भी कर सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि आप आध्यात्मिक साधना, तप तथा भाग्य में संलग्न रहें तो आप भी चमत्कार कर सकते हैं। जैम्स एलेन की पुस्तक 'गरीबी से शक्ति' (पावर्टी टु पावर) को सावधानी पूर्वक पढिये। आपको प्रेरणा मिलेगी। अपने जीवन का कार्यक्रम निश्चित कर लीजिये। मेरे 'बीस आध्यात्मिक उपदेश' 'चालीस स्वर्णिम उपदेश' का पालन कीजिये। 'जीवन में सफलता का रहस्य' पढिये। आध्यात्मिक कार्य तालिका के अनुसार कार्य कीजिये। साधना में उत्साह रखिये। नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनिये। अपने अभ्यासों में क्रमिक तथा स्थिर रहिये। ब्रह्म विभा से विभासित होइये। जीवनमुक्त बनियें। याद रखिये, 'तू अमृतत्व की सन्तान है।'

हे सौम्य, प्रिय अमर, वीर बनिये। यद्यपि आपके पास खाने को कुछ न हो, आप फटे चिथडों में क्यों न हो, सदा प्रसन्न रहिये। सच्चिदानन्द ही आपका स्वरूप है। वाह्य शरीर कोष तो माया की उपज है। मुस्कराइये। हंसिये। कूदिये। आनन्द में नाचिये। ॐ. राम राम राम, श्याम श्याम श्याम, शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं, सोऽहम् सोऽहम्, ॐ ॐ ॐ का गायन कीजिये। इस शरीर पिंजर से बाहर निकल आइये। आप यह नश्वर शरीर नहीं है। आप अमर आत्मा है। आप अलिंग आत्मा है। आप सम्राटों के सम्राट, उपनिषदों के ब्रह्म के पुत्र हैं। वह आत्मा आपकी हृदय गुहा में वास करता है। ऐसा अनुभव कीजिये। इसी क्षण अपने जन्माधिकार को प्राप्त कीजिये। निश्चय कीजिये। साक्षात्कार कीजिये, कल या परसों से नहीं, अभी से, इसी क्षणसे ही। 'तत्वमसि', हे निरंजन् तू अमरात्मा है।

हे भाई ! साहस आपका जन्माधिकार है, भय नहीं। शान्ति आपका जन्माधिकार है, अशान्ति नहीं। अमृतत्व आपका जन्माधिकार है, मृत्यु नहीं। स्वास्थ्य आपका जन्माधिकार है, रोग नहीं। आनन्द

आपका जन्माधिकार है, शोक नहीं। ज्ञान आपका जन्माधिकार है, अज्ञान नहीं।

आप अपने भाग्य के निर्माता हैं। आप अपने भाग्य के विधाता हैं। आप बना सकते हैं, आप बिगाड सकते हैं। सद्विचार, सद्भावना तथा सत्कार्य के द्वारा आप ब्रह्म को प्राप्त कर सकते हैं आप संकल्प शक्ति के द्वारा पुरानी गन्दी आदतों को हटा सकते हैं। आप बुरे संस्कार अपवित्र कामनायें, बुरी कल्पनाओं को विनष्ट कर सकते हैं। आप नई आदतों का निर्माण कर सकते हैं। आप सुन्दर चरित्र का निर्माण कर सकते हैं। आप अपनी आध्यात्मिक शक्ति से समस्त जगत को हिला सकते है आप दूसरों को भी ईश्वरत्व की ओर प्रेरित कर सकते हैं। आप प्रकृति की शक्ति पर शासन कर सकते हैं। आप पंच तत्वों पर शासन कर सकते हैं।

अपनी आत्मा पर निर्भर रहिये। संकीर्ण बुद्धि न बनिये। अन्तःकरण की वाणी सुनिये। गुलाम न बनिये। अपनी स्वतंत्रता को खो न दीजिये। आप अमर आत्मा हैं। छोटेपन की ग्रन्थि को नष्ट कर दीजिये। अपने भीतर से शक्ति, साहस तथा बल प्राप्त कीजिये मुक्त बनिये। अन्ध श्रद्धा न रखिये। सावधानीपूर्वक विचार कीजिये और तब किसी वस्तु को मानिये। अन्धे आवेगों के अधीन न हो जाइये। उनका दमन कीजिये। असहिष्णु न बनिये। विकसित बनिये। आपके अन्दर शक्ति तथा ज्ञान का विशाल क्षेत्र हैं। उसे प्रदीप्त करना है तब आत्मा का सारा रहस्य आपको प्रगट हो जायगा। आत्म ज्ञान की ज्योति से अज्ञान का अन्धकार विनष्ट जो जायगा। ज्ञान के साम्राज्य में प्रवेश पाने के लिये एकमात्र आत्मा का सतत ध्यान ही कुंजी है। मैंने इन कुछ पंक्तियों में वेदान्त का सारांश दे दिया है। वेदान्त अमृत का पान कर अमरत्व प्राप्त कीजिये। यही जीवन का लक्ष्य है। यही जीवन की सार्थकता है। कर्मयोग तथा उपासना के द्वारा अपने आप परम साक्षात्कार के लिये समर्थ बन जायेंगे।

अनासक्तिमय जीवन बिताइये। मन को शनैः-शनैः अनुशासित कीजिये। कोई भी व्यक्ति दुख, रोग, कठिनाई तथा बाधाओं से मुक्त नहीं है। आपको अपने स्वरूप-सुखमय आत्मा में निवास करना होगा। वही

आपके जीवन का मूल तथा आधार है। आपको अपने दिव्य स्वरूप की याद बनाये रखना होगा तभी आपको जीवन की कठिनाइयों का सामना करना होगा तभी आपको जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के लिए आन्तरिक शक्ति प्राप्त होगी, तभी आप समत्व बुद्धि प्राप्त करेंगे। आप बाह्य बुरे प्रभावों तथा दुःखित मलिन स्पन्दनों से प्रभावित न होंगे। नित्य प्रातः ध्यान के द्वारा आप नई शक्ति तथा आन्तरिक जीवन, शाश्वत सुख एवं विशुद्ध आनन्द प्राप्त करेंगे। इसका अभ्यास कीजिये। अपनी विपरीत परिस्थितियों में भी इसका अभ्यास कीजिये। धीरे-धीरे आप आध्यात्मिक उन्नति करेंगे। आप अन्ततः आत्म साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

आपकी वर्तमान व्याधि कर्म का शोधन है। यह आपमें ईश्वर स्मरण जगाने के लिए, हृदय में करुणा भरने के लिए, आपको सबल बनाने तथा आपमें सहनशीलता की वृद्धि करने के लिए आपको प्राप्त हुई है। कुन्ती ने भगवान से प्रार्थना की थी "मुझे सदा विपत्ति में रखो जिससे मैं आपको सदा याद कर सकूं।" भक्त लोग दुःख में अधिक प्रसन्न होते हैं। रोग, पीड़ा, सर्प, बिच्छू, विपत्ति आदि ईश्वर के ही संदेशवाहक हैं। भक्त प्रसन्नता पूर्वक उनका स्वागत करता है। वह कभी भी परेशान नहीं होता। वह पुनः कहता है—"मैं तेरा हूं, मेरे प्रभु तू सब कुछ मेरी ही [illegible] के लिए करता है।"

कृपा आपको प्राप्त होगी। वह आपका अमर सखा है। वृन्दावन के बांसुरी वाले को न भूलिये। वही आपका आधार है। वही देवकी का आनन्द है।

आपके हृदय प्रकोष्ठ में करुणा सागर भगवान निवास करता है। वह आपके निकट है। आप उसे भूल गये हैं। परन्तु वह सदा आपकी देख रेख करता है। कठिनाइयां उसी की आशीर्वाद हैं। वह आपके शरीर तथा मन को इस तरह गठित करना चाहता है कि उनसे होकर वह अपनी लीला अबोध रूप से जारी रख सके। वह आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति इस तरह ठिकाने से करता है जैसा आप स्वयं नहीं कर सकते। अहंकार के कारण अपने कन्धों पर जो बोध आप लिये हुये हैं उसे उतार दीजिये। अहंकार त्यागिये। स्वार्थ निर्मित उत्तरदायित्वों का त्याग कर पूर्ण आराम से रहिये। उसमें पूर्ण श्रद्धा रखिये। पूर्ण आत्मार्पण कीजिये। उसकी ओर दौड़िये। वह हाथ फैलाये हुए आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। वह आपके लिये सब कुछ करेगा। मेरा विश्वास कीजिये। शिशु के समान अपने हृदय को ईश्वर के प्रति खोल कर रखिये। सारे दुःख समाप्त हो जायेंगे। कम से कम एक बार भाव के साथ कहिये, मैं तेरा हूं, हे मेरे प्रभु। सब तेरा होकर रहेगा।"

विरह का अन्त होगा। सारे दुःख, कष्ट, शोक, रोग विलीन हो जावेंगे। आप ईश्वर के साथ एक बन जायेंगे।

अनुभव कीजिये कि सारा ससार ही आपका शरीर है। उन सारे अवरोधों को नष्ट कीजिये जो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से अलग रखते हैं। बड़प्पन की भावना अज्ञान अथवा मोह है। "ईशावास्यमिदं सर्वम्" विश्वप्रेम का विकास कीजिये। सबों से मिलकर रहिये। एकता अमर जीवन है। पार्थक्य मृत्यु है। सारा जगत विश्व वृन्दावन है। अनुभव कीजिये कि यह शरीर का चल निकेतन है। जहां भी हों, घर में, कार्यालय में, समझिये कि यही ईश्वर का मन्दिर है। हर कार्य को उसकी पूजा समझिये। अनुभव कीजिये कि सारे प्राणी उसके रूप हैं। हर कर्म को योग बना डालिये। आप वेदांत साधक हों तो साक्षी अकर्ता भाव बनाये रखिये। यदि भक्ति योगी हों तो निमित्त भाव रखिये। अनुभव कीजिये कि ईश्वर आपके हाथों से कर्म करता है, सारे कानों से सुनता है, सारी आंखों से देखता है, आप परिवर्तित हो जायेंगे। आपको नई दृष्टि मिलेगी। आप परम शान्ति एवं सुख का उपभोग करेंगे।

श्री गीताजी की महिमा

सर्वो उपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।

जितने उपनिषद हैं सब गौ हैं, श्री कृष्ण भगवान स्वयं दूध दुहने वाले ग्वाले हैं, बुद्धिमान अर्जुन गौ के बछड़े के समान है और जो दूध दुहा गया है वही मधुर गीता का उपदेश अमृत है।

श्री गीताजी का अमृत

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।
(अ. 2/7)

हे मधुसूदन ! कायरता रूप दोष करके उपहत हुए स्वभाववाला और धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ मैं आपको पूछता हूँ कि जो कुछ निश्चय किया हुआ कल्याणकारक साधन हो वह मेरे लिए कहिए क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ इसलिए आपके शरण हुए मेरे को शिक्षा दीजिये।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।
(अ. 2/22)

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।। (अ. 2/38)

सुख दुःख, लाभ हानि और जय पराजय को समान समझकर उसके उपरान्त युद्ध (कर्म) के लिए तैयार हो इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ (अ. 2/47)

तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे फल में कभी नहीं और तू कर्मों के फल की वासना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न होवे।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ (अ. 2/62, 63)

हे अर्जुन ! मनसहित इन्द्रियों को वश में करके मेरे परायण न होने से मन के द्वारा विषयों का चिन्तन होता है और विषयों को चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है और क्रोध से अविवेक अर्थात् मूढ़भाव उत्पन्न होता है और अविवेक से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है और स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश होने से यह पुरुष अपने श्रेय साधन से गिर जाता है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ (अ. 3/14,15)

सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है और वृष्टि यज्ञ से होती है और वह यज्ञ कर्मों से उत्पन्न होने वाला है तथा उस कर्म को तू वेद से उत्पन्न हुआ जान और वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है इससे सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ (अ. 4/7)

हे भारत ! जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब ही मैं अपने रूप को रचता हूं अर्थात् प्रकट करता हूं।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। (अ. 4/8)

साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिए तथा धर्म स्थापन करने के लिए युग युग में प्रकट होता हूं।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।। (अ. 5/10)

(निष्काम कर्मयोग) हे अर्जुन ! जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्याग कर कर्म करता है वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की सदृश पाप से लिपायमान नहीं होता।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ।। (अ. 6/35)

हे महाबाहो ! निःसन्देह मन चञ्चल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! अभ्यास भगवान के नाम और गुणों का श्रवण, कीर्तन, मनन तथा श्वास के द्वारा जप और भगवत्-प्राप्ति-विषयक शास्त्रों का पठन-पाठन इत्यादिक चेष्टायें भगवत्-प्राप्ति के लिए बारम्बार करने का नाम 'अभ्यास' है और वैराग्य से वश में होता है। इसलिए इसको अवश्य वश में करना चाहिये।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।। (अ. 6/26)

यह स्थिर न रहने वाला और चञ्चल मन जिस जिस कारण से सांसारिक पदार्थों में विचरता है उससे रोककर बारम्बार परमात्मा में ही निरोध करें।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।। (अ. 8/6,7)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है उस उसको ही प्राप्त होता

है परन्तु भाव वही आयेगा जिसका वह सदा चिन्तन करता है। इसलिए हे अर्जुन ! तू सब समय में (निरन्तर) मेरा स्मरण कर और युद्ध (कर्म) भी कर इस प्रकार मेरे में अर्पण किए हुए मन बुद्धि से युक्त हुआ निःसन्देह मेरे को ही प्राप्त होगा।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।। (अ. 9/26)

हे अर्जुन ! मेरे पूजा में यह सुगमता है कि पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीति सहित खाता हूँ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। (अ. 9/27)

हे अर्जुन ! तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ स्वधर्माचरण रूप तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। (अ. 9/30)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को निरन्तर भजता है वह साधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है (कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।। (अ. 11/15)

हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे ही लिए सब कुछ मेरा समझता हुआ यज्ञ, दान और तप आदि सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों को करने वाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्ति रहित है, भूतप्राणियों में वैरभाव रहित है ऐसा वह अनन्य भक्ति वाला पुरुष मेरे को ही प्राप्त होता है।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।। (अ. 12/14)

हे अर्जुन ! अभ्यास को सीढ़ियां चढ़कर ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और ज्ञान की साधना हो जाने पर ध्यान की प्राप्ति की जा सकती है। फिर जब ध्यान में सारी वृत्तियां रंग जाती हैं, तब समस्त कर्म-समूह मनुष्य से अलग हो जाते हैं। इस प्रकार कर्मों के दूर हो जाने पर आपसे आप फल त्याग हो जाता है और इस फल-त्याग से मनुष्य को अखंड शान्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार एक-एक कदम आगे बढ़ते हुए शान्ति अथवा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति की जा सकती है।

निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वै विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ (अ. 15/5)

जिनका मान और मेह नष्ट हो गया है, जिनने आसक्ति रूप दोष जीत लिया है और जिनको परमात्मा के स्वरूप में निरन्तर स्थिति है। जिनकी कामना अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है ऐसे वे सुखदुःख, मान-अपमान निन्दा-स्तुति, मित्र-वैरी इत्यादि द्वन्द्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ (अ. 16/21)

काम क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं अर्थात् अधोगति में ले जाने वाले हैं इससे इन तीनों को त्याग देना चाहिये।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (अ. 18/66)

सर्वधर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों के आश्रय को त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, मैं तेरे को सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा तू शोक मत कर।

श्री रामचरितमानस के सिद्ध मन्त्र

रक्षा रेखा

मामभिरक्षय रघुकुलनायक !
धृत बर चाप रुचिर कर सायक ।।

विपत्ति-नाश के लिए

राजिव नयन धरें धनु सायक । भगत विपति भंजन सुखदायक ।।

संकट-नाश के लिए

जौ प्रभु दीन दयालु कहावा । आरति हरन बेद जसु गावा ।।
जपहिं नामु जन आरत भारी । मिटहि कुसंकट होहिं सुखारी ।।
दीन दयाल बिरिदु संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ।।

कठिन क्लेश-नाश के लिए

हरन कठिन कलि कलुष कलेसू । महामोह निसि दलन दिनेसू ।।

विघ्न-विनाश के लिए

सकल विघ्न व्यापहि नहीं तेही । राम सुकृपाँ बिलोकहीं जेही ।।

खेद-नाश के लिए

जब ते राम व्याहि घर आए । नित नव मंगल मोद बधाए ।।

महामारी, हैजा और मरी का प्रभाव न पड़ने के लिए

जब रघुवस बनज बन भानू । गहन दनुज कुल दहन कृसानु ।।

विविध रोगों तथा उपद्रवों की शान्ति के लिए

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहि काहुहि व्यापा ।।

मस्तिष्क की पीड़ा दूर करने के लिए

हनुमान अंगद रन गाजे । हाँक सुनत रजनीचर भागे ।।

विष-नाश के लिए

नाम प्रभाऊ जान सिव नीको । काल कूट फल दीन्ह अमी को ।।

अकाल-मृत्यु निवारण के लिए

नाम पहारु दिवस निस ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट ।।

भूतों को भगाने के लिए

प्रनवउ पवन कुमार खल बन पावक ग्यान धन ।।
जासु हृदयँ आगार बसहिं राम सर चाप धर ।।

नजर झाड़ने के लिए

स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरीं । निरखहिं छबि जननी तृन तोरी ।।

खोयी हुई वस्तु पुनः प्राप्त करने के लिए

गई बहोर गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ।।

जीविका-प्राप्ति के लिए

बिस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।।

दरिद्रता दूर करने के लिए

अतिथि पूजय प्रियतमं पुरारि के । कामद धन दारिद दबारि के ।।

लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं । जधपि ताहि कामना नाहीं ।।
ताहि सुख सपति बिनहि बोलाए । धरम सील पहिं जाहि सुभाएं ।।

पुत्र प्राप्ति के लिए

प्रेम मगन कौसलिया, निस दिन जात न जान ।
सुख सनेह बस माता, बाल चरित कर गान ।।

सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए

जै सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपति नाना विधि पावहिं ।।

ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करने के लिए

साधक नाम जपहिं लय लाएँ । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ।।

सब सुख-प्राप्ति के लिए

सुनहिं विमुक्त विरत उरु विपई । लहहिं भगति गति संपति नई ।।

मनोरथ सिद्धि के लिए

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर उरु नारि ।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ।।

कुशल-क्षेत्र के लिए

भवन चरि दस भरा उछाहू । जनकसुता रघुबीर बिआहू ।।

मुकदमा जीतने के लिए

पवन तनय वल पवन समाना । बुद्धि विवेक बिग्यान निधाना ।।

शत्रु के सामने जाना हो उस समय के लिए

कर सारंग साजि कहि भाथा । अरि दल दलन चले रघुनाथा ।।

यात्रा की सफलता के लिए

प्रविसि नगर कीजै सब काजा । हृदयँ राखि कोसलपुर राजा ।।

परीक्षा में पास होने के लिए

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी । कवि उर अजिर नचावहिं बानी ।।
मोरि सुधारिहि सो सब भाँति । जासु कृपा नहिं कृपा अघाती ।।

आकर्षण के लिए

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ।।

विद्या प्राप्ति के लिए

गुरु गृह गये पठन रघुराई । अलप काल विद्या सब आई ।।

भगवत्स्मरण करते हुए आराम से मरने के लिए

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ तें गिरत न जानइ नाग ।।

विचार शुद्ध करने के लिए

ताके जुग पद कमल मनावउँ । जासु कृपा निर्मल मति पावउ ।।

संशय-निवृत्ति के लिए

राम कथा सुन्दर करतारी । संसय विहग उडावनिहारी ।।

ईश्वर से अपराध क्षमा कराने के लिए

अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता । छमहु छमा मन्दिर दोउ भ्राता ।।

विरक्ति के लिए

भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होहि भव रस बिरवि ।।

भक्ति की प्राप्ति के लिए

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिंधु सुखधाम ।
सोई निज भगति मोहि प्रभु देहु दया कर राम ।।

श्री हनुमान जी को प्रसन्न करने के लिए

सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ।।

मोक्ष प्राप्ति के लिए

सत्यसंध छांड़े सर लच्छा । काल सर्प जनु चले सपच्छा ।

ज्ञान-प्राप्ति के लिए

छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ।।

श्री सीताराम जी के दर्शन के लिए

नील सरोरुह नील मनि, नीर नीरधर स्याम ।
लाजहिं तन शोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ।।

श्री जानकी जी के दर्शन के लिए

जनक सुता जग जननी जानकी । अतिसय प्रिय कृपानिधान की ।।

श्री रामचन्द्रजी को वश में करने के लिए

केहर कटि पट पीतधर, सुषमा सील निधान ।
देखि भानुकुल भूषनहिं विसरा सखिन्ह अपान ।।

सहज स्वरुप दर्शन के लिए

भगत वछल प्रभु कृपा निधाना । विस्ववास प्रगटे भगवाना ।।

प्रेम बढ़ाने के लिए

सब नर करहिं परस्पर प्रीति । चलहि स्वधर्म निरतश्रुति नीती ।।

शत्रु को मित्र बनाने के लिए

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ।।

शत्रुता नाश के लिए

बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप विषमता खोई ।।

शास्त्रार्थ में विजय पाने के लिए

तेहिं अवसर सुनि सिव धनुभंगा । आयउ भृगुकुल कमल पतंगा ।।

विवाह के लिए

तब जनक पाइ वसिष्ट आयसु ब्याह साज सँवारि कै ।
माँडवी श्रुतिकीरति उरमिला कुँअरि लईं हँकारि कै ।।

स्नान से पुण्य लाभ के लिए

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग ।।

निन्दा की निवृत्ति के लिए

राम कृपाँ अवरेब सुधारी । बिबुध धारि भई गुनद गोहारी ।।

उत्सव होने के लिए

सिय रघुवीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु ।।

यज्ञोपवीत धारण करके उसे सुरक्षित रखने के लिए

जुगुति बेधि पुन पोहिअहिं रामचरित बरताग ।
पहिरहिं सज्जन विमल उर सोभा अति अनुराग ।।

कातर की रक्षा के लिये

मोरें हित हरि सम नहि कोऊ । एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ।।

विविध

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदऊं सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पखहुँ सकल मनोरथ मेरे ॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी ॥
जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए ॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई ॥

जिन्ह पायन के पादुकन्हि भरत रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ ॥

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहंउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ ॥

जो परलोक यहाँ सुख चहहू। सुनि मम वचन हृदय दृढ़ गहहूं ॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भक्ति मोरि पुरान श्रुति गाई ॥
ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहँ टेका ॥
करत कष्ट बहु पावई कोऊ। भक्तिहीन प्रिय मोहि न सोउ ॥
भक्ति स्वतन्त्र सकल सुखखानी। बिन सत्संग न पावहिं प्राणी ॥
पुण्यपुञ्ज बिनु मिलहिं न संता। सत्संगति संसृति कर अंता ॥
रामहि केवल प्रेम पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा ॥
राम भजत सोई मुकुति गोसांई। अनरच्छित आवइ बरिआई ॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा ॥

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारी ।।
जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनाथकहि भजहिं जीव ते धन्य ।।
राम भगति मनि उर बस जाकें । दुख लवलेस न सपनेहु ताके ।।
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराही ।।
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ।।
भाव सहित खोजइ जो प्रानी । पाव भगति मनि सब सुख खानी ।।
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ।।
राम कृपाँ नासहिं सब रोगा । जौ एहि भाँति बनै संयोगा ।।
रघुपति भगति सजीवन मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ।।
विमल ग्यान जल जब सो नहाई । तब रह राम भगति उर छाई ।।
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाही । रघुपति भगति बिना सुख नाही ।।
वारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ।।
संत संगति दुर्लभ संसारा । निमिष दंड भरि एकउ बारा ।।
मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास ।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि विस्वास ।।
सोई सर्बग्य गुनी सोई ग्याता । सोई महि मंडित पंडित दाता ।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता । राम चरन जा कर मन राता ।।
नीति निपुन सोई परम सयाना । श्रुति सिद्धाँत नीक तेहि जाना ।।
सोई कबि कोबिद सोइ रनधीरा । जो छल छाड़ि भजइ रघुवीरा ।।
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा । धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ।।
सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्री रघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ।।

राम कथा के तेइ अधिकारी । जिन्ह के सत संगति अतिप्यारी ।।
गुरु पद प्रीति नीति रत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई ।।
ता कहँ यह बिसेष सुखदाई । जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ।।

राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान ।
भाव सहित सो यह कथा श्रवन पुट पान ।।

अति हरि कृपा जाहि पर होइ । पाउँ देह एहिं मारग सोई ।।
एहिं कलिकाल न साधक दूजा । जोग जग्य जप तप व्रत पूजा ।।
रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहिं । संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहिं ।।

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर ।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु विषम भव भीर ।।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।।

अब कछु नाथ न चाहिये मोरे । दीन दयाल अनुग्रह तोरे ।।
विरति विवेक म गति दृढ़ करनी । मोह नदी कहं सुन्दर तरनी ।।

नित नई प्रीति रामपद पंकज ।
सबके जिन्हहि नमत सिव मुनि अज ।।

सुनहि विमुक्त विरत अरु विषई । लहहिं भगति गति संपति नई ।।
सुर दुर्लभ सुख करि जग माही । अंतकाल रघुपति पुर जाही ।।

डिवाइन लाइफ़ सोसाइटी

(दिव्य जीवन संघ)

की सदस्यता

डिवाइन लाइफ सोसाइटी (The Divine Life Society) एक सम्प्रदाय निरपेक्ष संस्था है जिसके विशाल दृष्टि-क्षेत्र में सभी धर्मों के और सामान्य रूप से आध्यात्मिक जीवन के सर्वमान्य मौलिक सिद्धान्त समाहित हैं। कोई भी व्यक्ति, जिसकी सत्य, अहिंसा तथा शुचिता के आदर्श में निष्ठा है, इस संस्था का सदस्य बन सकता है। यह संस्था सभी वादों और धार्मिक रूढ़ियों को समान रूप से सम्मान प्रदान करती है। संस्था के सिद्धान्तों, दार्शनिक मान्यताओं तथा उपदेशों में सभी मतों और सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का अनुकलन होने से इसके सदस्यों की पारम्परिक भूमिका तथा धार्मिक मान्यताएं पृथक्-पृथक् हैं, फिर भी वे इनके आधार पर न तो मतभेद को मान्यता देते हैं और न विघटनकारी मनोवृत्तियों को ही प्रश्रय देते हैं। सच्चे आत्म-ज्ञान में तथा "अहं को विलय कर उसकी परिधि से ऊपर उठ जाने में ही आध्यात्मिक साधना का रहस्य निहित है,"—इस तथ्य को प्रकट करने तथा प्रत्येक प्राणी में भागवतीय चेतना की सम्भावनाएं हैं तथा "भले बन कर और भला करके" अपनी वाह्य और अन्तः प्रकृति पर नियन्त्रण स्थापन द्वारा इस अन्तर्स्थित भागवतीय चेतना के अभिव्यक्तिकरण का प्रयास करना ही प्रत्येक व्यक्ति का जीवनलक्ष्य है। संस्था की प्रवृत्तियाँ मानवोपकारी, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक कार्यों के लिए समर्पित हैं। उपरोक्त आदर्श-सम्पन्न कोई भी व्यक्ति डिवाइन लाइफ सोसाइटी (दिव्य जीवन संघ) का सहर्ष सदस्य बन सकता है।

प्रति सदस्य का वार्षिक सदस्यता-शुल्क १०) रु० है और यह शुल्क प्रति-वर्ष भुगतान करके नवीकरण कराना होता है। प्रत्येक नये सदस्य का प्रवेश-शुल्क जो कि केवल एक बार ही देय है, ११) रु० है। प्रार्थी के यथावत् पूर्ति तथा हस्ताक्षरित किये हुए प्रवेश-पत्र तथा उपर्युक्त

शुल्क के प्राप्त होने पर उसे प्रारम्भिक साधना के कुलक रूप स्वामी शिवानन्द जी द्वारा रचित 'एसेंस आफ योग' नामक पुस्तक की एक प्रति, 'जपमाला', आध्यात्मिक दैनन्दिनी के कुछ पृष्ठ तथा संकल्पपत्र आदि साधन-सम्बन्धी प्रकाशन दिये जाते हैं। सदस्यों को संस्था की अधिकारिक अंग्रेजी पत्रिका "डिवाइन लाइफ" अथवा हिन्दी पत्रिका 'योग-वेदान्त' भी प्राप्त होती है। इसके लिए उन्हें कोई अतिरिक्त मूल्य नहीं चुकाना होता है। सदस्यता में सम्मिलित होने के लिए साधकों का हार्दिक स्वागत है।

● जीवन साधना तथा जीवन-क्रम एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। साधारणतया मन, वचन और कर्म से यज्ञकार्य सम्पन्न होता है। इन्हें स्वार्थसिद्धि मात्र के लिए प्रयुक्त नहीं करना चाहिए; अन्यथा इनसे केवल अहङ्कार में ही वृद्धि होती हैं। सम्पूर्ण जीवन तथा उसकी प्रवृत्तियों को प्राणी मात्र की सेवा, सुख तथा उपकार के निमित्त उत्सर्ग कर देना चाहिए।

× × ×

● जो कुछ भी आप बनना चाहते हैं, बन सकते हैं। यही कर्म तथा तथा कर्मफल का नियम है। जो भी कार्य आप करेंगे, उसका परिणाम आवश्यम्भावी है। अपने प्रारब्ध के लिए आप स्वयं उत्तरदायी हैं। अपने भाग्य के आप स्वयं निर्माता हैं। आज ही निश्चय कीजिए और कैवल्यपद प्राप्त कीजिए।

दिव्य जीवन संघ और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ

दिव्य जीवन हमारे ऋषि-मुनियों की देन है। उनका स्वयं जीवन 'दिव्य जीवन' रहा है। दिव्य जीवन ईश्वर से तादात्म्य स्थापि करके रहने का दूसरा नाम है। कण-कण में, अणु-अणु, में उस प्रभु उपस्थिति का अनुभव करना, चारों ओर उसी की लीलाओं को निरख तथा निरन्तर उसी को पाने की इच्छा में जीना ही दिव्य जीवन ह इन्हीं विचारों की पुष्टि के लिए तथा हिन्दू-धर्म की सद्शिक्षाओं प्रचार-प्रसार के लिए परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज 1936 में दिव्य जीवन सङ्घ की स्थापना की थी।

इस उत्तराखण्ड की तपोभूमि में, ऋषिकेश से लक्ष्मणझूला जा हुए, गङ्गा जी के पावन तट पर स्थित शिवानन्दाश्रम, दिव्य जीवन सं की प्रवृत्तियों का सजीव उदाहरण है। यह केवल उच्च कोटि सन्यासियों का साधना-स्थल ही नहीं वरन् जनकल्याणकारी, महा रचनात्मक केन्द्र भी है। 'कर्मयोग' का जीता-जागता प्रमाण और क्य हो सकता है ?

यहां के भजनहाल में 24 घण्टे, अखण्ड जप चलता रहता है। श्री विश्वनाथ मन्दिर में, दिन में चार बार आरती, अर्चना तथा अभिषेक किया जाता है, जिसमें भक्तजन बड़ी श्रद्धा से भाग लेते हैं। योग-कक्ष में साधक योगाभ्यास तथा योग की शिक्षा ग्रहण करते हैं। प्रात: 4-30 से 6 बजे तक, सभी साधकों के लिए ध्यान, योगाभ्यास आदि की कक्षा चलती है। अपराह्न 4 से 5 तक योग, वेदान्त, भक्ति तथा इसी प्रकार के किसी विषय पर आश्रम के किसी वरिष्ठ महात्मा का प्रवचन चलता है। सन्ध्या को नित्य नियमित रूप से 7-45 से रात्रि 9-15 बजे तक सत्सङ्ग होता है जिसमें कीर्त्तन, भजन तथा प्रवचन होता है।

'योग-वेदान्त आरण्य अकादमी' शिवानन्दाश्रम का हृदयस्थल है। कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के ज्ञान का प्रचार व प्रसार यहीं से संसार के कोने-कोने में किया जाता है। श्री स्वामी शिवानन्द जी द्वारा विभिन्न विषयों पर रचित लगभग 250 पुस्तकों का प्रकाशन तथा

उनका विभिन्न भाषाओं में अनुवादादि कार्य का सञ्चालन यहीं से होता है। हिन्दी तथा अंग्रेजी में 2 मासिक पत्रिकाएं भी जिज्ञासुओं की धर्म, भक्ति तथा सदाचार आदि की तृषा को शान्त करती हैं।

देश-विदेश से सहस्रों की संख्या में साधक तथा भक्तजन प्रति वर्ष यहां आते हैं तथा यहां के वरिष्ठ संन्यासियों के संरक्षण में रहकर, इस देश के—भारत के महान् धार्मिक संदेशों का श्रवण करते हैं तथा पर्वत-मालाओं से घिरी इस तपोभूमि में, गगा मां के अङ्क में बैठकर अपना सौभाग्य मानते हैं।

अनुभवी आचार्यों के निरीक्षण में, हिमालय की जड़ी-बूटियों से 'शिवानन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी' में औषधि-निर्माण कार्य सम्पन्न हाता है। ये औषधियाँ लाभप्रद सिद्ध होने के कारण ससार भर में बड़ी लोकप्रिय हैं।

इसके अतिरिक्त एक चिकित्सालय सामान्य रोगियों के लिए है, जिसमें अन्याय प्रकार के रोगियों की चिकित्सा की जाती है। आयुर्वेदिक औषधि निर्माण के साथ एक औषधालय भी चलाया जाता है, जिसमें एक अनुभवी वैद्य जी की सेवाएँ उपलब्ध हैं।

आश्रम का संगीत विद्यालय बड़ा ही लोकप्रिय है। देश-विदेश से आये साधक आदि कीर्त्तन, भजन के साथ-साथ वीणा, हारमोनियम और तबला आदि की शिक्षा ग्रहण करते हैं। श्री स्वामी नादब्रह्मानन्द जी संगीत विद्यालय के सञ्चालक हैं।

गो-सेवा की दृष्टि से, आश्रम की अपनी एक बड़ी गोशाला है, जहाँ वृद्धा गौओं की सेवा भी की जाती है।

यहाँ श्री विश्वनाथ मन्दिर, श्री दिव्यनाममन्दिर, श्री गुरुदेव कुटीर तथा श्री गुरुदेव-समाधि ऐसे पवित्र दर्शनीय स्थल हैं जहां बैठकर व्यक्ति अपने जीवन के दुःख-दर्द, चिन्ता, व्याधा आदि सभी कुछ भूल जाता है।

आजकल शिवानन्दाश्रम में रहने वाले संन्यासियों, साधकों तथा अन्य अन्तेवासियों को मिला कर कुल संख्या लगभग 200 हो गयी है। यह एक ऐसा आश्रम है, जिसकी शाखाएं संसार में सबसे अधिक हैं। संस्था के परमाध्यक्ष श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज तथा श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज तथा श्री स्वामी माधवानन्द जी महाराज के कन्धों पर इस विशाल तथा विस्तृत संस्था का भार है।

दिव्य जीवन संघ और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ

दिव्य जीवन हमारे ऋषि-मुनियों की देन है। उनका स्वयं क जीवन 'दिव्य जीवन' रहा है। दिव्य जीवन ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करके रहने का दूसरा नाम है। कण-कण में, अणु-अणु, में उस प्रभु की उपस्थिति का अनुभव करना, चारों ओर उसी की लीलाओं को निरखन तथा निरन्तर उसी को पाने की इच्छा में जीना ही दिव्य जीवन है इन्हीं विचारों की पुष्टि के लिए तथा हिन्दू-धर्म की सद्‌शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लिए परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने 1936 में दिव्य जीवन सङ्घ की स्थापना की थी।

इस उत्तराखण्ड की तपोभूमि में, ऋषिकेश से लक्ष्मणझूला जाते हुए, गङ्गा जी के पावन तट पर स्थित शिवानन्दाश्रम, दिव्य जीवन संघ की प्रवृत्तियों का सजीव उदाहरण है। यह केवल उच्च कोटि के सन्यासियों का साधना-स्थल ही नहीं वरन् जनकल्याणकारी, महान् रचनात्मक केन्द्र भी है। 'कर्मयोग' का जीता-जागता प्रमाण और क्या हो सकता है?

यहां के भजनहाल में 24 घण्टे, अखण्ड जप चलता रहता है। श्री विश्वनाथ मन्दिर में, दिन में चार बार आरती, अर्चना तथा अभिषेक किया जाता है, जिसमें भक्तजन बड़ी श्रद्धा से भाग लेते हैं। योग-कक्ष में साधक योगाभ्यास तथा योग की शिक्षा ग्रहण करते हैं। प्रात: 4-30 से 6 बजे तक, सभी साधकों के लिए ध्यान, योगाभ्यास आदि की कक्षा चलती है। अपराह्न 4 से 5 तक योग, वेदान्त, भक्ति तथा इसी प्रकार के किसी विषय पर आश्रम के किसी वरिष्ठ महात्मा का प्रवचन चलता है। सन्ध्या को नित्य नियमित रूप से 7-45 से रात्रि 9-15 बजे तक सत्सङ्ग होता है जिसमें कीर्त्तन, भजन तथा प्रवचन होता है।

'योग-वेदान्त आरण्य अकादमी' शिवानन्दाश्रम का हृदयस्थल है। कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के ज्ञान का प्रचार व प्रसार यहीं से संसार के कोने-कोने में किया जाता है। श्री स्वामी शिवानन्द जी द्वारा विभिन्न विषयों पर रचित लगभग 250 पुस्तकों का प्रकाशन तथा

उनका विभिन्न भाषाओं में अनुवादादि कार्य का सञ्चालन यहीं से होता है। हिन्दी तथा अंग्रेजी में 2 मासिक पत्रिकाएं भी जिज्ञासुओं की धर्म, भक्ति तथा सदाचार आदि की तृषा को शान्त करती हैं।

देश-विदेश से सहस्रों की संख्या में साधक तथा भक्तजन प्रति वर्ष यहां आते हैं तथा यहां के वरिष्ठ संन्यासियों के संरक्षण में रहकर, इस देश के—भारत के महान् धार्मिक संदेशों का श्रवण करते हैं तथा पर्वत-मालाओं से घिरी इस तपोभूमि में, गगा मां के अङ्क में बैठकर अपना सौभाग्य मानते हैं।

अनुभवी आचार्यों के निरीक्षण में, हिमालय की जड़ी-बूटियों से 'शिवानन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी' में औषधि-निर्माण कार्य सम्पन्न होता है। ये औषधियाँ लाभप्रद सिद्ध होने के कारण ससार भर में बड़ी लोकप्रिय हैं।

इसके अतिरिक्त एक चिकित्सालय सामान्य रोगियों के लिए है, जिसमें अन्याय प्रकार के रोगियों की चिकित्सा की जाती है। आयुर्वेदिक औषधि निर्माण के साथ एक औषधालय भी चलाया जाता है, जिसमें एक अनुभवी वैद्य जी की सेवाएँ उपलब्ध हैं।

आश्रम का संगीत विद्यालय बड़ा ही लोकप्रिय है। देश-विदेश से आये साधक आदि कीर्त्तन, भजन के साथ-साथ वीणा, हारमोनियम और तबला आदि की शिक्षा ग्रहण करते हैं। श्री स्वामी नादब्रह्मानन्द जी संगीत विद्यालय के सञ्चालक हैं।

गो-सेवा की दृष्टि से, आश्रम की अपनी एक बड़ी गोशाला है, जहाँ वृद्धा गौओं की सेवा भी की जाती है।

यहाँ श्री विश्वनाथ मन्दिर, श्री दिव्यनाममन्दिर, श्री गुरुदेव कुटीर तथा श्री गुरुदेव-समाधि ऐसे पवित्र दर्शनीय स्थल हैं जहां बैठकर व्यक्ति अपने जीवन के दुःख-दर्द, चिन्ता, व्याधा आदि सभी कुछ भूल जाता है।

आजकल शिवानन्दाश्रम में रहने वाले संन्यासियों, साधकों तथा अन्य अन्तेवासियों को मिला कर कुल संख्या लगभग 200 हो गयी है। यह एक ऐसा आश्रम है, जिसकी शाखाएं संसार में सबसे अधिक हैं। संस्था के परमाध्यक्ष श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज तथा श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज तथा श्री स्वामी माधवानन्द जी महाराज के कन्धों पर इस विशाल तथा विस्तृत संस्था का भार है।

भवान्यष्टकम्

न तातो न माता न बंधुर्न दाता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता ।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ १ ॥

भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः ।
कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाहम्
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ २ ॥

न जानामि दानं न च ध्यानयोगं
न जानामि तंत्रं न च स्तोत्रमंत्रम् ।
न जानामि पूजां न च न्यासयोगम्
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ३ ॥

न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं
न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित् ।
न जानामि भक्तिं व्रतं वापि मात-
र्गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ४ ॥

कुकर्मी कुसंगी कुबुद्धिः कुदासः
कुलाचारहीनः कदाचारलीनः ।
कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबंधः सदाहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ५ ॥

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित् ।
न जानामि चान्यत् सदाहं शरण्ये
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ६ ॥

विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले चानले पर्वते शत्रुमध्ये ।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ७ ॥

अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो
महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः ।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ८ ॥